श्रीमद्भगवद्गीता

(स्वामी चिद्घनानन्द)

Part I

॥ श्रीः ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता.

स्वामिश्रीचिद्घनानन्दगिरिकृत-

पदच्छेदान्वयाङ्कपदार्थ-

भाषाटीकासहिता ।

शंकरं शंकराचार्यं व्यासं नारायणात्मकम् ॥
सरस्वतीं च ब्रह्माणं प्रणमामि पुनःपुनः ॥ १ ॥
प्रकाशितब्रह्मतत्त्वं प्रकृष्टगुणशालिनम् ॥
प्रणवस्योपदेष्टारं प्रणमाम्यनिशं गुरुम् ॥ २ ॥
श्रीकृष्णचरणद्वंद्वं प्रणिपत्य पुनःपुनः ॥
प्रायः प्रत्यक्षरं कुर्वे गीतागूढार्थदीपिकाम् ॥ ३ ॥

[illegible]र्थ—यह श्रीशंकररूप जो श्रीशंकराचार्य्य हैं तिनोंकूं तथा नारायणरूप जो व्यासभगवान् हैं तिनोंकूं तथा सरस्वतीदेवीकूं तथा ता सरस्वतीके भर्त्ता ब्रह्माकूं मैं वारंवार नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥ और जिन श्रीगुरुवोंनैं हमारे हृदय विषे ब्रह्मतत्त्व प्रकाश करा है । तथा जे गुरु विवेकवैराग्यादिक उत्तम [illegible]कालीवेष युक्त हैं । [illegible] जे गुरु हम अधिकारी जनोंके प्रति [illegible] [illegible]न करैंगे । [illegible]रूप भगवद्गीताविषे जो जो मोक्षके साधन विस्तारकरिकै निरूपण करे हैं तिन सर्व साधनोंका प्रथम संक्षेपतैं निरूपण करैं हैं । यह अधिकारी पुरुष प्रथम स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करणेहारे काम्यकर्मोंका परित्याग करिकै तथा नरकादिक दुःखोंकी प्राप्ति करणेहारे हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करिकै फलकी इच्छातैं रहित केवल निष्काम कर्मोंकूं करै । तिन निष्काम कर्मोंविषे भी परमेश्वरके नामोंका जप तथा स्तुति आदिक परधर्मरूप हैं । ता निष्काम कर्मोंकरिकै तथा परमेश्वरके जप स्तुति आदिकोंकरिकै या अधिकारी पुरुषका चित्त प्रतिबंधकरूप सर्व पापोतैं रहित होइकै विचार करणेयोग्य होवै है । तिसतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषविषे नित्यअनित्य वस्तुका विवेक उत्पन्न होवै है । तिस विवेकतैं अनंतर इस

जनोंकी बुद्धिकी मंदताकूं देखि करिकै तिन अधिकारी जनोंके प्रति धर्मादिक सर्व पुरुषार्थकी प्राप्ति करणेवासतै ता पुरुषार्थकी प्राप्तिके साधनोंकूं कथन करणेहारें वेदराशिका ऋग्, यजुः, साम और अथर्वण या भेदकरिकै चारि प्रकारका विभाग करते भये । तथा तिन ऋगादिक चारि वेदोंविषे स्थित जो ऐतरेयादिक अनेक शाखा हैं तिन शखावोंविषे एक एक शाखाकूं अपणे पैल वैशंपायनादिक शिष्यप्रशिष्यादि-द्वारा बधावते भये । इस प्रकार तिन ऋगादिक वेदोंके प्रवृत्त हुए भी तिन वेदोंका अर्थ परम सूक्ष्म है तथा अत्यन्त गूढ है तथा अत्यन्त दुर्विज्ञेय है यातैं ता वेद अर्थके जानणेविषे जिन अधिकारी पुरुषोंकी बुद्धि समर्थ नहीं है ऐसे अधिकारी पुरुषोंऊपरि अनुग्रह करिकै सो श्रीव्यासभगवान् तिन अधिकारी पुरुषोंकेप्रति धर्मादिक सर्व पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करणेवासतै तिन धर्मादिक सर्व पुरुषार्थोंके साधनोंकूं कथन करणेहारी तथा शतसहस्र १००००० श्लोकोंकरिकै युक्त भारत नामा संहिताकूं रचते भये । और जैसे सर्व नक्षत्रमालाके मध्यविषे चन्द्रमंडल स्थित होवैहै तैसे ता भारत नामा संहिताके मध्यविषे सो श्रीव्यासभगवान् केवल मुमुक्षु जनोंके प्रति कार्यप्रपंचसहित अनादि अविद्याकी निवृत्तिद्वारा विदेहकैवल्यरूप फलकी प्राप्तिवासतै जीवब्रह्मके अभेदकूं प्रतिपादन करणेहारी तथा श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका संवादरूप तथा अद्वैतरूप अमृतकी वर्षा करणेहारी तथा सप्तशत ७०० श्लोकरूप गीताउपनिषद् नामा ब्रह्मविद्या स्थापन करते भये । ता गीतारूप ब्रह्मविद्याका अज्ञानसहित सर्व प्रपंचका अभाव-
[illegible] सत चित आनन्दस्वरूप तथा जीवतैं अभिन्न अद्वितीय ब्रह्मरूप
[illegible] विषी अद्वितीय ब्रह्मरूप [illegible] ोंविषे

विषे प्रतिबंधक जो पापरूप विघ्न हैं तिन सर्व विघ्नोंकूं नाश करणेहारी है। यातैं सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्मनिष्ठाविषे तथा ज्ञाननिष्ठाविषे दोनोंविषे अनुगत है। याकारणतैं ही सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्ममिश्रा, शुद्धा और ज्ञानमिश्रा या भेदकरिकै तीन प्रकारकी होवै है। तहां या गीताके प्रथम षट्कविषे स्थित सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्ममिश्रा कही जावै है। और द्वितीय षट्कविषे स्थित सा भगवद्भक्तिनिष्ठा शुद्धा कही जावै है। और तृतीय षट्कविषे स्थित सा भगवद्भक्तिनिष्ठा ज्ञानमिश्रा कही जावै है। तहां कर्मनिष्ठाकरिकै मिली हुई भगवद्भक्तिनिष्ठाका नाम कर्ममिश्रा है। और ज्ञाननिष्ठाकरिकै मिलीहुई भगवद्भक्तिनिष्ठाका नाम ज्ञानमिश्रा है और केवल भगवद्भक्तिनिष्ठाका नाम शुद्धा है। इस प्रकार यह भगवद्गीता ऋगादिक वेदोंकी न्यांई तीनकांडरूप है। तहां या गीताके प्रथम षट्करूप कर्मकांड विषे कर्मोंके तथा तिन कर्मोंके त्यागके निरूपणरूप मार्गकरिकै अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे त्वंपदका अर्थरूप कूटस्थ शुद्ध आत्माका निरूपण करा है। और द्वितीय षट्करूप उपासनाकांडविषे भगवद्भक्तिनिष्ठाके वर्णनरूप मार्गकरिकै तत्पदार्थरूप परमात्मा देवका निरूपण करा है। तृतीय षट्करूप ज्ञानकांड विषे तिन शोधित तत्त्वंपदार्थोंका अभेदरूप महावाक्योंका अर्थ निरूपण करा है। इस प्रकारसे तीन षट्करूप तीन कांडोंका परस्पर सम्बन्ध सम्भवै है। और पूर्व पूर्व अध्यायके अर्थका उत्तरोत्तर अध्यायके अर्थसाथि जिस जिस प्रकारका सम्बन्ध सम्भवै है। सो सो सम्बन्ध तिस तिस अध्यायके निरूपणकालविषे कथन करैंगे। अब या अष्टादश अध्यायरूप भगवद्गीताविषे जो जो मोक्षके साधन विस्तारकरिकै निरूपण करे हैं तिन सर्व साधनोंका प्रथम संक्षेपतैं निरूपण करैं हैं। यह अधिकारी पुरुष प्रथम स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करणेहारे काम्यकर्मोंका परित्याग करिकै तथा नरकादिक दुःखोंकी प्राप्ति करणेहारे हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करिकै फलकी इच्छातैं रहित केवल निष्काम कर्मोंकूं करै। तिन निष्काम कर्मोंविषे भी परमेश्वरके नामोंका जप तथा स्तुति आदिक परधर्मरूप हैं। ता निष्काम कर्मोंकरिकै तथा परमेश्वरके जप स्तुति आदिकोंकरिकै या अधिकारी पुरुषका चित्त प्रतिबंधकरूप सर्व पापोतैं रहित होइकै विचार करणेयोग्य होवै है। तिसतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषविषे नित्यअनित्य वस्तुका विवेक उत्पन्न होवै है। तिस विवेकतैं अनंतर इस

लोकके विषयसुखोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयसुखोंविषे दोषदृष्टिपूर्वक वशीकार नामा वैराग्य उत्पन्न होवै है। तिस वैराग्यकी प्राप्तितैं अनंतर शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा या षट्संपत्तिकी प्राप्तिकरिकै सर्वका परित्यागरूप संन्यास प्राप्त होवै है। ता संन्यासतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छारूप मुमुक्षुता प्राप्त होवै है। ता मुमुक्षुताकी प्राप्तितैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै है। तिसतैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष ता ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण करै है। तथा ता श्रवण करे हुए अर्थका मनन करै है। ता श्रवणमननविषे ही सर्व उत्तरमीमांसाशास्त्रका उपयोग है। ता श्रवणमननकी परिपक्वतातैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष निदिध्यासनकूं प्राप्त होवै है। ता निदिध्यासनविषे ही संपूर्ण योगशास्त्रका उपयोग है। तहां श्रवणकरिकै वेदांतशास्त्ररूप प्रमाणगत असंभावनाकी निवृत्ति होवै है। और मननकरिकै आत्मरूप प्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्ति होवै है। और निदिध्यासनकरिकै देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप विपरीतभावनाकी निवृत्ति होवै है। तिसतैं अनंतर ता असंभावनादिक दोषोंतैं रहित चित्तविषे गुरूपदिष्ट महावाक्यतैं ब्रह्मात्माका साक्षात्कार उत्पन्न होवै है। ता ब्रह्मात्मसाक्षात्कारके उत्पन्न हुए या अधिकारी पुरुषके अविद्याकी निवृत्ति होवै है। ता आवरणशक्तिप्रधान अविद्याके निवृत्त हुएतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषके भ्रम तथा संशय निवृत्त होवैं हैं। तथा भावी जन्मोंकी प्राप्ति करणेहारे सर्व संचितकर्म नाशकूं प्राप्त होवैं हैं। और ता आत्मसाक्षात्कारके प्रभावतैं आगामी कर्मोंकी उत्पत्ति ही होवै नहीं। परंतु प्रारब्धकर्मरूप विक्षेपके वशतैं या अधिकारी पुरुषकी वासना निवृत्त होवै नहीं। जिस कारणतैं सा वासना सर्वतैं बलवती है। ऐसी बलवती वासनाभी संयमरूप उपायकरिकै निवृत्त होवै है। तहां धारणा, ध्यान और समाधि या भेदकरिकै सो संयम तीन प्रकारका होवै है। ता संयमकी प्राप्तिवासतै ही प्रथम यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार या पांचोंका उपयोग होवै है। और या अधिकारी पुरुषकूं ईश्वरके प्रणिधानतें सा समाधि शीघ्रही प्राप्त होवै है। ता समाधिकरिकै या अधिकारी पुरुषका मनोनाश होवै है। तथा वासनाक्षय होवै है। और तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय या तीनोंका

एककालविषे अभ्यास कियेतैं या अधिकारी पुरुषकूं जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। इसी जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिवासतै श्रुतिविषे विद्वत्संन्यासका कथन करा है। और पूर्व सविकल्पसमाधिकरिकै निरोधकूं प्राप्त भया जो चित्त है ता निरुद्धचित्तविषे तीन भूमिकावाली निर्विकल्पसमाधि उत्पन्न होवै है। तहां प्रथम भूमिकाविषे तौ यह विद्वान् पुरुष अपणी इच्छातैं उत्थानकूं प्राप्त होवै है। और द्वितीयभूमिकाविषे सो विद्वान् पुरुष दूसरे किसीकरिकै बोधन करा हुआ उत्थानकूं प्राप्त होवै है। और तृतीय भूमिकाविषे सो विद्वान् पुरुष अपणी इच्छाकरिकै तथा किसी दूसरेकरिकै उत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु सर्व कालविषे ताकी ब्रह्माकारवृत्ति रहै है। ऐसे निर्विकल्पसमाधिवान् पुरुषकूंही शास्त्रविषे ब्राह्मण कहै हैं। तथा ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहैं हैं। तथा गुणातीत कहैं हैं। तथा स्थितप्रज्ञ कहैं हैं। तथा विष्णुभक्त कहैं हैं। तथा अतिवर्णाश्रमी कहैं हैं। तथा जीवन्मुक्त कहैं हैं। तथा आत्मरति कहैं हैं। ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष कृतकृत्यभावकूं प्राप्त भया है यातैं शास्त्र भी ता जीवन्मुक्त पुरुषतैं निवृत्त होवै है। तात्पर्य यह। ता जीवन्मुक्त पुरुषऊपरि शास्त्रका कोईभी विधि निषेध नहीं है। किंवा "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः"॥ अर्थ, यह जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे परमभक्ति है तैसी ही गुरुविषे परम भक्ति है। तिस अधिकारी पुरुषके बुद्धिविषेही यह शास्त्र प्रतिपादित अर्थ प्रकाशमान होवै है, इति॥ या श्रुतिप्रमाणतैं शरीरमनवाणीकृत भगवद्भक्तिका सर्व अवस्थाओंविषे उपयोग सिद्ध होवै है। तहां पूर्व पूर्व भूमिकाविषे करी हुई सा भगवद्भक्ति उत्तर उत्तर भूमिकाकी प्राप्ति करै है। ता भगवद्भक्तितैं विना विघ्नोंकी बाहुल्यतातैं फलकी प्राप्ति होणी अत्यंत दुर्लभ है। यह वार्त्ता "पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः। अनेकजन्मसंसिद्धः" इत्यादिक भगवान्‌के वचनोंतैं ही सिद्ध होवै है। पूर्व पूर्व जन्मोंविषे उत्पन्न भये जो संस्कार हैं ते संस्कार अचिंत्यशक्तिवाले हैं तिन पूर्वसंस्कारोंके प्रभावतैं जो कोई पुरुष आकाशफलपातकी न्याईं पूर्वही कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होवै है तिस पुरुषके वासतै भी शास्त्रका आरंभ करा जावै नहीं। जिस वासतै पूर्वसिद्धिसाधनोंके अभ्यासतैं भगवत्कृपा अत्यंत दुर्विज्ञेय है। इस प्रकार पूर्वभूमिकाके सिद्ध हुए भी

उत्तर उत्तर भूमिकाकी प्राप्तिवासतै यह अधिकारी पुरुष भगवद्भक्तिकूं अवश्यकरिकै करै । ता भगवद्भक्तितैं विना सा उत्तरभूमिका सिद्ध होवै नहीं । किंवा । जैसे पूर्व अवस्थाविषे ता भगवद्भक्तिके फलकी कल्पना होवै है । तैसे जीवन्मुक्तिदशाविषे ता भगवद्भक्तिके फलकी कल्पना होवै नहीं । किंतु ता जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुषविषे जैसे अद्वेष्टृत्व, अदंभित्व आदिक धर्म स्वभावभूत होइकै रहैं हैं। तैसे सा भगवद्भक्ति भी स्वभावभूत होइके रहै है । यह वार्त्ता "तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते" इत्यादिक वचनोंकरिकै श्रीभगवाननैं प्रतिपादन करी है। या कारणतैं सो जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुष ही मुख्य प्रेमभक्त कह्या जावै है । इत्यादिक सर्व मोक्षके साधन श्रीकृष्णभगवान्नैं या गीताशास्त्रविषे कथन करे हैं। तिन मोक्षके साधनोंकूं देखिकरिकै श्रीमच्छंकराचार्यनैं तथा स्वामी शंकरानंदनैं तथा स्वामी मधुसूदननैं तथा नीलकण्ठ पंडितनैं बहुत उत्साहपूर्वक या गीताशास्त्र ऊपरि संस्कृत टीका करी हैं । तिन संस्कृत टीकावोंतैं यद्यपि व्याकरणादिक साधनसंपन्न मुमुक्षु जनोंकू या गीताशास्त्रके अर्थका बोध होइ सकै है, तथापि तिन संस्कृत टीकावोंतैं व्याकरणादिक साधनोंतैं रहित केवल भाषाके पठन करणेहारे मुमुक्षु जनोंकूं या गीताशास्त्रके अर्थका बोध होइ सकै नहीं । यातैं तिन मुमुक्षु जनोंके प्रति या गीताशास्त्रके अर्थका बोध करावणेवासतै हम तिन संस्कृत टीकावोंके अभिप्रायकूं लैके यह गीतागूढार्थदीपिका नामा प्राकृत टीकाका आरम्भ करैं हैं । इति । तहां निष्काम कर्मोंका जो अनुष्ठान है तिसकूंही शास्त्रविषे मोक्षका मूलरूप करिकै कथन करा है । और शोक मोहादिक पापरूप असुरता मोक्षकी प्राप्तिविषे प्रतिबंधक है । काहेतैं तिन शोक मोहादिक असुरोंको प्राप्तितैं ही यह पुरुष अपणे वर्णाश्रमके धर्मतैं भ्रष्ट होवै है तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मविषे प्रवृत्त होवै है तथा फलकी इच्छापूर्वक अहंकारसहित नाना प्रकारकी क्रियाकूं करै है। इस प्रकार शोक मोहादिक पापरूप असुरों करिकै नित्यही युक्त हुआ यह पुरुष मोक्षरूप पुरुषार्थकूं न प्राप्त होइकै जन्म मरणादिक अनेक दुःखोंकूं प्राप्त होवै है । सो दुःख स्वभावतैंही सर्व प्राणियोंके द्वेषका विषय है। यातैं ता दुःखकी निवृत्तिवासतै ता दुःखके साधनरूप शोक मोहादिक अवश्य करिकै त्याग करणे योग्य हैं । और या अनादि संसारविषे अनेक जन्मों करिकै ते शोकमोहादिक दुःखके कारण दृढताकूं प्राप्त हुए हैं । यातैं तिन शोक-

मोहादिकोंका त्याग करणा अत्यन्त कठिन है। और तिन शोकमोहादिकोंकी निवृत्तितैं विना मोक्षकी प्राप्ति होवै नहीं। यातैं ते हमारे शोकमोहादिक किस उपाय करिकै नाशकूं प्राप्त होवैंगे, इस प्रकारकी उत्कट इच्छावान् जो मुमुक्षु जन है, ताके बोध करणेवासतै श्रीकृष्णभगवान् या गीताशास्त्रकूं कथन करता भया। ता गीताशास्त्रविषे "अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्" इत्यादिक श्लोकोंकरिकै शोकमोहादिक असुरोंकी निवृत्तिके उपायका उपदेश करिकै अपणे वर्णाश्रमके धर्मोंके अनुष्ठानतैं तुम मोक्षरूप पुरुषार्थकूं प्राप्त होवो। या प्रकारका जो भगवानूका उपदेश है सो उपदेश सर्व मुमुक्षुजनोंके प्रति साधारण है केवल एक अर्जुनके प्रति सो उपदेश नहीं है॥ शंका—श्रीकृष्णभगवानूका जो कदाचित् सर्व मुमुक्षु जनोंके प्रति साधारण ही उपदेश होवै तौ या गीताशास्त्रविषे श्रीकृष्णभगवानूका तथा अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका किसवासतै रक्खी है॥ समाधान—जैसे उपनिषदोंका उपदेश सर्व मुमुक्षु जनोंके प्रति साधारण हुआ भी तिन उपनिषदोंविषे जो जनकयाज्ञवल्क्यादिकोंका संवादरूप आख्यायिका हैं ते आख्यायिका तिस तिस उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासतै हैं तैसे या गीताशास्त्रविषे जो श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका है सा आख्यायिका भी या गीतारूप ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासतै है। ता स्तुतिका यह प्रकार है। सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है महानुभाव जिसका ऐसा जो अर्जुन है। सो अर्जुन राज्य, गुरु, पुत्र, मित्र आदिक पदार्थोंविषे मैं इनोंका हूं ये मेरे हैं या प्रकारकी बुद्धिकरिकै स्नेहकूं प्राप्त होता भया। ता स्नेहकरिकै उत्पन्न भया जो शोक, मोह ता शोकमोह करिकै नष्ट होइ गया है विवेकविज्ञान जिसका ऐसा सो अर्जुन पूर्वस्वभावतैं ही क्षत्रियोंके धर्मरूप युद्धविषे प्रवृत्त हुआ भी ता शोकमोहके प्रभावतैं ता धर्मयुद्धतैं उपराम होता भया। तथा संन्यासियोंका धर्मरूप जो भिक्षावृत्तितैं जीवन है ते भिक्षाजीवनादिक धर्म यद्यपि क्षत्रिय राजावोंकूं शास्त्रकारिकै निषिद्ध हैं तथापि सो अर्जुन ता शोकमोहके वशतैं ता भिक्षाजीवनरूप परधर्मके करणेवासतै प्रवृत्त होता भया। इस प्रकार सो अर्जुन ता शोकमोहके वशतैं महान् अनर्थविषे मग्न होता भया। ऐसा अर्जुन श्रीकृष्णभगवानूके उपदेशतैं या गीतारूप ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होइकै ता शोकमोहतैं रहित होइकै पुनः अपणे युद्धरूप धर्मविषे प्रवृत्त होता भया। ता करिकै सो अर्जुन कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होता

मोहादिकोंका त्याग करणा अत्यन्त कठिन है। और तिन शोकमोहादिकोंकी निवृत्तितैं विना मोक्षकी प्राप्ति होवै नहीं। यातैं ते हमारे शोकमोहादिक किस उपाय करिकै नाशकूं प्राप्त होवैंगे, इस प्रकारकी उत्कट इच्छावान् जो मुमुक्षु जन है, ताके बोध करणेवासतै श्रीकृष्णभगवान् या गीताशास्त्रकूं कथन करता भया। ता गीताशास्त्रविषे "अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्" इत्यादिक श्लोकोंकरिकै शोकमोहादिक असुरोंकी निवृत्तिके उपायका उपदेश करिकै अपणे वर्णाश्रमके धर्मोंके अनुष्ठानतैं तुम मोक्षरूप पुरुषार्थकूं प्राप्त होवो। या प्रकारका जो भगवानूका उपदेश है सो उपदेश सर्व मुमुक्षुजनोंके प्रति साधारण है केवल एक अर्जुनके प्रति सो उपदेश नहीं है॥ शंका—श्रीकृष्णभगवान्का जो कदाचित् सर्व मुमुक्षु जनोंके प्रति साधारण ही उपदेश होवै तौ या गीताशास्त्रविषे श्रीकृष्णभगवान्का तथा अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका किसवासतै रक्खी है॥ समाधान—जैसे उपनिषदोंका उपदेश सर्व मुमुक्षु जनोंके प्रति साधारण हुआ भी तिन उपनिषदोंविषे जो जनकयाज्ञवल्क्यादिकोंका संवादरूप आख्यायिका हैं ते आख्यायिका तिस तिस उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासतै हैं तैसे या गीताशास्त्रविषे जो श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका है सा आख्यायिका भी या गीतारूप ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासतै है। ता स्तुतिका यह प्रकार है। सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है महानुभाव जिसका ऐसा जो अर्जुन है। सो अर्जुन राज्य, गुरु, पुत्र, मित्र आदिक पदार्थोंविषे मैं इनोंका हूं ये मेरे हैं या प्रकारकी बुद्धिकरिकै स्नेहकूं प्राप्त होता भया। ता स्नेहकरिकै उत्पन्न भया जो शोक, मोह ता शोकमोह करिकै नष्ट होइ गया है विवेकविज्ञान जिसका ऐसा सो अर्जुन पूर्वस्वभावतैं ही क्षत्रियोंके धर्मरूप युद्धविषे प्रवृत्त हुआ भी ता शोकमोहके प्रभावतैं ता धर्मयुद्धतैं उपराम होता भया। तथा संन्यासियोंका धर्मरूप जो भिक्षावृत्तितैं जीवन है ते भिक्षाजीवनादिक धर्म यद्यपि क्षत्रिय राजावोंकूं शास्त्रकारिकै निषिद्ध हैं तथापि सो अर्जुन ता शोकमोहके वशतैं ता भिक्षाजीवनरूप परधर्मके करणेवासतै प्रवृत्त होता भया। इस प्रकार सो अर्जुन ता शोकमोहके वशतैं महान् अनर्थविषे मग्न होता भया। ऐसा अर्जुन श्रीकृष्णभगवान्के उपदेशतैं या गीतारूप ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होइकै ता शोकमोहतैं रहित होइकै पुनः अपणे युद्धरूप धर्मविषे प्रवृत्त होता भया। ता करिकै सो अर्जुन कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होता

भया । ऐसे महान् प्रयोजनकी प्राप्ति करणेहारी यह गीतारूप ब्रह्मविद्या है । यातैं यह गीतारूप ब्रह्मविद्या अत्यन्त श्रेष्ठ है । या प्रकार या गीतारूप ब्रह्मविद्याकी स्तुति करणेवास्तै श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका या गीताशास्त्रविषे स्थित है । यातैं अर्जुन शब्दकरिकै या गीताशास्त्रके उपदेशका अधिकारी मात्र कथन करा है । या कारणतैं ही युद्धरूप स्वधर्मविषे पूर्व अर्जुनकी प्रवृत्ति हुए भी ता युद्धरूप स्वधर्मतैं निवृत्तिका कारणरूप शोक मोह " कथं भीष्ममहं संख्ये " इत्यादिक वचनोंकरिकै अर्जुननैं दिखाये हैं । या प्रकार आगे कथन करैंगे । तहां युद्धरूप स्वधर्मविषे विवेकतैं विना ही अर्जुनकी किस निमित्ततैं प्रवृत्ति भई है या प्रकारकी जिज्ञासाके हुए "दृष्ट्वा तु पांडवानीकम् " इत्यादिक वचन करिकै परसेनाकी चेष्टा ही ता प्रवृत्तिविषे निमित्त कथन करा है । तिस अर्थकी सिद्धिवास्तै " धर्मक्षेत्रे " इत्यादि श्लोककरिकै धृतराष्ट्रका प्रश्न संजयके प्रति है । और " धृतराष्ट्र उवाच " यह वैशंपायनका वचन जन्मेजयके प्रति है । तहां पूर्व पांडवोंके जयके अनेक प्रकारके कारणोंकूं श्रवण करिकै अपणे पुत्रोंके राज्यतैं भ्रष्टपणेतैं भयभीत हुआ सो धृतराष्ट्र अपणे पुत्रोंके जयकी इच्छा करता हुआ या प्रकार संजयसे पूँछता भया–

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) धर्मक्षेत्रे । कुरुक्षेत्रे । समवेताः । युयुत्सवः । मामकाः । पांडवाः । च । एव । किम् । अकुर्वत । संजय ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे संजय । धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे एकठे हुए तथा युद्धकी इच्छा करते हुए मेरे पुत्र तथा पांडुराजाके पुत्र क्या करते भये ॥ १ ॥

भाषाटीका–जैसे उत्तम भूमिरूप क्षेत्र व्रीहि यवादिक अन्नके उत्पत्तिका तथा वृद्धिका कारण होवै है तैसे पूर्व अविद्यमान धर्मके उत्पत्तिका जो कारण होवै । तथा पूर्व विद्यमान धर्मके वृद्धिका जो कारण होवै अथवा धर्मके क्षयतैं जो रक्षा करणेहारा होवै ताका नाम धर्मक्षेत्र है । और कुरुदेशके अंतर जो स्थित होवै

ताका नाम कुरुक्षेत्र है। इस प्रकार निवासमात्र करणेकारिकै धर्मकी तथा धर्मके फलकी प्राप्ति करणेहारा जो धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्र है सो श्रुति स्मृति आदिक सर्व शास्त्रोंविषे प्रसिद्ध है । तहां श्रुति ॥ "यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्, इति" । अर्थ- यह जो कुरुक्षेत्र सर्व देवतावोंका देवयजनरूप है । तथा सर्व भूतप्राणियोंकूं ब्रह्मरूप मोक्षके प्राप्तिका स्थानरूप है, इति ॥ यह श्रुति जाबालउपनिषद्विषे बृहस्पतिने याज्ञवल्क्यके प्रति कथन करी है । और "कुरुक्षेत्रं देवयजनम्" यह श्रुति शतपथब्राह्मणविषे कथन करी है । इत्यादिक श्रुतिस्मृतिप्रमाण करिकै सिद्ध जो कुरुक्षेत्र है ता धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे युद्धकी इच्छा करिकै इकट्ठे हुए जो दुर्योधनादिक मेरे पुत्र हैं तथा युधिष्ठिरादिक पांडव हैं ते सर्व क्या कार्य करते भये । शंका-(युयुत्सवः) या विशेषणकारिकै धृतराष्ट्रनैं अपने पुत्रोंविषे तथा पांडवोंविषे युद्ध करनेकी इच्छा कथन करी । और या लोकविषे यह नियम है जिस पुरुषकूं जिस कार्य करणेकी पूर्व इच्छा होवै है सो पुरुष तिस इच्छाके अनुसार तिसी कार्यविषे प्रवृत्त होवै है अन्य कार्यविषे प्रवृत्त होवै नहीं । यातैं ता पूर्व युद्धकी इच्छाके अनुसार तिन दुर्योधनादिकोंकी युद्धरूप कार्यविषे ही प्रवृत्ति होवैगी अन्य किसी कार्यविषे तिनोंकी प्रवृत्ति होवैगी नहीं । याते तिनोंका परस्पर किस प्रकारका युद्ध होता भया या प्रकारका प्रश्नही ता धृतराष्ट्रकूं करणेयोग्य था । ता प्रश्नका परित्याग करिकै मेरे पुत्र तथा पांडव क्या कार्य करते भये यह जो धृतराष्ट्रनैं प्रश्न करा है सो असंगत है। समाधान । ता धृतराष्ट्रके प्रशनका यह अभिप्राय है ते हमारे दुर्योधनादिक पुत्र तथा युधिष्ठिरादिक पांडव पूर्व उत्पन्न हुई युद्धकी इच्छाके अनुसार युद्धकूं ही करते भये अथवा किसी निमित्त करिकै ता युद्धकी इच्छाके निवृत्त हुए कोई दूसरा ही कार्य करते भये । तहां युद्धकी इच्छाकी निवृत्तिविषे दो प्रकारका कारण संभवै है, एक तौ दृष्टभय दूसरा अदृष्टभय । तहां भीष्म अर्जुनादिक महान् शूरवीरोंके दर्शनतैं उत्पन्न भया जो भय है सो दृष्टभयरूप युद्धकी निवृत्तिका कारण प्रसिद्ध ही है । यातैं सो दृष्टभयरूप निमित्त ता धृतराष्ट्रनैं कथन करा नहीं । और दूसरे अदृष्टभयरूप कारणके कथन करणेवासतै ता धृतराष्ट्रनैं कुरुक्षेत्रका धर्मक्षेत्र यह विशेषण दिया है । ऐसे धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे प्राप्त हुए जो युधिष्ठिरादिक पांडव हैं ते पांडव पूर्व ही धर्मात्मा होनेतैं जो कदाचित

दोनों पक्षोंविषे होणेहारे हिंसाजन्य अधर्मतैं भयभीत होइकै ता युद्धतैं निवृत्त होइ जावैंगे तौ हमारे दुर्योधनादिक पुत्र अवश्यकरिकै राज्यकूं प्राप्त होवैंगे। अथवा पूर्व स्वभावतैं ही पापात्मा जो हमारे दुर्योधनादिक पुत्र हैं। तिन हमारे पुत्रोंका ता धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रके प्रभावतैं जो कदाचित् अंतःकरण शुद्ध हुआ होवैगा। ता चित्तकी शुद्धिकरिकै पश्चात्तापकूं प्राप्त हुए ते हमारे पुत्र पूर्व कपट करिकै लिये हुए राज्यकूं जो कदाचित् तिन पांडवोंके ताईं देदेवेंगे तौ ते हमारे पुत्र युद्धतैं विनाही नाशकूं प्राप्त हुए। इस प्रकार अपणे पुत्रोंकूं राज्यकी प्राप्तिविषे तथा पांडवोंकूं राज्यकी अप्राप्तिविषे अत्यंत दृढ उपायकूं नहीं देखता हुआ जो धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रका सो महान उद्वेग ही ता प्रश्नका बीज है। तहां (हे संजय) या संबोधनकरिकै ता धृतराष्ट्रनैं यह अर्थ बोधन करा। रागद्वेषादिक दोषोंकूं जो भली प्रकारकरिकै जय करै है ताका नाम संजय है। ऐसे रागद्वेषतैं रहित आप हो। यातैं पक्षपाततैं रहित होइकै आप हमारे प्रति सर्व वृत्तांत कथन करो। इहां यद्यपि (मामकाः किमकुर्वत) या प्रकारके वचनमात्रकरिकेही ता धृतराष्ट्रके प्रश्नकी सिद्धि होइ सकै है काहेतैं, ते युधिष्ठिरादिक पांडवभी ता धृतराष्ट्रके ही संबंधी हैं यातैं पांडवाः) यह कहना व्यर्थ है। तथापि (पांडवाः) या शब्दके भिन्न कहने करिकै ता धृतराष्ट्रनैं तिन पांडवोंविषे ममत्वका अभाव दिखाइकै तिन पांडवोंविषे अपणे द्रोहकूं सूचन करा ॥ १ ॥

हे जनमेजय ! इस प्रकार कृपारूप नेत्रोंतैं रहित तथा लोकप्रसिद्ध नेत्रोंतैं रहित तथा अपणे पुत्रोंके स्नेहमात्रकरिके युक्त ऐसा धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रके प्रश्नकूं श्रवण करिके तथा ता धृतराष्ट्रके अभिप्रायकूं जाणिकरिकै सो धर्मात्मा संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति यह वचन कहता भया—

संजय उवाच।

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा॥
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) दृष्ट्वा। तु। पांडवानीकम्। व्यूढम्। दुर्योधनः। तदा। आचार्यम्। उपसंगम्य। राजा। वचनम्। अब्रवीत ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! ता संग्रामके आरंभकालविषे राजा दुर्योधन व्यूह रचनायुक्त पांडवोंकी सेनाकूं देखिकरिके द्रोणाचार्यके समीप जाइके याप्रकारका वचन कहता भया ॥ २ ॥

भा० टी०-तहां युधिष्ठिरादिक पांडवोंविषे भीष्मादिक वीर पुरुषोंतैं दृष्टभयकी संभावनामात्र भी होवै नहीं । और बांधवोंकी हिंसाजन्य पापरूप अदृष्टतैं जो अर्जुनकूं भय प्राप्त हुआ था सो केवल भ्रांतिकरिकै हुआ था सो अर्जुनका अदृष्टभय भी श्रीभगवान्नैं ब्रह्मविद्याके उपदेशतैं निवृत्त करा। या प्रकार पांडवोंकी उत्कृष्टता बोधन करणेवासतै संजयनैं (दृष्ट्वा तु) यह तुशब्द कथन करा है। तहां हमारे दुर्योधनादिक पुत्र धर्मक्षेत्रके कुरुक्षेत्रके प्रभावतैं शुभबुद्धि-वाले होइकै पांडवोंके ताईं राज्य समर्पण करैंगे याप्रकारकी शंकाकरिकै तूं ग्लानिकूं मत प्राप्तहोउ याप्रकार ताधृतराष्ट्रकै संतोष करावणेवासतै सो संजय प्रथम ता दुर्योधनके दुष्टस्वभावका वर्णन करै है। (दृष्ट्वेति) हे धृतराष्ट्र ! धृष्टद्युम्नादिक शूरवीर पुरुषोंनैं व्यूहरचना करिकै स्थापन करी जो पांडवोंकी सेना है ता सेनाकूं सो दुर्योधन राजा अपणे नेत्रोंसैं प्रत्यक्ष देखिकरिकै धनुर्विद्याके संप्रदायकी प्रवृत्ति करणेहारे द्रोणाचार्यके समीप आप ही जाइकै यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया। ता द्रोणाचार्यकूं अपणे समीप बुलाइकै सो वचन नहीं कहता भया। तहां सो दुर्योधन राजा ता द्रोणाचार्यके समीप आप ही जाता भया या कहणेकरिकै ता दुर्योधनविषे पांडवोंकी सैनाके दर्शनतैं उत्पन्न भया भय सूचन करा। तहां सो दुर्योधन यद्यपि भयकरिकै अपणी रक्षावासतै ता द्रोणाचार्यके समीप जाता भया। तथापि सो दुर्योधन राजनीतिविषे बहुत कुशल है यातैं आचार्यके समीप शिष्यनैं आप ही चलिकै जाणा या प्रकार आचार्यकी महानताके व्याजकरिकै अपणे भयकूं गुह्य राखता भया। या प्रकारके अर्थके बोधन करणेवासतै संजयनैं दुर्योध-नका राजा यह विशेषण दिया है। यद्यपि द्रोणाचार्यके प्रति सो राजा दुर्योधन कहता भया इतने कहणेमात्रकरिकै ही निर्वाह होइ सकै है। वचन या पदके कहणेका कछु प्रयोजन नहीं है, तथापि वचन या पदके कहणेकरिकै ता वाक्य-विषे संक्षिप्तत्व, बहुअर्थप्रतिपादकत्व इत्यादिक अनेक गुणवत्त्व कथन करा। अथवा सो दुर्योधन राजा केवल वचनमात्र ही कहता भया। किंचित्मात्र भी अर्थ नहीं कहता भया। यह अर्थ वचनपदकरिकै सूचन करा ॥ २ ॥

तहां जिस प्रकारका वचन ता दुर्योधननैं द्रोणाचार्यके समीप जाइकै कथन करा था ता वचनका (पश्यैतां) इसतैं आदि लैके (तस्य संजनयन् हर्षम्) इसतैं पूर्वग्रंथकारिकै विस्तारतैं निरूपण करैं हैं। तहां या द्रोणाचार्यके अत्यंत प्रिय शिष्य जो पांडव हैं तिन पांडवोंविषे या द्रोणाचार्यका अत्यंत स्नेह है। यातैं यह द्रोणाचार्य हमारे पक्षविषे स्थित होइकै तिन पांडवोंके साथि युद्ध नहीं करैगा । या प्रकारकी संभावना अपणे मनविषे करिकै सो दुर्योधन राजा तिन पांडवोंऊपरि ता द्रोणाचार्यका क्रोध उत्पन्न करणेवासतै ता द्रोणाचार्यके समीप तिन पांडवोंकी अवज्ञाकूं कथन करता हुआ या प्रकारका वचन कहता भया—

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) ॥ पश्य । एताम् । पांडुपुत्राणाम् । आचार्य । महतीम् । चमूम् । व्यूढाम् । द्रुपदपुत्रेण । तव । शिष्येण । धीमता ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे आचार्य ! पांडुराजाके पुत्रोंकी इस महान् सेनाकूं तूं देख जो सेना तुम्हारे बुद्धिमान शिष्य द्रुपदपुत्रनैं व्यूहरचनायुक्त करी है ॥ ३ ॥

भा॰ टी॰—हे आचार्य ! आपसरीखे महानुभाव पुरुषोंकी भी अवज्ञाकारिकै तथा भयतैं रहित होइकै अत्यंत समीप स्थित जो यह पांडवोंकी सेना है सा सेना अनेक अक्षौहिणी संख्यावाली होणेतैं महान् है या कारणतैं ही सा सेना निवृत्त करणेकूं अशक्य है। ऐसी पांडवोंकी सेनाकूं आप नेत्रोंकारिकै प्रत्यक्ष देखो मैं आपका शिष्य हूं । यातैं मैं केवल आपके आगे प्रार्थना करताहूं कोई आपकूं आज्ञा नहीं करता । ता हमारी प्रार्थनाकूं अंगीकार करिकै जब आप ता पांडवोंकी सेनाकूं देखोगे तबी तिन पांडवोंके अवज्ञाकूं आप ही निश्चय करौगे। शंका—तिन पांडवोंनैं करी जो हमारी अवज्ञा है सा अवज्ञा निवृत्त करणेकूं अशक्य है यातैं सा अवज्ञा हमारेकूं सहारणी ही उचित है। या प्रकारकी द्रोणाचार्यके शंकाके हुए तिस अवज्ञाके निवृत्त करणेका उपाय आपकूं अत्यंत सुगम है या प्रकारका उत्तर सो दुर्योधन ता द्रोणाचार्यके प्रति कथन करै है (व्यूढां तव शिष्येण इति) हे आचार्य ! तुम्हारेतैं धनुर्विद्या सीखाहुआ जो द्रुपद राजाका पुत्र धृष्टद्युम्न नामा तुम्हारा बुद्धिमान् शिष्य है। ता द्रुपदपुत्रनैं यह पांडवोंकी सेना शक-

टाकार तथा पद्मादि आकार करी हुई है और शिष्यकी अपेक्षाकारिकैं गुरुविषे अधिकताही होवै है यह वार्त्ता सर्व लोकशास्त्रविषे सिद्ध है यातैं आपकूं तिनोंकी अवज्ञाके निवृत्त करणेका उपाय अत्यंत सुगम है। इहां धृष्टद्युम्ननैं सा पांडवोंकी सेना व्यूहरचनायुक्त करी है या प्रकारका वचन नहीं कथन करिकै द्रुपदपुत्रनै सा सेना व्यूहरचनायुक्त करी है या प्रकारका वचन जो दुर्योधननैं कथन करा है सो द्रोणाचार्यके प्रति द्रुपदराजाका पूर्वका वैर सूचन करिकै क्रोधकी उत्पत्ति करणेवासतै सो वचन कथन करा है। और ता द्रुपदपुत्रका बुद्धिमान् यह जो विशेषण दुर्योधननैं कथन करा है सो ता द्रुपदपुत्रकी आपनैं उपेक्षा कदाचित भी नहीं करणी या प्रकार ताकी उपेक्षाके अभावका बोधन करणेवासतै दिया है। यातैं हे आचार्य ! दूसरे सर्व कार्योंका परित्याग करिकै आप शीघ्र ही चलिकै ता सेनाकूं देखो । अथवा या श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करणी (पांडुपुत्राणाम्) या पदका (आचार्य) या पदके साथि तथा (चमूम्) या पदके साथि संबध करणा । इस प्रकार तिन पदोंकी योजना करणेतैं यह अर्थ सिद्ध होवै है हे पांडुपुत्रोंके आचार्य ! तिन पांडवोंकी सेनाकूं तूं देख तिन पांडवोंविषे ही तुम्हारा अत्यंत स्नेह है यातैं तिन पांडवोंका ही तूं आचार्य है हमारा तूं आचार्य नहीं है। और तुम्हारे शिष्य द्रुपदपुत्रनैं यह सैना व्यूहरचनायुक्त करी है । या कहणेकरिकै ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा तुम्हारे नाश करणेवासतै उत्पन्न हुआ भी यह द्रुपदपुत्र तुमनैं ही इसकूं धनुर्विद्या पढाई यातैं यह तुम्हारी मूढताही हमारे अनर्थका कारण है । और सो द्रुपदपुत्र बुद्धिमान् है या कहणे करिकै ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा ॥ इस द्रुपदपुत्रनै अपणे शत्रुवोंतैं ही तिन शत्रुवोंके मारणेका उपायरूप धनुर्विद्या ग्रहण करी है या कारणतैं यह द्रुपदपुत्र अत्यंत बुद्धिमान् है। हे आचार्य! ऐसे अपणे शिष्योंकी सैनाकूं देखिकारिकै आपकूं ही आनंद होवैगा। जिस कारणतैं आप भ्रांति युक्तहो। भ्रांतितैं रहित दूसरे किसीकूं ता सेनाके दर्शनतैं आनन्द होवैगा नहीं । जिसकूं यह पांडवोंकी सेना मैं दिखावों । यातैं आपही चलिकै तिन पांडवोंकी सैनाकूं देखो । इस प्रकार ता द्रोणाचार्यकूं पांडवोंकी सेना दिखावता हुआ सो दुर्योधन ता आचार्यविषे अपणे गूढद्वेषकूं बोधन करता भया । इतने कहणेकरिकै संजयनैं ता धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ बोधन करा । धर्मक्षेत्रविषे प्राप्त होइकैभी जिन तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं अपणे आचार्यविषे भी ऐसी द्वेषबुद्धि हुई है ते दुर्यो-

धनादिक ता धर्मक्षेत्रके प्रभावतैं पश्चात्तापकूं प्राप्त होइकै तिन पांडवोंकूं युद्ध करेतैं विना ही राज्य देदेवैंगे या प्रकारकी सम्भावना तुमनैं कदाचित् भी नहीं करणी ॥ ३ ॥

सर्व शूरवीरोंविषे अप्रसिद्ध ऐसा जो द्रुपदपुत्र है ता एक द्रुपदपुत्रकरिकै व्यूह रचनायुक्त करी हुई जो यह पांडवोंकी सेना है ता पांडवोंकी सेनाकूं हम सर्वोंविषे कोई एक साधारण शूरवीर भी जय करि लेवैगा । तुम तिन पांडवोंकी सेनातैं किस वासतै भय करते हो । ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा (अत्र शूराः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै तिन पांडवोंकी सेनाविषे स्थित शूर वीरोंके नाम वर्णन करैं हैं–

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) अत्र । शूराः । महेष्वासाः । भीमार्जुनसमाः । युधि । युयुधानः । विराटः । च । द्रुपदः । च । महारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतुः । चेकितानः । काशिराजः । च । वीर्यवान् । पुरुजित् । कुंतिभोजः । च । शैब्यः । च । नरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्युः । च । विक्रांतः । उत्तमौजाः । च । वीर्यवान् । सौभद्रः । द्रौपदेयाः । च । सर्वे । एव । महारथाः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) इस पांडवोंकी सेनाविषे युद्धविषे भीमअर्जुनके समान तथा महान् धनुषोंवाले ऐसे शूरवीर बहुत विद्यमान हैं तिनोंके ये नाम हैं महारथीरूप युयुधान नामा राजा तथा विराट नामा राजा तथा द्रुपद नामा राजा ॥ ४ ॥ तथा विशेष पराक्रमवाला धृष्टकेतु नामा राजा तथा चेकितान नामा राजा तथा काशिराजा तथा सर्व मनुष्योंविषे श्रेष्ठ पुरुजित नामा राजा तथा कुंतिभोज नामा राजा तथा शैब्य नामा राजा ॥ ५ ॥ तथा विशेष पराक्रमवाला युधामन्यु नामा राजा तथा

वीर्यवाला[२७] उत्तमौजा[२८] नामा राजा तथा[२९] सौभद्र[३०] नामा राजा तथा द्रौपदीके[३१] पंच पुत्र यह[३२] सर्वही[३३] महारथी[३४] हैं ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे आचार्य ! या पांडवोंकी सेनाविषे केवल एक धृष्टद्युम्न नामा द्रुपदपुत्र ही शूरवीर नहीं है जिसकरिकै या पांडवोंकी सेनाकी हम उपेक्षा करि देवैं। किंतु या पांडवोंकी सेनाविषे दूसरे भी बहुत शूरवीर हैं। यातैं तिनोंके जय करणेवासतै हमारेकूं अवश्यकरिकै प्रयत्न करणा चाहिये। तिनोंकी उपेक्षा करणी योग्य नहीं है। अब तिन शूरवीरोंके विशेषणोंका कथन करैं हैं (महेष्वासाः इति) इषु नाम बाणोंका है। ते इषु (बाण) चलाइयें जिनोंकरिकै तिनोंका नाम इष्वास है ऐसे धनुष हैं। ते इष्वास (धनुष) महान् हैं जिन शूरवीरोंके तिन शूरवीरोंका नाम महेष्वासाः है, तात्पर्य यह। ते शूरवीर बाणोंकरिकै दूरसेही परसेनाके भगावणेविषे कुशल हैं इति। शंका-ते शूरवीर महान् धनुषोंवाले तो हैं परन्तु तिनोंविषे युद्ध करणेकी कुशलता नहीं होवैगी। ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा उत्तर कहै है (भीमार्जुनसमा युधि इति) हे आचार्य ! सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है पराक्रम जिनोंका ऐसे जो भीम अर्जुन हैं ता भीम अर्जुनके समान ही जिन शूरवीरोंका युद्धविषे पराक्रम है। शंका—ऐसे पराक्रमवाले कौन कौन शूरवीर हैं। ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा ता द्रोणाचार्यके प्रति तिन शूरवीरोंके नामोंका कथन करै है। (युयुधान इति) अतिशयकरिकै जो युद्धकूं करै है ताका नाम युयुधान है ऐसा सात्यकि नामा राजा है। और शत्रुओंकूं जो विशेषकरिके भ्रमण करावै है ताका नाम विराट है। और द्रु नाम वृक्षका है। पद नाम चिह्नका है। ता वृक्षका है ध्वजाविषे चिह्न जिसके ताका नाम द्रुपद है। यह तीनों महारथी हैं ॥ ४ ॥ और शत्रुवोंकूं भयकी प्राप्ति करणेहारेका नाम धृष्ट है। केतु नाम ध्वजाका है। भयका कारण है ध्वजा जिसकी ताका नाम धृष्टकेतु है। और चिकितान नामा राजाका जो पुत्र होवै ताका नाम चेकितान है। और काशीका जो राजा होवै ताका नाम काशिराज है ते तीनों राजे वीर्यवान् हैं। तेजबलकरिकै युक्त शत्रुवोंकूं भी जो विविध प्रकारतैं भगाइ देवै ताका नाम वीर है। तिस वीर पुरुषका जो कर्म होवै ताका नाम वीर्य है सो वीर्य जिसविषे वर्त्तमान होवै ताका नाम वीर्यवान् है। और पुरु नाम बहुतोंका है। तिन बहुत शूरोंकूं जो जय करै है ताका नाम पुरुजित् है। और कुंतीके

पिताका नाम कुंतिभोज है । और शिबि नामा राजाके कुल विषे जो उत्पन्न होवै ताका नाम शैब्य है । ते तीनों राजा नरपुंगव हैं । सर्व नरोंविषे जो श्रेष्ठ होवै ताका नाम नरपुंगव है ॥ ५ ॥ और युधा नाम युद्धका है और मन्यु नाम क्रोधका है । युद्धविषे है क्रोधका वेग जिसका ताका नाम युधामन्यु है । यह युधामन्यु पंचाल देशका राजा है । सो युधामन्यु विक्रांत है । विशेषकरिके जाकेविषे पराक्रम रहै है ताका नाम विक्रांत है । और ओजस नाम बलका है । उत्तम है ओजस् जिसका ताका नाम उत्तमौजाः है । सो उत्तमौजाः नामा राजा भी पंचालदेशका राजा है । कैसा है सो उत्तमौजाः नामा राजा वीर्यवान् है । अथवा वीर्यवान् नरपुंगव विक्रांत ये तीनोंविशेषण युयुधानादिक सर्व राजाओंके जानने । और सुभद्राका जो पुत्र होवै ताका नाम सौभद्र है ऐसा अभिमन्यु है और द्रौपदीके जो प्रतिविंध्यादिक पंच पुत्र हैं तीनोंका नाम द्रौपदेय है । और (द्रौपदेयाश्च) या पदविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिके पूर्व उक्त राजाओंते भिन्न पांड्य राजा घटोत्कच आदिक सर्व राजोंका ग्रहण करणा । और युधिष्ठिरादिक पंच पांडव अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । यातैं दुर्योधननैं तिन पंचपांडवोंकी गिणती करी नहीं । अथवा (भीमार्जुन समा युधि) या वचनकरिके ता दुर्योधननैं युयुधानादिक सर्व शूरवीरोंविषे भीम अर्जुनकी उपमा दई है । यातैं भीमार्जुन यह पद पांचों पांडवोंका उपलक्षक है । इस प्रकार युयुधान राजातैं आदि लैके द्रौपदीके पंच पुत्रोंपर्यंत कथन करे जो सप्तदश राजा तिनोंतैं भिन्न दूसरे भी तिनोंके संबंधी शूरवीर बहुत हैं । ते सर्व शूरवीर महारथी हैं । रथी अथवा अर्धरथी इन्होंविषे कोई है नहीं । इहां (महारथाः) या शब्दकरिकै अतिरथीकाभी ग्रहण करणा । तहां महारथी, अतिरथी, रथी, अर्धरथी या चारोंका शास्त्रविषे या प्रकारका लक्षण कथन कराहै । तहां श्लोक । "एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः ॥ अमितान्योधयेद्यस्तु संप्रोक्तोऽतिरथस्तु सः । रथस्त्वेकेन यो योद्धा तन्न्यूनोऽर्धरथः स्मृतः" । अर्थ, यह—जो पुरुष एकलाही धनुषवाले दशसहस्र शूरवीरोंके साथि युद्ध करै है तथा शस्त्रशास्त्रविषे अत्यंत कुशल होवै है ता पुरुषकूं महारथी कहैं हैं । और जो पुरुष एकलाही असंख्यात शूरवीरोंके साथ युद्ध करै है तथा शस्त्रशास्त्रविषे अत्यंत कुशल होवै है ता

पुरुषकूं अतिरथी कहै हैं। और जो पुरुष एक शूरवीरके साथिही युद्ध करै है ताकूं रथी कहैं हैं। और जो पुरुष ता रथीतैंभी न्यून बलवाला होवै है ताकूं अर्धरथी कहैं हैं ॥ ६ ॥

हे दुर्योधन ! इन पांडवोंकी सेनाविषे महान् शूरवीरोंकूं देखिकै जो कदाचित् तुम्हारेकूं भय होता होवै तौ इन पांडवोंके साथि शत्रुपणेका परित्याग करिकै तुम मित्रता करो या प्रकारके द्रोणाचार्यके अभिप्रायकी आशंका करिकै सो दुर्योधन ता द्रोणाचार्यके प्रति अपणी सेनाविषे स्थित शूरवीरोंके नामोंका वर्णन करै है–

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) अस्माकम्[2]। तु। विशिष्टाः[4]। ये[3]। तान्[5]। निबोध[6]। द्विजोत्तम[1]। नायकाः[8]। मम[7]। सैन्यस्य[9]। संज्ञार्थम्[11]। तान्[10]। ब्रवीमि[13]। ते[12] ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे सर्व[1] ब्राह्मणोंविषे श्रेष्ठ आचार्य ! हम[2] सर्वोंके मध्यविषे जे[3] श्रेष्ठ[4] योद्धा हैं तिन[5] योद्धावोंकूं आप निश्चय[6] करो मेरी[7] सेनाके[9] जो प्रधान[8] नायक हैं तिनोंविषे यत्किंचित् नायकोंकूं[10] नामतैं[11] उच्चारण करिकै मैं तुम्हारे[12] ताईं कथन[13] करताहूं ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे आचार्य ! हमारी सेनाविषे जे योद्धा विद्या, बल, पौरुष, कुल, शील, इत्यादिक गुणोंकरिकै श्रेष्ठ हैं। तथा जे योद्धा हमारी सेनाकूं तिस तिस स्थानविषे लेजाणेहारे मुख्य नायक हैं । ते सर्व योद्धा यद्यपि असंख्यात हैं तथापि तिन सर्व योद्धावोंविषे यत्किंचित् योद्धावोंकूं नामतैं उच्चारण करिकै तिनोंतैं भिन्न सर्व योद्धावोंके लखावणेवासतै मैं आपके प्रति कथन करताहूं । ते सर्व योद्धा आपकूं पूर्वही ज्ञात हैं। यातैं किसी अज्ञात योद्धावोंके जनावणे वासतै मैं आपके प्रति तिन योद्धावोंके नाम कथन करता नहीं किंतु, पूर्वही ज्ञात योद्धावोंके स्मरण करणेवासतै मैं तिनोंके नामोंकूं कथन करताहूं। इहां (अस्माकं तु) या पदविषे स्थित जो तु शब्दहै ता तुशब्द करिकै ता दुर्योधननै अंतर उत्पन्न हुये भयका बाहिर नहीं प्रगट करणा या प्रकारकी अपणी ढीठता बोधन करी । और (हे द्विजोत्तम) या विशेषणके कहणेकरिकै सो दुर्योधन ता द्रोणाचार्यकी स्तुति करता हुआ अपणे युद्धरूप कार्यविषे ता द्रोणाचार्यकी प्रवृत्तिकूं संपादन करता भया। और ता

द्रोणाचार्यके द्वेषपक्षविषे तो सो दुर्योधन (हे द्विजोत्तम) या विशेषणकरिकै यह अर्थ बोधन करता भया तूं ब्राह्मण होणेतैं युद्धविषे कुशल है नहीं यातैं जो कदाचित् तूं हमारेतैं विमुख होइकै पांडवोंके पक्षविषे भी जावैगा, तौभी भीष्मादिक श्रेष्ठ क्षत्रिय हमारे पक्षविषे विद्यमान हैं । यातैं तुम्हारेतैं विना हमारी किंचित् मात्रभी हानि होवैगी नहीं । और (संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते) या कहणंकरिकै ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा अपने प्रिय शिष्य पांडवोंकी सेनाकूं देखिकै हर्षकरिकै व्याकुल हुआ है मन जिसका ऐसा जो तूं है तिस तुम्हारेकूं अपने भीष्मादिक शूर पुरुषोंकी विस्मृति मत होवै या कारणतैं अपणी सेनाके भीष्मादिक शूरपुरुषोंकी स्मृति करावणेवासतै मैं यत्किंचित् तिन शूरवीरोंके नाम तुम्हारे प्रति कथन करताहूं ॥ ७ ॥

अब सो दुर्योधन राजा ता द्रोणाचार्यके समीप अपणी सेनाविषे स्थित शूर वीरोंकी गिनती करै है–

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) भवान् । भीष्मः । च । कर्णः । च । कृपः । च । समितिंजयः । अश्वत्थामा । विकर्णः । च । सौमदत्तिः । जयद्रथः ॥ ८ ॥

(पदार्थः) आप द्रोणाचार्य तथा भीष्मपितामह तथा कर्ण तथा संग्रामकूं जय करणेहारा कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा तथा विकर्ण तथा सौमदत्ति तथा जयद्रथ ॥ ८ ॥

भा॰ टी॰–हे आचार्य ! हमारी सेनाविषे प्रथम तो आप महान् शूरवीर हो । तथा भीष्मपितामह है । तथा कर्ण है । तथा संग्रामकूं जय करनेहारा कृपाचार्य है । शंका–द्रोणाचार्यका पुत्र जो अश्वत्थामा है तिसकी कर्णतैं अनंतर गिणती करणेतैं द्रोणाचार्यकूं मनविषे क्रोध हुआ होवैगा । या प्रकार ता द्रोणाचार्यके क्रोधकी शंका करिकै ता क्रोधकी निवृत्ति करणेवास्तै सो दुर्योधन यह अश्वत्थामादिक चारि तौ हमारी सेनाविषे सर्व शूरवीरोंतैं श्रेष्ठ नायक हैं या प्रकारके अभिप्रायतैं तिन चारोंकी गिनती करै हैं (अश्वत्थामा इति) हे आचार्य ! आपका पुत्र जो अश्वत्थामा है तथा हमारा छोटा भ्राता जो विकर्ण है तथा सोम-

दत्त राजाका पुत्र जो सौमदत्ति है जाकूं भूरिश्रवा कहै हैं तथा सिंधुदेशका राजा जो जयद्रथ है । ये चारों महान् शूरवीर हैं । इहां जैसे दुर्योधननैं भीष्मादिकोंकी अपेक्षा करिकै द्रोणाचार्यकी जो प्रथम गिणती करी है, सो ता द्रोणाचार्यकी प्रसन्नता करणेवासतै करी है तैसे विकर्णादिकोंकी अपेक्षा करिकै जो द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाकी प्रथम गिणती करी है सो भी ता द्रोणाचार्यकी प्रसन्नता करणेवासतै करी है । या लोकविषे अपनी उत्कृष्टताकूं तथा अपणे पुत्रकी उत्कृष्टताकूं श्रवण करिकै सर्व लोक प्रसन्न होवैं हैं । इहां (जयद्रथः) या पदके स्थानविषे किसी पुस्तकमें (तथैव च) यह पाठ भी होवे है ॥ ८ ॥

हे दुर्योधन ! तुम्हारी सेनाविषे क्या इतनेही शूरवीर हैं ? ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन हमारी सेनाविषे दूसरे भी बहुत शूरवीर हैं या प्रकारका उत्तर कथन करै है–

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) अन्ये । च । बहवः । शूराः । मदर्थे । त्यक्तजीविताः । नानाशस्त्रप्रहरणाः । सर्वे । युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे आचार्य ! हमारी सेना विषे पूर्व उक्त शूरवीरोंतैं दूसरे भी बहुत शूरवीर हैं कैसे हैं ते शूरवीर मेरे जयरूप प्रयोजनवासतै अपणे जीवनेकी आशाकूं भी जिन्होंनैं परित्याग करी है तथा नानाप्रकारके शस्त्र हैं युद्धके साधन जिन्होंके तथा ते सर्वे शूरवीर युद्धविषे बहुत कुशल हैं ॥ ९

भा० टी०–हे आचार्य ! केवल पूर्व उक्त भीष्मादिक ही हमारी सेनाविषे नहीं हैं किंतु तिन भीष्मादिकोंते भिन्न दूसरे भी शल्य, कृतवर्मा, भगदत्त इत्यादिक बहुत शूरवीर हैं । कैसे हैं ते शूरवीर । अपने प्राणोंका परित्याग करिकै भी या दुर्योधनका जय हम संपादन करेंगे या प्रकारके निश्चय करिकै युक्त हैं । तथा शूल, चक्र, गदा, खड्ग इत्यादिक नानाप्रकारके शस्त्र हैं युद्धके साधन जिन्होंके या कारणतैं ही ते सर्व शूरवीर युद्धविषे बहुत कुशल हैं । इहां (शूराः) इत्यादिक विशेषणोंकरिकै ता दुर्योधननै अपणी सेनाविषे पांडवोंकी सेनातैं बाहुल्यता कथन करी । तथा अपनेविषे ता सेनाकी अनन्य भक्ति कथन करी । तथा अपनी सेनाकी शूरता तथा युद्धविषे अत्यन्त उद्यम तथा अत्यंत कुशलता

कथन करी । ऐसी हमारी सेना इन पांडवोंकी सेनाते अधिक बल॰ वाली है, इति ॥ ९ ॥

हे दुर्योधन ! जैसे तुम्हारी सेनाविषे शस्त्रअस्त्रविद्याविषे कुशल भीष्मादिक अनेक शूरवीर हैं तैसे पांडवोंकी सेनाविषे भी शस्त्रअस्त्रविद्याविषे कुशल अनेक शूरवीर हैं यातैं ते दोनों सेना समानही हैं । ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा दूसरे प्रकारतैंभी तिन पांडवोंकी सेनातैं अपणी सेनाविषे अधिकता वर्णन करै है-

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अपर्याप्तं । तत् । अस्माकम् । बलम् । भीष्माभिरक्षितम् । पर्याप्तम् । तु । इदम् । एतेषाम् । बलम् । भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे आचार्य ! हमारी सा सेना अनंत है तथा भीष्मकरिकै सर्व ओरतैं रक्षण करी है और या पांडवोंकी यह सेना तो न्यून है तथा भीमकरिकै रक्षण करी है ॥ १० ॥

भा॰ टी॰-हे आचार्य ! यह हमारी सेना एकादश अक्षौहिणी संख्यावाली है । तथा सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है महिमा जिसकी तथा अत्यंत सूक्ष्म है बुद्धि जिसकी ऐसा जो भीष्म है ता भीष्मकरिकै सा हमारी सेना सर्व ओरतैं रक्षण करी, है । यातैं सा हमारी सेना तिन पांडवोंकी सेनातैं प्रबल है । और यह पांडवोंकी सेना तौ सप्त अक्षौहिणी संख्यावाली होणेतैं हमारी सेनातैं न्यून है । तथा अत्यंत चपलबुद्धिवाले दुर्बल भीमसेनकरिकै सर्व ओरतैं रक्षण करी हुई है । यातैं यह पांडवोंकी सेना हमारी सेनातैं अत्यंत दुर्बल है । अथवा "अपर्याप्तं तत अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं पर्याप्तं तु इदम् एतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्" या दशमें श्लोकके पदोंकी या प्रकारतैं योजना करणी-"सा पांडवोंकी सेना हमारे पराजय करणेवासतै समर्थ नहीं है । जिस वासतैं सा पांडवोंकी सेना-भीष्माभिरक्षित है । क्या महान् पराक्रमवाला तथा सूक्ष्मबुद्धिवाला जो भीष्म है सो भीष्मपितामह हमोंनैं स्थापन करा है जिस पांडवोंकी सेनाके निवृत्त करणेवासतै । या कारणतैं सा पांडवोंकी सेना भीष्माभिरक्षित है । और यह हमारी सेना तौ इन पांडवोंके पराजय करणेविषे समर्थ है । जिस कारणतैं यह हमारी सेना

भीमाभिरक्षित है। क्या अत्यंत दुर्बल हृदय जिसका तथा अत्यंत स्थूल है बुद्धि जिसकी ऐसा सो भीमसेन है। सो भीमसेन इन्होंनैं स्थापन करा है जिस हमारी सेनाके निवृत्त करणेवासतैं। या कारणतैं यह हमारी सेना भीमाभिरक्षित है। यातैं ऐसी दुर्बल पाडवोंकी सेनातैं हमारेकूं किंचितमात्रभी भय है नहीं"। इहां प्रथम व्याख्यानविषे "भीष्मेण अभिरक्षितं भीष्माभिरक्षितम्" तथा "भीमेन अभिरक्षितं भीमाभिरक्षितम्" या तृतीयातत्पुरुषसमासकरिकै 'भीष्माभिरक्षितम्' यह दुर्योधनकी सेनाका विशेषण है। और "भीमाभिराक्षितम्" यह पांडवोंकी सेनाका विशेषण है।और दूसरे व्याख्यानविषे तौ "भीष्मः अभिरक्षितो यस्मै तत् भीष्माभिरक्षितं तथा भीमः अभिरक्षितो यस्मै तत् भीमाभिरक्षितम्" या प्रकारके बहुव्रीहिसमासकरिकै "भीष्माभिरक्षितम्" यह पांडवोंकी सेनाका विशेषण है। और "भीमाभिरक्षितम्" यह दुर्योधनकी सेनाका विशेषण है ॥ १० ॥

हे दुर्योधन! या पांडवोंकी सेनाकी अपेक्षा करिकै अपणी सेनाकूं प्रबल जानिकै जो तूं भयतै रहित है तौ किसवासतै तू बहुत कल्पना करता है, ऐसी आशंकाके हुए सो दुर्योधन राजा कहै है—

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्व एव हि॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अयनेषु । च । सर्वेषु । यथाभागम् । अवस्थिताः । भीष्मम् । एव । अभिरक्षंतु । भवंतः । सर्वे । एव हि ॥ ११ ॥

(पदार्थः) जिस कारणतैं द्रोणाचार्यादिक तुम सर्व योद्धा व्यूहरचनायुक्त सेनाके सर्व प्रवेशमार्गोंविषे अपणे अपणे स्थानविषे स्थित हुए या भीष्मपितामहकूं ही सर्वओरतैं रक्षण करो ॥ ११ ॥

भा० टी०—'अयनेषु च' या पदविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्व कर्त्तव्यकी अपेक्षा करिकै कर्त्तव्यविशेषका बोधक है। युद्धके प्रारंभकालविषे योद्धा पुरुषोंके यथायोग्य युद्धभूमिविषे पूर्वउत्तरादिक दिशावोंके विभाग करिकै जो स्थितिके स्थान नियम करे जावैं हैं तिन स्थानोंका नाम अयन है। और सर्व सेनाका पति तौ ता सर्व सेनाकूं अपणे आश्रित करिकै ता सर्व सेनाके मध्यविषे स्थित होवै है। सो इस हमारी सेनाका पति भीष्मपितामह है। सो भीष्मपितामह युद्धके अत्यंत

अभिनिवेशतैं अपणे सन्मुखदेशकी तरफ तथा अपणे पृष्ठदेशकी तरफ तथा अपणे वामभागदक्षिणभागकी तरफ देखता नहीं यातैं द्रोणाचार्यादिक तुम सर्व योद्धा अपणे भिन्न भिन्न रणभूमिनकूं परित्याग करिकै अपणे अपणे यथायोग्य स्थान-विषे स्थित हुए या भीष्मपितामहका ही सर्व ओरतैं रक्षण करो । जिसकरिकै कोई परसेनाका शत्रु किसी मार्गद्वारा आइकै या भीष्मपितामहका हनन नहीं करै । इस प्रकार सावधान होइकै रक्षण करो । जब तुम सर्व योद्धा या भीष्मपितामहका रक्षण करौगे तबही ता भीष्मपितामहकी कृपातैं हम सर्वोंका रक्षण होवैगा ॥ ११ ॥

हे संजय ! या प्रकारके वचन जब ता दुर्योधन राजानैं कथन करे तिसतैं अनंतर ते भीष्मादिक योद्धा क्या कार्य करते भये । या प्रकारकी ता धृतराष्ट्रकी शंकाके हुए कोई हमारी स्तुति करो अथवा कोई हमारी निंदा करो इस दुर्योधन राजाके वासतै यह हमारा देह अवश्यकरिकै पतन होवैगा या प्रकारके अभिप्राय-करिकै सो भीष्मपितामह ता दुर्योधनके चित्तविषे हर्ष उत्पन्न करता हुआ सिंहना-दकूं तथा शंखके शब्दकूं करता भया या प्रकारका उत्तर सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति कथन करै है-

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान्॥ १२॥

(पदच्छेदः) तस्य । संजनयन् । हर्षम् । कुरुवृद्धः । पितामहः । सिंह-नादम् । विनद्य । उच्चैः । शंखम् । दध्मौ । प्रतापवान् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! महान् प्रतापवाला तथा कुरुवंशविषे वृद्ध ऐसा भीष्मपि-तामह तिस दुर्योधन राजाके हर्षकूं उत्पन्न करता हुआ सिंहनादकूं करिकै उच्चैः स्वरतैं शंखकूं बजावता भया ॥ १२ ॥

भा० टी०-हे धृतराष्ट्र ! पांडवोंकी सेनाकूं देखिकरिकै उत्पन्न हुआ है भय जिसकूं तथा ता भयकी निवृत्ति करणेवासतै कपटकरिकै ता द्रोणाचार्यके शरणकूं प्राप्त हुआ तथा इस कालविषेभी यह दुर्योधन हमारे साथि कपट करै है या प्रका-रके असंतोषतैं वाणीमात्रकरिकैभी जिसका आचार्यनैं आदर नहीं करा । तथा ता द्रोणाचार्यकी उपेक्षाकूं जानिकै (अयनेषु च सर्वेषु) इत्यादिक वचनोंकरिकै भीष्मपितामहकी स्तुति करी है जिसनैं ऐसा जो दुर्योधन राजा है, ता दुर्योधनके भयकी निवृत्ति करणेहारा तथा दुर्योधन राजाके जयका सूचन करणेहारा ऐसा

जो बुद्धिविषे स्थित उल्लासरूप हर्ष है ता हर्षकूं उत्पन्न करता हुआ सो भीष्मपितामह महान् सिंहनादकूं करिकै उच्चैः स्वरतैं शंखकूं बजावता भया । इहां संजयनैं भीष्मके कुरुवृद्ध, पितामह, प्रतापवान् यह तीन विशेषण दिये हैं । तहां (कुरुवृद्धः) या प्रथम विशेषणकरिकै तौ ता भीष्मविषे द्रोणाचार्यके तथा दुर्योधन राजाके अभिप्रायका ज्ञान सूचन करा जिसवास्तै लोकविषे वृद्ध पुरुषोंविषेही पुत्रादिकोंके अभिप्रायका ज्ञान होवै है और (पितामहः) या द्वितीय विशेषणकरिकै जैसे द्रोणाचार्यनैं या दुर्योधनादिकोंकी उपेक्षा करी है तैसे हमारेकूं इन्होंकी उपेक्षा करणी योग्य नहीं है या प्रकारका अभिप्राय सूचन करा । और तीसरे (प्रतापवान्) या विशेषणकरिकै यह अर्थ सूचन करा । उच्चैः स्वरतैं सिंहनादपूर्वक जो भीष्मनैं शंखकूं बजाया है सो भीष्मके शंखका शब्द पांडवोंकी सेनाकूं अवश्यकरिकै भयकी प्राप्ति करैगा ॥ १२ ॥

अब ता सेनापति भीष्मकी प्रवृत्तितैं अनंतर जिस प्रकार सर्व योद्धाओंकी प्रवृत्ति होती भई ताकूं संजय निरूपण करै है—

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) ततः । शंखाः । च । भेर्यः । च । पणवानकगोमुखाः । सहसा । एव । अभ्यहन्यंत । सः । शब्दः । तुमुलः । अभवत् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! ता सेनापति भीष्मकी प्रवृत्तितैं अनंतर ता दुर्योधनकी सेनाविषे अनेकशंख तथा अनेकभेरी तथा अनेक पणव तथा अनेक आनक तथा अनेक गोमुख शीघ्र ही बजंते भये सो शंखादिकोंका शब्द महान् होताभया ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! ता सेनापति भीष्मके शंखके शब्दकूं श्रवण करिकै उत्पन्न हुआ है युद्ध करणेका उत्साह जिन्होंविषे ऐसे जो द्रोणाचार्यादिक योद्धा हैं ते सर्व योद्धा अपणे अपणे शंखोंकूं शीघ्रही बजावते भये । तथा दूसरे सेनाचर पुरुष भेरी, पणव, आनक, गोमुख इत्यादिक वादित्रोंकूं शीघ्रही बजावते भये । तिन शंख भेरी आदिकोंका सो ध्वनिरूप शब्द महान् होता भया । ता महान् शब्दकूं श्रवणकरिकैभी तिन पांडवोंकूं किंचित्मात्रभी क्षोभ नहीं होता भया । इहां पणव नाम मृदंगका है । आनक नाम नगारेका है । गोमुख नाम रणसिंहाका है, इति ॥ १३ ॥

इस प्रकार दुर्योधन राजाकी सेनाकी प्रवृत्तिकूं कथन करिकै अब पांडवोंकी सेनाकी प्रवृत्तिकूं सो संजय कथन करै है–

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) ततः । श्वेतैः । हयैः । युक्ते । महति । स्यंदने । स्थितौ । माधवः । पांडवः । च । एव । दिव्यौ । शंखौ । प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! भीष्मादिकोंके शंखादिकोंके शब्द श्रवणतै अनंतर श्वेतवर्णवाले अश्वोंकरिकै युक्त तथा महान् ऐसे रथविषे स्थित जो श्रीकृष्णभगवान् हैं तथा अर्जुन है ते दोनों दिव्य शंखोंकूं बजावते भये ॥ १४ ॥

भा० टी०–या श्लोकके अक्षरोंका अर्थ स्पष्टही है । ताका भावार्थ यह है कि, यद्यपि पांडवोंकी सेनाविषे अर्जुनकी न्याईं तथा भगवानकी न्याईं दूसरेभी सर्व योद्धा अपणे अपणे रथोंविषेही स्थित थे । यातैं केवल अर्जुनका तथा कृष्णभगवानकाही रथस्थत्वरूपविशेषण संभवै नहीं । तथापि (ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते) इत्यादिक विशेषणयुक्त रथविषे जो अर्जुनकी तथा भगवान्की स्थिति कथन करी है सो दूसरे रथोंतैं ता अर्जुनके रथकी उत्कृष्टता बोधन करणेवासतै कथन करी है । यातैं अग्नि देवतानैं अर्जुनके ताईं दिया जो रथ है सो रथ किसीभी शत्रुकरिकै चलायमान होइसकै नहीं । ऐसे महान् रथविषे स्थित जो अर्जुन तथा कृष्णभगवान् हैं ते दोनों किसीभी शत्रुकरिकै जीते जावैं नहीं, इति ॥ १४ ॥

अब सो अर्जुन तथा श्रीकृष्णभगवान् जिन शंखोंकूं बजावते भये हैं तिन शंखोंके नाम तथा भीमादिकोंके शंखोंके नाम दो श्लोकोंकरिकै वर्णन करै हैं–

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) पांचजन्यम् । हृषीकेशः । देवदत्तम् । धनंजयः । पौंड्रम् । दध्मौ । महाशंखम् । भीमकर्मा । वृकोदरः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) श्रीकृष्णभगवान् पांचजन्य नामा शंखकूं बजावता भया । तथा अर्जुन देवदत्त नामा शंखकूं बजावता भया और लोकोंकूं भयकी प्राप्ति करणेहारे हैं कर्म जिसके तथा वृककी न्याईं है उदर जिसका ऐसा भीमसेन पौंड्रनामा महाशंखकूं बजावता भया ॥ १५ ॥

भा० टी०—पंचजनोंतैं जो उत्पन्न होवै ताकूं पांचजन्य कहै हैं ता पांचजन्य नामा शंखकूं हृषीकेश बजावता भया। और देवताओंनें दिया हुआ जो शंख है ताका नाम देवदत्त है ता देवदत्त नामा शंखकूं धनंजय बजावता भया। इहां संजयनैं श्रीकृष्णभगवान्कूं जो हृषीकेश नाम करिकै कथन करा है ताका यह अभिप्राय है हृषीकेश या नामविषे हृषीक और ईश ये दो पद हैं तहां हृषीक नाम इंद्रियोंका है ईश नाम प्रेरकका है ते दोनों पद मिलकै सर्व इंद्रियोंकूं अपणे अपणे कार्यविषे प्रवृत्त करणेहारे अंतर्यामी ईश्वरकूं कथन करैं हैं। ऐसा सर्वका अंतर्यामी कृष्णभगवान् जिन पांडवोंकी सहायताविषे है तिन पांडवोंकूं तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्र जय करि सकैंगे नहीं। और ता संजयनैं अर्जुनकूं जो धनंजय नामकरिकै कथन करा है ताका यह अभिप्राय है सर्व दिशाओंके जयकालविषे सर्व राजाओंकूं जीतिकरिकै अर्जुन धनकूं लेआवता भया है। या कारणतैं ता अर्जुनकूं धनंजय कहैं हैं। ऐसा महान् पराक्रमवाला अर्जुन तुम्हारे पुत्रोंतैं जीत्या जावैगा नहीं। और ता संजयनैं भीमसेनका जो वृकोदर यह विशेषण दिया है ताका यह अभिप्राय है वृककी न्याई ता भीमसेनविषे बहुत अन्नके पचावणेकी सामर्थ्य है यातैं सो भीमसेन अत्यंत बलवान् है ॥ १५ ॥

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अनंतविजयम्। राजा। कुंतीपुत्रः। युधिष्ठिरः। नकुलः। सहदेवः। च। सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर अनंतविजय नामा शंखकूं बजावता भया और नकुल तथा सहदेव ये दोनों यथाक्रमतैं सुघोष और मणिपुष्पक या दोनों शंखोंकूं बजावते भये ॥ १६ ॥

भा०टी०—नाशतैं रहित विजय प्राप्त होवै जिसतैं ताका नाम अनंतविजय है ऐसे अनंतविजय नामा शंखकूं कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर बजावता भया। इहां कुंतीमातानैं महान् तप करिकै धर्मराजाका आराधन करा था। ता धर्मराजातैं कुंतीकूं युधिष्ठिर पुत्रकी प्राप्ति भईथी। यातैं यह युधिष्ठिर राजा महाबलवान् है। या प्रकार ता युधिष्ठिरके प्रभावका बोधन करणेवासतै संजयनैं ता युधिष्ठिरका कुंतीपुत्र यह विशेषण दिया है। और सो युधिष्ठिर राजसूययज्ञका कर्ता है। यातैं

राजाशब्दकी मुख्य अर्थता इस युधिष्ठिरविषेही घटै है । या प्रकारके अर्थका बोधन करणेवासतै संजयनै ता युधिष्ठिरका राजा यह विशेषण दिया है । और युद्धविषे जयरूप फलका भागी हुआ जो स्थित होवै ताकूं युधिष्ठिर कहैं हैं । ता युधिष्ठिरपदकरिकै संजयनैं यह अर्थ सूचन करा या संग्रामविषे जयरूप फलका भागी हुआ यह युधिष्ठिरही स्थित होवैगा । ताके प्रतिपक्षी दुर्योधनादिक ता जयरूप फलके भागी हुए या संग्रामविषे स्थित होवैंगे नहीं इति । इहां दो श्लोकोंकरिकै पांचजन्य, देवदत्त, पौंड्र, अनंतविजय, सुघोष, मणिपुष्पक ये षट् शंखोंके नाम कथन करे । ता करिकै संजयनैं यह अर्थ बोधन करा या पांडवोंकी सेनाविषे अपणे अपणे नामोंकरिकै प्रसिद्ध इतने शंख हैं । और दुर्योधन राजाकी सेनाविषे तौ अपणे नामकरिकै प्रसिद्ध एकभी शंख नहीं है । यातैं यह पांडवोंकी सेना तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्रोंकी सेनातैं अत्यंत प्रबल है ॥ १६ ॥

अब धृतराष्ट्रकूं जो अपणे पुत्रोंके जयकी आशा है ता आशाके निवृत्त करणेवासतै सो संजय ता पांडवोंके पक्षविषे वर्त्तमान दूसरे राजाओंकी एकसंमतिकूं दो श्लोकोंकरिकै कथन करै है—

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

(पदच्छेदः) काश्यः । च । परमेष्वासः । शिखंडी । च । महारथः । धृष्टद्युम्नः । विराटः । च । सात्यकिः । च । अपराजितः ॥ १७ ॥ द्रुपदः । द्रौपदेयाः । च । सर्वशः । पृथिवीपते । सौभद्रः । च । महाबाहुः । शंखान् । दध्मुः । पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे पृथिवीका पति धृतराष्ट्र ! महान् धनुषवाला जो काशीका राजा है तथा महारथी जो शिखण्डी है तथा धृष्टद्युम्न जो है तथा विराट राजा जो है तथा शत्रुवोंकरिकै नहीं जीत्या हुआ जो सात्यकि राजा है ॥ १७ ॥ तथा द्रुपद राजा जो है तथा द्रौपदीके जो पंच पुत्र हैं तथा महान् बाहुवाला जो सुभद्राका पुत्र है यह सर्व योद्धा भिन्न भिन्न अपणेअपणे शंखोंकूं बजावते भये ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णभगवान्सहित अर्जुनादिक पंच पांडवोंकी प्रवृत्तिकूं देखिकरिकै तिन पांडवोंके पक्षपाति काशीराजा तथा शिखंडी तथा धृष्टद्युम्न तथा विराट राजा तथा सात्यकि राजा तथा द्रुपदराजा तथा द्रौपदीके प्रतिविंध्यादिक पंचपुत्र तथा सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु ये सर्व योद्धा भिन्न भिन्न अपणे अपणे शंखोंकूं बजावते भये । इहां मुखविषे स्थित श्मश्रुरूप बालोंतैं रहितपणेका नाम शिखंड है सो शिखंड जिसविषे होवै ताका नाम शिखंडी है । सो शिखंडी पंचाल देशका राजा है। और धृष्टद्युम्न या नामविषे धृष्ट और द्युम्न ये दो पद हैं तहां शत्रुवोंकूं पीडा करणेहारेका नाम धृष्ट है द्युम्न नाम बलका है । शत्रुवोंकूं पीडा करणेहारा है बल जिसका ताकूं धृष्टद्युम्न कहै हैं । और सत्यक नामा राजाका जो पुत्र होवै ताका नाम सात्यकि है । और जानुपर्यन्त जिसकी बाहु विशाल होवैं ताकूं महाबाहु कहैं हैं ।तहां (परमेष्वासः) यह विशेषण काशीराजाका है । और (महारथः) यह विशेषण शिखंडी राजाका है । और (अपराजितः) ये विशेषण सात्यकि राजाका है । और (महाबाहुः) यह विशेषण सुभद्राके पुत्रका है । अथवा परमेष्वासः महारथः अपराजितः महाबाहुः ये चारों विशेषण काशीराजातैं आदि लैके सर्व राजाओंके जानणे ॥ १७ ॥ १८ ॥

ता अर्जुनादिक पांडवोंके शंखोंके शब्दकूं श्रवण करिकै तिन दुर्योधनादिकोंकी किस प्रकारकी स्थिति होती भई या प्रकारकी धृतराष्ट्रकी शंकाके हुए संजय कहै है—

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) सः । घोषः । धार्तराष्ट्राणाम् । हृदयानि । व्यदारयत् । नभः । च । पृथिवीम् । च । एव । तुमुलः । व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) सो महान् शंखोंका शब्द आकाशकूं तथा पृथिवीकूं अपणे प्रतिध्वनिरूप शब्दकरिकै पूर्ण करता हुआ धृतराष्ट्रके पुत्रपौत्रादिक संबंधियोंके हृदयोंकूं विदारण करता भया ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारे दुर्योधनादिकोंकी सेनाविषे भी सो शंखादिकोंका शब्द यद्यपि महान् होता भया । तथापि सो शंखादिकोंका शब्द तिन पांडवोंकूं किंचित्मात्र भी क्षोभकी प्राप्ति नहीं करता भया । और पांडवोंकी

-सेनाविषे स्थित जो पांचजन्य, देवदत्त, पौंड्र इत्यादिक शंख हैं तिन शंखोंके बजावणेतैं उत्पन्न भया जो ध्वनिरूप शब्द है सो ध्वनिरूम महान् शब्द अपणी प्रतिध्वनिरूप शब्दकरिकै आकाशकूं तथा पृथिवीकूं तथा पूर्वादिक दिशाओंकूं तथा पर्वतकी गुहाओंकूं पूर्ण करता हुआ । तुम्हारे संबंधी दुर्योधनादिकोंके तथा सेनापति भीष्मादिकोंके हृदयोंकूं भेदन करता भया । तात्पर्य यह जैसे शस्त्रकरिकै हृदय देशके भेदन कियेतैं पीडा होवै है । तिसी प्रकारकी पीडाकूं सो शब्द उत्पन्न करता भया । इहां (पृथिवीं चैव) या मूलश्लोकके पदविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै पूर्वादिक सर्व दिशाओंका तथा पर्वतकी गुहाओंका ग्रहण करा है । (एव) यह शब्द श्लोकके पाद पूर्णतावासतै है ॥ १९ ॥

पूर्वश्लोकविषे धृतराष्ट्रके पुत्रपौत्रादिक संबंधियोंविषे भयकी प्राप्ति कथन करी अब पांडवोंविषे तिन दुर्योधनादिकोंतैं विपरीत निर्भयताका निरूपण करैं हैं—

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ॥
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते॥

(पदच्छेदः) अथ । व्यस्थितान् । दृष्ट्वा । धार्तराष्ट्रान् । कपिध्वजः । प्रवृत्ते । शस्त्रसंपाते । धनुः । उद्यम्य । पांडवः ॥ २० ॥ हृषीकेशं । तदा । वाक्यम् । इदम् । आह । महीपते ।

(पदार्थः) हे पृथिवीके पति धृतराष्ट्र ! ता भयकी उत्पत्तितैं अनन्तरभी युद्धके उद्यमकरिकै स्थित धृतराष्ट्रके संबंधियोंकूं देखिकरिकै तिस कालविषे शस्त्रप्रहारके प्रवर्त्तमान हुए कपिध्वज अर्जुन गांडीव नामा धनुषकूं हाथविषे उठाइके श्रीकृष्णभगवानके प्रति यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ २० ॥

भा०टी०—हे धृतराष्ट्र ! पांडवोंके शंखोंके महान् शब्दोंकूं श्रवण करिकै तुम्हारे दुर्योधनादिकोंके चित्तविषे उत्पन्न भया जो भय है ता भयकरिकै यद्यपि तिन दुर्योधनादिकोंकूं ता युद्धतैं भागणाही प्राप्त भया था । तथापि ते दुर्योधनादिक अपणे ढीठ स्वभावतैं ता युद्धतैं नहीं भागते भये । उलटा युद्धके उद्यम करिकै युक्त हुए ता रणभूमिविषेही स्थित होते भये । ऐसे दुर्योधनादिकोंकूं नेत्रोंसैं देखिकरिकै ता कालविषे सो कपिध्वज अर्जुन युद्ध करणेवासतै

गांडीव नामा धनुषकूं अपणे हस्तविषे उठाइके अपणे सारथी हृषीकेशभगवान्के प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। इहां सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है पराक्रम जिसका ऐसा जो हनुमान् है ताकूं कपि कहैं हैं सो हनुमान् कपि है ध्वजाविषे जिसके ताकूं कपिध्वज कहैं हैं। ता कपिध्वज विशेषणके कहणे करिकै संजयनैं यह अर्थ बोधन करा। जिस हनुमान्की सहायता करिकै श्रीरामचंद्रनैं रावणादिक सर्व असुरोंकूं हनन करा है। ऐसा हनुमान् जिस अर्जुनकी ध्वजाविषे स्थित है। जिस अर्जुनकूं किसीभी योद्धातैं भय होवैगा नहीं और नेत्रादिक सर्व इंद्रियोंका प्रवर्तक होणेतैं सर्व अंतःकरणकी वृत्तियोंका जो ज्ञाता होवै ताकूं हृषीकेश कहैं हैं। ऐसे अंतर्यामी श्रीकृष्णभगवान्के प्रति सो अर्जुन या प्रकारका वचन कहता भया। ता कृष्णभगवान्की संमतितैं विना सो अर्जुन तिस कालविषे स्वतंत्र होइकै किंचितमात्र भी कार्यकूं नहीं करता भया। इहां (हे महीपते) या संबोधनकरिकै संजयने धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ सूचन करा। ये अर्जुनादिक पांडव जिस कार्यका आरंभ करते हैं सो प्रथम विचार करिकै ही करते हैं। विचारतैं विना किसी कार्यविषे भी प्रवृत्त होते नहीं। यातैं ये पांडव राजनीतिविषे तथा धर्मविषे अत्यंत कुशल हैं। और तुम्होंनैं जो इन पांडवोंका राज्य लिया है सो विचार कियेतैं विना ही लिया है। यातैं तुम्हारेविषे राजनीति तथा धर्म दोनों नहीं हैं। यातैं तुम्हारा कदाचित् भी जय होणेहार नहीं है किंतु नीतिधर्मवाले इन पांडवोंका ही जय होवैगा ॥ २० ॥

अब अढाई श्लोककरिकै ता अर्जुनके वचनका निरूपण करैं हैं–

अर्जुन उवाच।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) सेनयोः। उभयोः। मध्ये। रथम्। स्थापय। मे। अच्युत ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अच्युत! दोनों सेनाओंके मध्यभागविषे मेरे रथकूं स्थापन करो ॥ २१ ॥

भा० टी०–हे श्रीकृष्णभगवन्! यह जो हमारी सेना है। तथा हमारे प्रतिपक्षी दुर्योधनादिकोंकी जो यह सेना है तिन दोनों सेनाओंके मध्यदेशविषे या हमारे

रथकूं आप स्थित करो। या प्रकारकी आज्ञा सो अर्जुन श्रीभगवान्‌केप्रति करता भया। इतने कहणेकरिकै यह अर्थ सूचन करा। परमेश्वरके जो अनन्य भक्त हैं तिन भक्तोंकूं या लोकविषे कोई भी कार्य दुर्घट नहीं है। जिस कारणतैं साक्षात् परमेश्वर भी तिन भक्तोंकी आज्ञाकूं अंगीकार करैं हैं। यातैं इन पांडवोंका निश्चयकरिकै जय होवैगा॥ शंका–हे अर्जुन ! या दोनों सेनाओंके मध्यविषे जो मैं तुम्हारे रथकूं स्थापन करौंगा तौ यह दुर्योधनादिक शत्रु हमारेकूं रथतैं नीचै गिराइ देवैंगे। या प्रकारकी श्रीकृष्णभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (अच्युत इति) हे भगवन् ! सर्व देशविषे तथा सर्व कालविषे तथा सर्व वस्तुविषे जो नाशकूं नहीं प्राप्त होवै है ताकूं अच्युत कहैं हैं ऐसे अच्युत आप हो। ऐसे आपकूं कौन पुरुष नीचै गिरावनेमें समर्थ है किंतु ऐसा कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है। इहां (हे अच्युत) या संबोधनकरिकै अर्जुननै श्रीकृष्णभगवान्‌विषे निर्विकारता बोधन करी। और निर्विकारविषे क्रोधादिक विकार संभवैं नहीं यातैं मेरे रथकूं आप स्थापन करो या प्रकारकी आज्ञा करनेकरिकै श्रीभगवानविषे संभावना करा जो अर्जुनऊपरि क्रोध है ता क्रोधकूं भी अच्युत या संबोधनकरिकै अर्जुननैं निवृत्त करा ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! या दोनों सेनाओंके मध्यविषे तो मैं तुम्हारे रथकूं ले जाताहूं परंतु तहां रथके ले जाणेकरिकै तुम्हारा कौन प्रयोजन सिद्ध होवैगा। सो अपणा प्रयोजन तूं हमारेप्रति कथन कर जिस वासतै प्रयोजनतैं विना मंद पुरुषोंकीभी प्रवृत्ति होवै नहीं तौ बुद्धिमान् पुरुषोंकी प्रयोजनतैं विना किस प्रकार प्रवृत्ति होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी। ऐसी श्रीकृष्णभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन ताका प्रयोजन कथन करै है–

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) यावत्। एतान्। निरीक्षे। अहम्। योद्धुकामान्। अवस्थितान्। कैः। मया। सह। योद्धव्यम्। अस्मिन्। रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जितने देशविषे स्थित होइकै मैं अर्जुन युद्धकी कामनावाले तथा रणभूमिविषे स्थित इन भीष्मादिक योद्धावोंकूं भलीप्रकार देखौं तितने देशविषे हमारे रथकूं ले जाइकै स्थित करो । इस युद्धरूप व्यापारविषे मैं नै किनोंके साथि युद्ध करणा योग्य है ॥ २२ ॥

भा॰ टी॰–हे भगवन् ! हमारे साथि युद्ध करनेकी है कामना जिनोंकूं ऐसे जो युद्धभूमिविषे स्थित ये भीष्मद्रोणादिक वीर पुरुष हैं तिन भीष्मद्रोणादिक सर्व योद्धावोंकूं जितने देशविषे जाइकै मैं देखणेविषे समर्थ होवौं तितने देशविषे या हमारे रथकूं आप स्थित करो । अथवा (यावत्) यह पद कालका वाचक है। क्या जितने कालपर्यंत इन भीष्मादिक सर्व योद्धावोंकूं मैं भली प्रकारसैं देखौं तितने कालपर्यंत या हमारे रथकूं दोनों सेनावोंके मध्यविषे आप स्थित करो, इति । इहां (योद्धुकामान्) या विशेषणकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा ये भीष्मद्रोणादिक केवल युद्धकीही कामनावाले हैं । यातै हमारे साथि कदाचितभी ये मित्रभाव करैंगे नहीं । और (अवस्थितान्) या विशेषणकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा हमारे भयकरिकै ये भीष्मद्रोणादिक या रणभूमितैं कदाचितभी चलायमान नहीं होवैंगे, इति । शंका–हे अर्जुन ! तूं तौ युद्धके करणेहारा है कोई युद्धके देखणेहारा तूं नहीं है । यातैं भीष्मद्रोणादिक योद्धावोंके देखणेकरिकै तुम्हारा कौन प्रयोजन सिद्ध होवैगा ? ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए सो अर्जुन तिनोंके देखणेका प्रयोजन कथन करै है ।(कैर्मया सह योद्धव्यं इति) इहां (सह) या पदका (कैः मया) या दोनों पदोंके साथि संबंध संभवै है । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है । बांधवोंकाही परस्पर युद्धका उद्यम हुआ है जिसविषे ऐसी जो यह रणभूमि है तिसविषे स्थित जो ये हमारे प्रतिपक्षी भीष्मद्रोणादिक हैं तिनोंविषे किस योद्धाके साथि हमारेकूं युद्ध करणा योग्य है । तथा तिन भीष्मद्रोणादिक सर्व योद्धावोंविषे किस योद्धाकूं हमारे साथि युद्ध करणा योग्य है । या प्रकारका एक महान् कौतुक है ता कौतुकका ज्ञानही या दोनों सेनावोंके मध्यविषे रथ स्थित करनेका प्रयोजन है ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! ये भीष्मद्रोणादिक बांधवही युद्धके संकल्पका परित्याग करिकै तुम दोनोंका परस्पर मित्रभाव करावैंगे तूं युद्धका संकल्प किसवासतै करता है । ऐसी श्रीकृष्णभगवान्‌की शंकाके हुए सो अर्जुन कहै है–

योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्र समागताः ॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) योत्स्यमानान् । अवेक्षे । अहम् । ये । एते । अत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य । दुर्बुद्धेः । युद्ध । प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

(पदार्थः) दुर्बुद्धिवाले धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके युद्धविषे प्रियकी इच्छा करते हुए जे ये भीष्मद्रोणादिक यां कुरुक्षेत्रभूमिविषे प्राप्त हुए हैं तिनं युद्धकी कामनावाले भीष्मद्रोणादिक योद्धावोंकूं मैं अर्जुन भलीप्रकार देखौं ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! अपणी रक्षा करणेहरे उपायकी अज्ञानरूप जो दुर्बुद्धि है ता दुर्बुद्धिकरिकै युक्त जो यह धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन है ता दुर्योधनके केवल युद्धकरिकैही प्रियकी इच्छा करते हुए जो ये भीष्मद्रोणादिक योद्धा या धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे प्राप्त हुए हैं, तिन युद्धकी इच्छावाले भीष्मद्रोणादिकाकूं जैसे मैं भली प्रकारतैं देखौं तैसे मेरे रथकूं आप स्थित करो । इहां (युद्धे प्रियचिकीर्षवः) या विशेषणके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा ये भीष्मद्रोणादिक वृद्ध पुरुषभी केवल युद्धकरिकैही या दुर्योधनके हितकी इच्छा करते हैं । ता दुर्योधनकी दुर्बुद्धि आदिकोंकी निवृत्ति करिकै या दुर्योधनके हितकी इच्छा करते नहीं । ऐसे भीष्मद्रोणादिकोंनैं हम दोनोंकी मित्रता क्या करावणी है, इति । और (योत्स्यमानान्) या विशेषणके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा या भीष्मद्रोणादिकोंक केवल हमारे साथि युद्ध करनेकीही इच्छा है कोई हमारे साथि मित्रभाव करनेकी इनोंकूं इच्छा है नहीं । यातैं इनोंके साथि युद्ध करणेवासतैं हमारेकूं प्रथम इनोंका देखणा उचित है ॥ २३ ॥

इस प्रकार अर्जुनकरिकै प्रेरणा करा हुआ सो श्रीकृष्णभगवान् अहिंसारूप परम धर्मकूं आश्रयण करिकै ता अर्जुनकूं अवश्यकरिकै ता युद्धतैं निवृत्त करैगा। या प्रकारके धृतराष्ट्रके अभिप्रायकी शंका करिके ता शंकाके निवृत्त करणेकी इच्छावान् सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति या प्रकारका वचन कहत भया । या प्रकारका वचन वैशंपायन जनमेजयके प्रति कथन करै है—

संजय उवाच।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्तः । हृषीकेशः । गुडाकेशेन । भारत । सेनयोः । उभयोः । मध्ये । स्थापयित्वा । रथोत्तमम् ॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः । सर्वेषाम् । च । महीक्षिताम् । उवाच । पार्थ । पश्य । एतान् । समवेतान् । कुरून् । इति ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! इस प्रकार गुडाकेश अर्जुन करिकै कह्या हुआ हृषीकेश भगवान् दोनों सेनावोंके मध्यदेशविषे भीष्मद्रोण दोनोंके सन्मुख तथा सर्व राजावोंके सन्मुख तां उत्तम रथकूं स्थापन करिकै हे पार्थ । इन एकटे हुए कौरवोंकूं तूं देखै यां प्रकारका वचन कहता भया ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे (भारत) यह धृतराष्ट्रका संबोधन है । ता संबोधनकरिकै संजयनैं यह अर्थ सूचन करा तुम्हारी भरतराजाके वंशविषे उत्पत्ति हुई है । ता अपणे भरतवंशकी मर्यादाकूं विचार करिकै भी तुम्हारेकूं अपणे संबंधियोंका द्रोह परित्याग करणेयोग्य है ॥ इहां अर्जुनकूं गुडाकेश नाम करिकै कथन करा ता गुडाकेश शब्दका यह अर्थ है । 'गुडाकायाः ईशः गुडाकेशः' । अर्थ, यह—गुडाका नाम निद्राका है ता निद्राका जो ईश होवे क्या जिसनैं निद्राकूं अपणे वशवर्ती करी होवे ताका नाम 'गुडाकेश है' इति । अथवा गुडावत केशाः यस्य स गुडाकेशः । अर्थ, यह—" अंगुष्ठतर्जनीयोगो गुडा नाम्नी तु मुद्रिका" । या शास्त्रके वचनतैं हस्तके अंगुष्ठका जो तर्जनी अंगुलीके साथि संबंध है ताका नाम गुडा मुद्रिका है । ता गुडामुद्रिकाके परिमाण हैं अग्र केश जिसके ताका नाम गुडाकेश है; इति । अथवा गुडं अकति व्याप्नोतीति गुडाकः शिवः स शिवः ईशो यस्य स गुडाकेशः । अर्थ, यह— "गुडो गोलेक्षुपाकयोः" या कोशके वचनतैं गुडशब्द गोलका वाचक है । तथा लोकप्रसिद्ध गुडका वाचक है । तहां जैसे अग्नि करिकै तपे हुए लोहपिंडकूं सो

अग्नि अंतरबाहिर व्यापक करिकै रहै है तैसे या ब्रह्मांडरूप गोलकूं अंतरबाहिर व्याप्त करिकै जो स्थित होवै ताका नाम गुडाक है । ऐसा शिवभगवान् है । तहां श्रुतिः—"विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवम्" ॥ अर्थ, यह—सर्व विश्वकूं व्याप्त करणेहारा जो एक शिव है ता शिवकूं अपणा आत्मारूप जानिकै यह पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवे है । ऐसा गुडाकनामा शिव है ईश जिसका ताका नाम गुडाकेश है, इति । अथवा गुडवन्मधुरस्सन् भक्तान् अकति प्राप्नोतीति गुडाकः शिवः । स शिवः ईशो यस्य स गुडाकेशः अर्थ, यह—जैसे यह लोकप्रसिद्ध गुड मधुर होवे है तैसे मधुर हुआ जो भक्तजनोंकूं प्राप्त होवै ताका नाम गुडाक है । ऐसा शिव भगवान् है । तहां श्रुतिः—" स्वादुष्किलायं मधुमानुतायम्" इति । ऐसा शिवभगवान् है ईश जिसका ताका नाम गुडाकेश है, इति । और हृषीक नाम इंद्रियोंका है । तिन सर्व इंद्रियोंकूं जो अपणे अपणे कार्यविषे प्रवृत्त करै ताका नाम हृषीकेश है । ऐसे हृषीकेशभगवान्के प्रति जब ता गुडाकेश अर्जुननैं दोनों सेनावोंके मध्यविषे रथके स्थापन करणेकी आज्ञा करी तब सो कृष्णभगवान् यह अर्जुन हमारा भृत्य होइकै मेरेकूं स्वामीकूं नीचकर्मरूप सारथीपणेविषे प्रेरणा करता है या प्रकारका दोष आरोपण करिकै ता अर्जुनऊपरि क्रोध नहीं करता भया । जिस वासतै सो कृष्णभगवान् सर्वदा भक्तजनोंके अधीन रहै है । तथा ता अर्जुनकूं युद्धतैं निवृत्तभी नहीं करता भया । किंतु ता अर्जुनके वचनकूं मानिकै तिन दोनों सेनावोंके मध्यदेश विषे भीष्मद्रोण दोनोंके सन्मुख तथा सर्व राजावोंके सन्मुख ता अर्जुनके उत्तम रथकूं स्थापन करता भया । इहां यद्यपि सर्व राजावोंके सन्मुख ता रथकूं स्थापन करता भया इतनेमात्र कहणेकरिकैही भीष्मद्रोणादिक सर्व राजाओंका ग्रहण होइसकै है यातैं भीष्मद्रोणका पृथक् कहणा अनुचित है । तथापि सर्व राजावोंविषे ता भीष्मद्रोणकी अत्यंत प्रधानता बोधन करणेवासतै तिन दोनोंका पृथक् ग्रहण करा है । तहां रथकूं स्थापन करता भया इतने कहणेकरिकैही यद्यपि निर्वाह होइ सकैहै तथापि दूसरे सर्व रथोंतैं ता रथविषे उत्कृष्टता बोधन करणेवासतैं ता रथका उत्तम यह विशेषण दिया है । ता रथकी उत्कृष्टताविषे यह हेतु है एक तौ सो रथ अग्निदेवतानैं दिया है । और दूसरा साक्षात् श्रीकृष्णभगवान् ता

रथके चलावणेवारा सारथी है। और तीसरा साक्षात् अर्जुन जिस रथविषे स्थित है। और चतुर्थ हनुमान् जिस रथकी ध्वजाविषे स्थित है। इतने हेतुवोंकरिकै ता रथविषे सर्व रथोंतैं उत्कृष्टता है। ऐसे उत्तम रथकूं दोनों सेनावोंके मध्यविषे स्थापन करिकै सर्वके अंतर गुह्य अभिप्रायकूं जानणेहारा सो श्रीकृष्णभगवान् या अर्जुनकूं इन संबंधियोंके दर्शनतैं शोकमोहकी प्राप्ति भई है या प्रकार जानिकै उपहास सहित ता अर्जुनके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। हे पार्थ! कुरुवंश विषे है उत्पत्ति जिनोंकी ऐसे जो ये भीष्मादिक एकट्ठे हुए हैं तिनोंकूं तूं भलीप्रकारतैं देख। इहां (हे पार्थ) या प्रकारके संबोधनकरिकै भगवान्नैं यह अर्थ सूचन करा–पृथा नामा माताका जो पुत्र होवै ताका नाम पार्थ है। सा पृथा अपणे स्त्रीस्वभावतैं सर्वदा शोकमोहकरिकै युक्त है। ता पृथाका तूं पुत्र है। यातैं तुम्हारेविषेभी सो शोक मोह प्राप्त भया है। या प्रकार अर्जुनके उपहासकूं पार्थ या शब्दकरिकैं सूचन करता हुवा श्रीभगवान् अपणेविषे हृषीकेश शब्दका अर्थरूप अंतर्यामीपणा बोधन करता भया इति। अथवा (हे पार्थ) या संबोधनकरिकैं भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा। हमारे पिताकी भगिनी जो पृथा है तिस पृथाका तूं पुत्र है। यातैं तूं हमारा संबंधी है। यातैं यह कृष्णभगवान् हमारे सारथीपणेकूं छोडिकै दुर्योधनके पक्षविषे स्थित होवैगा या प्रकारकी चिंता तुमनैं कदाचित्भी नहीं करणी। किंतु हमारे सारथीपणेविषे तूं निश्चित होइकै इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं निःशंक होइकै देख। इहां इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं तूं देख या वचनपर्यंत जो भगवान्का कहना है ताका यह अभिप्राय है मैं तुम्हारे सारथीपणेविषे अत्यंत सावधान हूं। और तूं तो अब ही शोकमोहके वशतैं रथीपणेका परित्याग करा चाहता है। यातैं या सेनाके दर्शनकरिकै तुम्हारा कौन प्रयोजन सिद्ध भया। या प्रकार ता अर्जुनकूं धैर्यकी प्राप्ति करणेवासतै सो वचन भगवान्ने कथन करा है। अन्यथा सो भगवान् दोनों सेनावोंके मध्यविषे रथकूं स्थापन करता भया इतनाही वचन कहणा योग्य था॥ २४॥ २५॥

ता दोनों सेनावोंके मध्यविषे स्थित होइकै सो अर्जुन क्या देखता भया। या प्रकारकी धृतराष्ट्रकी शंकाके हुए सो संजय कहै है–

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्॥

आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा २६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥

(पदच्छेदः) तत्र । अपश्यत् । स्थितान् । पार्थः । पितॄन् । अथ । पितामहान् । आचार्यान् । मातुलान् । भ्रातॄन् । पुत्रान् । पौत्रान् । सखीन् । तथा ॥२६॥ श्वशुरान् । सुहृदः । च । एव । सेनयोः । उभयोः । अपि ।

(पदार्थः) या सेनाकूं देखो ऐसी भगवान्की आज्ञाके हुए सो अर्जुन दोनों सेनावोंविषे स्थित पितृव्योंकूं तथा पितामहोंकूं तथा आचार्योंकूं तथा मातुलोंकूं तथा भ्रातावोंकूं तथा पुत्रोंकूं तथा पौत्रोंकूं तथा सखावोंकूं ॥ २६ ॥ श्वशुरोंकूं तथा सुहृदोंकूं ही देखता भया ॥

भा०टी०—हे धृतराष्ट्र ! वा कृष्णभगवान्नैं युद्धके आरंभ करावणेवास्तै जब ता अर्जुनके प्रति सेना देखनेकी आज्ञा करी तब ही सो अर्जुन दोनों सेनावोंविषे स्थित जो योद्धा हैं तिनोंकूं देखता भया । तहां परसेनाविषे सो अर्जुन अपने भूरिश्रवादिक पितृव्योंकूं देखता भया । तथा भीष्म सोमदत्त आदिक पितामहोंकूं देखता भया । तथा द्रोण कृप आदिक अचार्योंकूं देखता भया । तथा शल्य शकुनि आदिक मातुलोंकूं देखता भया । तथा दुर्योधन आदिक भ्रातावोंकूं देखता भया । तथा लक्ष्मण आदिक पुत्रोंकूं देखता भया । तथा तिनलक्षणादिक पुत्रोंके पुत्रोंकूं देखता भया । तथा अपने समान अवस्थावाले अश्वत्थामा जयद्रथ आदिक सखावोंकूं देखता भया । तथा कृतवर्मा भगदत्त आदिक सुहृदोंकूं देखता भया । इहां (सुहृदः) या शब्दकरिकै दूसरेभी जितनेक उपहार करणेहारे मातामहादिक हैं तिन सर्वोंका ग्रहण करना । इसप्रकार जैसे परसेनाविषे सो अर्जुन अपने पितृव्यादिक संबंधियोंकूं देखता भया तैसे अपनी सेनाविषेभी तिन पितृव्यादिक संबंधियोंकूंही देखता भया । इहां अपने पिताके भ्राताका नाम पितृव्य है । और अपनी माताके भ्राताका नाम मातुल है । माताके पिताका नाम मातामह है ॥ २६ ॥

इस प्रकार सर्व संबंधियोंके दर्शन हुएतैं अनंतर यह संबंधियोंकी हिंसा महान् अधर्मरूप है या प्रकारकी मोहरूप विपरीतबुद्धिकरिकै नष्ट हुआ है विवेक जिसका तथा यह युद्धविषे स्थित हिंसा शास्त्रविहित होणेतैं धर्मरूप है या प्रकारके यथार्थ ज्ञानका प्रतिबंध करणेहारा तथा ममताबुद्धि है कारण जिसका ऐसा जो शोकमोह-

रूप चित्तका वैक्लव्य है ताकरिकै निवृत्त होइगया है विवेक जिसका ऐसा जो अर्जुन है ता अर्जुनकूं पूर्व आरंभ करे हुए युद्धरूप स्वधर्मतें उपराम होणेकी इच्छा महान् अनर्थके देणेहारी उत्पन्न होती भई । या अर्थकूं अब निरूपण करैं हैं ।

तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥२७॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥

(पदच्छेदः) तान् । समीक्ष्य । सः । कौंतेयः । सर्वान् । बंधून् । अवस्थितान् ॥२७॥ कृपया । परया । आविष्टः । विषीदन् । इदम् । अब्रवीत् ।

(पदार्थः) सो कुंतीका पुत्र अर्जुन तो युद्धभूमिविषे स्थित तिन सर्व बांधवोंकूं भलीप्रकार देखिकरिकै ॥ २७ ॥ परम कृपाकरिकै व्याप्त हुआ विषादकूं प्राप्त हुआ यों प्रकारका वचन कहता भया ॥

भा०टी०—हे धृतराष्ट्र ! तिन सर्व बांधवोंकूं देखिकरिकै स्वतःसिद्ध कृपाकरिकै व्याप्त हुआ सो अर्जुन उपतापरूप विषादकूं प्राप्त हुआ, या प्रकारका वचन श्रीभगवान्के प्रति कहता भया । इहाँ ता अर्जुनविषे स्वतःसिद्ध कृपाके बोधन करणेवासतै ता कृपाका परा यह विशेषण दिया है । अथवा (कृपया परयाविष्टः) या वचनविषे कृपया अपरया आविष्टः या प्रकारका पदच्छेद करणा । या पक्षविषे ता वचनका ऐसा अर्थ करणा अपणी सेनाविषे तौ ता अर्जुनकी पूर्वभी कृपा होती भई । और तिस कालविषे तौ ता अर्जुनकी कौरवोंकी सेनाविषेभी अपरा नामा दूसरी कृपा होती भई । इहां (विषीदन्निदमब्रवीत्) या वचनकरिकै विषाद वचन उच्चारण या दोनोंविषे समानकालपणा कथन करा । ताकरिकै ता वचन उच्चारणकालविषे गद्गद कंठता तथा अश्रुपात इत्यादिक विषादके कार्योंकी स्थिति बोधन करी । काहेतें या लोकविषे विषादवान् पुरुषके वचनविषे यह वार्त्ता प्रसिद्ध देखणेविषे आवैहै । और (कौंतेयः) या पदका अभिप्राय तौ पूर्व श्लोकविषे कहे हुए पार्थपदके अभिप्रायकी न्याईं जानि लेणा । कुंतीकूंही पृथा नामकरिकै कथन करैं हैं ॥२७॥

अब श्रीकृष्णभगवान्केप्रति सो अर्जुनका वचन (अर्जुन उवाच ।) इसतैं आदि लेकै (एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये) इस वाक्यतैं पूर्व ग्रंथकरिकै संजय कथन करै है । तहां स्वधर्मविषे प्रवृत्तिका कारणरूप जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानका प्रतिबन्धक जो अपणे शरीरविषे तथा परशरीरविषे यह मेरे हैं या प्रकारका आत्मीयत्व अभिमान है ता अभिमानकरिकै युक्त तथा केवल अनात्मपदार्थोंकूं जानणे-

हारा तथा इस युद्धकारिकै हमारा तथा इन बांधवोंका अवश्य नाश होवेगा या प्रकार देखणेहारा ऐसा जो अर्जुन है ता अर्जुनकूं महान् शोक प्राप्त होता भया ता अर्जुनके शोककूं ता शोककारिकै व्याप्त लिंगोंके कथनपूर्वक तीन श्लोकोंकरिकै निरूपण करैं हैं ।

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) दृष्ट्वा । इमम् । स्वजनम् । कृष्ण । युयुत्सुम् । समुपस्थितम् ॥ २८ ॥ सीदंति । मम । गात्राणि । मुखम् । च । परिशुष्यंति । वेपथुः । च । शरीरे । मे । रोमहर्षः । च । जायते ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! या रणभूमिविषे प्राप्त हुए तथा युद्धकी इच्छावाले इन बांधवोंकू देखिकरिकै हमारे हस्तपादादिक अंग व्यथाकूं प्राप्त होवैं हैं तथा मेरी मुखभी सूकता जावै है तथा हमारे शरीरविषे कंप उत्पन्न होवै है तथा हमारे रोम खडे होवैं हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

भा० टी०–हे श्रीकृष्णभगवन् ! युद्धकी इच्छा करिकै या रणभूमिविषे प्राप्त भये जो ये भीष्मादिक हमारे बांधव हैं तिनोंको देखिकारिकै हमारे चित्त विषे उत्पन्न भया जो शोक है ता शोककरिकै ये हमारे हस्तपादादिक अंग बहुत व्यथाकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा यह हमारा मुखभी सूकता जावै है । तथा यह हमारे शरीरविषे कंप उत्पन्न होवै है । तथा हमारे रोम खडे होवैं हैं। इहां यद्यपि (मुखं च शुष्यति) इतने कहणे करिकैही निर्वाह होइसकै है तथापि श्रमादिक निमित्तोंतैं जो मुखका शोषण होवै है तिसकी अपेक्षाकारिकै शोकजन्य मुखके शोषणविषे अधिकता कथन करणेवासते (परिशुष्यति) इहां परि या शब्दका कथन करा है, इति ॥ २८ ॥ २९ ॥

किञ्च–

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥

(पदच्छेदः) गांडीवम्[३] । स्रंसते । हस्तात्[२] । त्वक्[६] । च । एव । परिदह्यते[७] । न[१४] । च[१२] । शक्नोमि[१५] । अवस्थातुम्[१३] । भ्रमति[११] । इव । च । मे[९] । मनः[१०] ॥ ३० ॥ निमित्तानि[१८] । च[१६] । पश्यामि[१९] । विपरीतानि[१७] । केशव[१] ॥

(पदार्थः) हे केशव[१] ! मेरे हस्ततैं गांडीव[३] धनुष नीचे पडया[४] जावै है तथा त्वचा[६] दाहकूं[७] प्राप्त होवै है । तथा मरा मनभी[१०] भ्रमण[११] करै है यातैं[१२] अपने शरीरके[१३] स्थित करणेकूंभी मैं नहीं[१४] समर्थ[१५] होवौं हूं ॥ ३० ॥ तथा[१६] मैं विपरीत[१७] निमित्तोंकूंभी[१८] देखताहूं[१९] ॥

भा॰ टी॰—हे भगवन् ! ता शोककरिकै यह गांडीव धनुषभी हमारे हस्ततैं नीचे पडया जाता है । तथा हमारी त्वचाभी अत्यन्त दाहकूं प्राप्त होवै है । यह हमारा धनुष नीचे पडया जावै है । या वचनके कहणे करिकै अर्जुननैं अपणी अधैर्यरूप दुर्बलता बोधन करी । और मेरी त्वचा दाहकूं प्राप्त होवै है या वचनके कहणेकरिकै अर्जुननैं अपणे अन्तरका संताप सूचन करा और इस कालविषे मैं अपणे शरीरके स्थित करणेविषेभी समर्थ नहीं हूं इतने कहणेकरिकै अर्जुननैं अपणे मूर्च्छा अवस्थाकूं सूचन करा । जिस कारणतैं मूर्च्छा अवस्थाविषेही यह पुरुष अपणे शरीरके स्थित करणेविषे समर्थ नहीं होवै है । अब ता मूर्च्छा अवस्थाकी प्राप्तिविषे हेतु कहै हैं । (भ्रमतीव च मे-मनः इति) यह मेरा मन भ्रमण करता पुरुषकी न्यांई भ्रमण करै है सो भ्रमण करता पुरुषकी सादृश्यतारूप जो मनका कोई विकारविषेश है, तिसकूं (इव) या शब्दकरिकै कथन करा है । सोइही विकारविशेष मूर्च्छाकी पूर्व अवस्था होवै है । (न च शक्नोमि) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो हेतुका वाचक है ताका यह अर्थ है । जिसवासतै हमारा मन ता मूर्च्छाके पूर्व अवस्थाकूं प्राप्त भया है इसवासतैं मैं या अपणे शरीरकूं अभी स्थित करणेविषे समर्थ नहीं हूं । अब ता शरीरके स्थित करणेकी असामर्थ्यविषे दूसराभी निमित्त कथन करैं हैं । (निमित्तानीति) हे भगवन् ! थोडेही कालविषे दुःखकी प्राप्तिकूं सूचन करणेहारे जो वामनेत्रका स्फुरणादिक विपरीत निमित्त हैं तिनोंकूंभी मैं अनुभव करताहूं । इसकारणतैंभी मैं स्थित होणेकूं समर्थ नहीं होता । यहां अठावीसवें श्लोकविषे (दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण) या वचनविषे स्थित जो (कृष्ण) यह संबोधन है । ताकरिकै अर्जुननैं

यह अर्थ सूचन करा । मैं अर्जुन अनात्मवेत्ता होणेतैं दुःखी हूं । या कारणतैं मैं शोकजन्य क्लेशकूं अनुभव करता हूं । और "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" ॥ अर्थ यह--कृष्धातु सत्ता वाचक है और णप्रत्यय आनन्दका वाचक है ता सत्ता और आनन्द दोनोंका एकताभावरूप परब्रह्म कृष्ण या नामकरिकै कह्या जावै है, इति । या शास्त्रके वचनतें आप सत् आनन्दरूप होणेतैं शोकमोहादिक विकारोंतैं रहित हो । तात्पर्य यह अपणे बांधवोंका दर्शन जैसे हमारेकूं भया है तैसे आपकूंभी तिन बांधवोंका दर्शन भया है । परन्तु हमारे न्याईं आपकूं शोकमोहादिक विकार प्राप्त हुए नहीं यह आपविषे महान् विशेषता है यातैं आपकी न्याईं हमारेकूंभी शोकतैं रहित करो । यह सर्व अर्थ ता अर्जुननैं (हे कृष्ण) या संबोधनकरिकै सूचन करा । तहां तुम्हारे शोककूं निवृत्त करणेका हमारेविषे सामर्थ्य नहीं है ऐसी भगवान्की शंकाके निवृत्त करणेवासतैं सो अर्जुन (हे केशव) या संबोधनकरिकै ता भगवान्विषे अपणे शोक निवृत्त करणेका सामर्थ्य सूचन करता भया । तहां केशौ वाति अनुकंप्यतया गच्छतीति केशवः । अर्थ, यह–जगतकूं उत्पन्न करणेहारे ब्रह्माका नाम क है और जगत्के संहार करणेहारे रुद्रका नाम ईश है तिन दोनोंकूं अपणे अनुग्रहका पात्र जानिकरिकै जो प्राप्त होवै ताका नाम केशव है । ऐसे आपकूं हमारे शोकके निवृत्त करणेविषे किंचित्मात्रभी प्रयत्न नहीं है । अथवा (कृष्ण) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्विषे भक्तजनोंके दुःखका निवर्त्तकपणा बोधन करा । और (केशव) या संबोधन करिकै केशी आदिक दुष्ट दैत्योंकीः निवृत्तिकरिकै सर्वदा भक्तजनोंकी प्रतिपालकता सूचन करी । ऐसा आपका स्वभाव है । यातैं हमारेकूंभी शोककी निवृत्तिकरिकै अवश्य पालन करोगे ॥ ३० ॥

तहां समीचीन प्रवृत्तिका कारणरूप जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानका प्रतिबंधक जो शोक है ता शोकका पूर्व मुखशोषणादिक लिंगोंद्वारा तीन श्लोकोंकरिकै निरूपण करा अब ता शोककरिकै जन्य जो विपरीत प्रवृत्तिका कारणरूप विपरीत बुद्धि है ता विपरीत बुद्धिका निरूपण करैं हैं–

न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) नं च । श्रेयंः । अंनुपश्यामि । हंत्वा । स्वजंनम् । आंहवे ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) इस युद्धविषे अपणे बांधवोंकूं हनन करिकै मैं अपणे श्रेयकूं नहीं देखता हूं ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! इस युद्धविषे इन भीष्मादिक बांधवोंके मारणे करिकै मैं अपणे श्रेयकूं देखता नहीं । यहां पुरुषार्थका नाम श्रेय है । और यह पुरुष जिस पदार्थके प्राप्तिकी प्रार्थना करै है ता पदार्थका नाम पुरुषार्थ है। सो पुरुषार्थरूप श्रेय दो प्रकारका होवै है एक तौ दृष्टश्रेय होवै है और दूसरा अदृष्टश्रेय होवै है । तहां इस लोकके जो राज्यादिक सुख हैं तिन्होंका नाम दृष्टश्रेय है । और स्वर्गादिक सुखोंका नाम अदृष्टश्रेय है। ता दोनों प्रकारके श्रेयोंकी प्राप्ति इन बांधवोंके मारणेकरिकै मैं देखता नहीं ॥ शंका–हे अर्जुन ! इस युद्धविषे स्वजनोंके मारणेकरिकै श्रेयकी प्राप्ति तौ होवै है परन्तु सो श्रेयरूप फलकी प्राप्ति बहुत विचार कियेतैं अनन्तर प्रतीत होवै है थोडे विचार कियेतैं प्रतीत होवै नहीं । ऐसी भगवान्की शंकाके निवृत्त करणेवासतैं अर्जुननैं (अनुपश्यामि) या वचनविषे (अनु) यह शब्द कथन करा है, ता अनुशब्दका पश्चात् यह अर्थ होवै है । और पूर्ववृत्तांतकी अपेक्षा करिकैही पश्चात् कह्या जावै है यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है बहुत विचार कियेतैं पश्चात्भी मैं बांधवोंके मारणेकरिकै अपणे श्रेयकूं देखता नहीं । और (स्वजनं) या कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा जो अपणे संबंधी नहीं हैं तिन्होंका युद्धविषे हनन करिकैभी मैं अपणे श्रेयकूं देखता नहीं । काहेतैं शास्त्रविषे यह कह्या है–श्लोक ॥ "द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलवार्त्तिनौ। परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ " अर्थ यह–इस लोकविषे दो प्रकारके पुरुषही सूर्यमंडलविषे स्थित होवैं हैं । एक तौ योगकरिकै युक्त संन्यासी और दूसरा युद्धविषे सन्मुख हुआ जो पुरुष मरणकूं प्राप्त हुआ है, इति । इत्यादिक शास्त्रके वचनकरिकै युद्धविषे मृत्युकूं प्राप्त हुए योद्धाकूंही स्वर्गादिक श्रेयकी प्राप्ति कथन करी है । हनन करता पुरुषकूं किंचित्मात्रभी श्रेयकी प्राप्ति शास्त्रनै कथन करी नहीं यातैं, अपणे अस्वजनोंके मारणेकरिकैभी जब श्रेयकी प्राप्ति नहीं होवै है तब अपणे स्वजनोंके मारणेकरिकै ता श्रेयकी प्राप्ति कैसे होवैगी । किंतु नहीं होवैगी यह सर्व अर्थ अर्जुननैं (स्वजनं) या शब्दकरिकै सूचन करा । और सिद्धसाधनरूप दोषकी निवृत्ति करणेवासतै अर्जुननैं (आहवे) यह पद कथन करा है । काहेतैं (आहवे) यह युद्धका वाचक पद जो नहीं कहते तौ युद्धतैं

विना बांधवोंकी हिंसा करिके श्रेयकी प्राप्ति कोईभी शास्त्रवेत्ता पुरुष अंगीकार करता नहीं । तिसी अर्थकूं अर्जुननैंभी सिद्ध करा यातैं सिद्ध अर्थका साधनरूप सिद्धसाधनदोष अर्जुनकूं प्राप्त होता ता दोषकी निवृत्ति करणेवासतै अर्जुननैं (आहवे) यह पद कथन करा है। तात्पर्य यह—युद्धतैं विना संबन्धियों के मारणेकारिकै श्रेयकी प्राप्तिकूं कोईभी पुरुष अंगीकार करता नहीं । और मैं तौ युद्धविषेभी संबंधियोंके मारणेकारिकै श्रेयकी प्राप्ति देखता नहीं ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन ! युद्धविषे अपणे स्वजनोंके मारणेकारिकै स्वर्गादिकरूप अदृष्ट प्रयोजनकी प्राप्ति तौ मत होवै परन्तु युद्धविषे तिन स्वजनोंके मारणेकारिकै तुम्हारेकूं विजय, राज्य, विषयसुख या दृष्टप्रयोजनकी प्राप्ति तौ निर्विवाद है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै हैं—

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) न । कांक्षे । विजयम् । कृष्ण । न । च । राज्यम् । सुखानि । च । किं । नः । राज्येन । गोविंद । किं । भोगैः। जीवितेन । वा ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! मैं विजयकूं नहीं चाहता तथा राज्यकूंभी नहीं चाहता तथा सुखोंकूंभी नहीं चाहता । हे गोविंद हमारेकूं इस राज्यकारिकै क्या फल होवैगा तथा विषयसुखोंकारिकै क्या फल होवैगा तथा विजयकारिकै क्या फल होवैगा किन्तु तिन्होंकी प्राप्तिकारिकै किंचित्‌मात्रभी फल नहीं होवैगा ॥ ३२ ॥

भा० टी०-हे कृष्णभगवन् ! अपणे बांधवोंकी हिंसा करिकै प्राप्त होणेहारी जो विजय है तिस विजयकी प्राप्तिकी मैं इच्छा करता नहीं । तथा ता विजयतैं पश्चात् प्राप्त होणेहारा जो राज्य है ता राज्यकी प्राप्तिकीभी मैं इच्छा करता नहीं । तथा ता राज्यकी प्राप्तितैं पश्चात् प्राप्त होणेहारे जो विषयजन्य सुख हैं तिन विषयसुखोंके प्राप्तिकीभी मैं इच्छा करता नहीं । इतनै कहणेकारिकै आर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा, या लोकविषे तिस तिस फलकी इच्छावान् पुरुषही तिस तिस फलकी प्राप्तिके उपायविषे प्रवृत्त होवै हैं । फलकी इच्छातैं रहित पुरुष ता फलके उपायविषे प्रवृत्त होवै नहीं । जैसे भोजनरूप फलके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुषही ता भोजनरूप फलकी प्राप्तिके उपायरूप अन्नपाक

विषे प्रवृत्त होवै है। भोजनकी इच्छातैं रहित पुरुष ता अन्नके पकावणे विषे प्रवृत्त होवै नहीं। तैसे विजय, राज्य, विषयसुख इन फलोंकी प्राप्तिकी जिस पुरुषकूं इच्छा होवै सो पुरुष तिन विजयादिक फलोंकी प्राप्तिके उपायरूप युद्ध-विषे प्रवृत्त होवै और हमारेकूं तौ तिन विजयराज्यादिक फलोंके प्राप्तिकी इच्छा है नहीं यातैं इस युद्धरूप उपायविषे हमारी प्रवृत्ति संभवै नहीं। शंका–हे अर्जुन! अन्य दुर्योधनादिकोंके इच्छाका विषयरूप जो ये विजय, राज्य, सुख आदिक हैं तिन्हों-विषे तुम्हारेकूं इच्छाका अभाव किस वासतै हुआ है ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (किं नो राज्येनेति) हे गोविंद! धर्म अधर्मके स्वरूपकूं नहीं जान-णेहारे जो ये दुर्योधनादिक हैं तिन्होंकूं इन राज्यसुखादिकोंविषे इच्छा होवो पर-न्तु धर्म अधर्मके स्वरूपकूं जानणेहारे जो हम हैं तिन हमारेकूं या प्रसिद्ध राज्य-करिकै तथा विषयसुखोंकरिकै तथा जीवनका साधनरूप विजयकरिकै किस प्रयो-जनकी प्राप्ति होवैगी किंतु तिन राज्यादिकोंकरिकै हमारा किंचित्‌मात्रभी प्रयो-जन सिद्ध नहीं होवैगा। तात्पर्य यह–विजय, राज्य, भोग इन तीनोंकी प्राप्तितैं विनाही वनविषे निवास करणेहारे जो हम हैं तिन हमारा तिस संतोषकरिकैही या जगत्‌विषे कीर्तिपूर्वक जीवन होवैगा। यातैं इन राज्यादिकोंके प्राप्तिकी हमा-रेकूं इच्छा है नहीं। यहां (हे गोविंद) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा–गो नाम इन्द्रियोंका है तिन इन्द्रियोंकूं अधिष्ठानरूप करिकै जो नित्यही प्राप्त होवै ताका नाम गोविंद है। ऐसे अन्तर्यामी स्वरूप आप हमारे इस लोकके राज्यादिक फलोंतैं वैराग्यकूं भलीप्रकार जाणते हो ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन! धर्मशास्त्रविषे यह वचन कह्या है–"वृद्धौ च मातापितरौ भार्या साध्वी सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत्" अर्थ–अपणे वृद्ध जो माता पिता हैं तथा पतिव्रता जो स्त्री है तथा बाल्य अवस्थावाले जो पुत्र हैं, ये सर्व बांधव; इस पुरुषनै न करणेयोग्य अनेक कार्योंकूं करिकैभी भरणपोषण करणेयोग्य हैं। यह वार्ता मनुभगवान् कहता भया है" इत्यादिक शास्त्रोंके वचनतैं वृद्ध माता-पितादिक संबंधियोंके भरणपोषणवासतै कराहुआभी अधर्म या पुरुषके दोषवासतै होवै नहीं यातैं जो कदाचित् तुम्हारेकूं इन राज्यसुखादिकोंतैं वैराग्यभी होवै तौ भी इन अपणे संबंधियोंके राज्यसुखादिकोंवासतै तुम्हारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होणा चाहिये। ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥
त इमेवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) येषाम् । अर्थे । कांक्षितम् । नः । राज्यम् । भोगाः । सुखानि । च । ते । इमे । अवस्थिताः । युद्धे । प्राणान् । त्यक्त्वा । धनानि । च ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! हमारेकूं जिन बांधवोंके वासतै राज्य तथा विषय तथा सुख अपेक्षित है ते ये बांधव अपणे प्राणोंकी आशाकूं तथा धनकी आशाकूं त्याग करिकै इस युद्धविषे स्थित हुए हैं ॥ ३३ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! एकाकी पुरुषकूं तौ ये राज्यादिक अपेक्षित होवैं नहीं । और जिन बांधवोंके वासतै हमारेकूं यह राज्य अपेक्षित है तथा सुखके साधनरूप विषय अपेक्षित हैं तथा विषयजन्य सुख अपेक्षित है ते ये हमारे बांधव अपणे प्राणोंकी आशाकूं छोडिकरिकै तथा धनकी आशाकूं छोडिकरिकै मरणेवासतै इस युद्धभूमिविषे स्थित हुए हैं यातैं अपणे स्वार्थवासतै तथा अपणे संबंधियोंके स्वार्थवासतै इस युद्धरूप कार्यविषे हमारी प्रवृत्ति संभवती नहीं । यहां पूर्वश्लोकविषे यद्यपि भोगशब्दकरिकै विषयजन्य सुखका ग्रहण करा था, तथापि इस श्लोकविषे भोगोंतैं सुखकूं भिन्न ग्रहण करा है । यातै यहां भोगशब्दकी लक्षणावृत्तिकरिकै सुखके साधनरूप स्पर्शादिक विषयोंका ग्रहण करणा और (प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च) या वचनविषे प्राणोंका त्याग तथा धनका त्याग कथन करा है सो जीवित अवस्थाविषे प्राणोंका त्याग तथा धनका त्याग संभवता नहीं । यातैं प्राणशब्दकी लक्षणावृत्तिकरिकै प्राणकी आशाका ग्रहण करणा । और धनशब्दकी लक्षणावृत्तिकरिकै धनकी आशाका ग्रहण करणा । तिन प्राणादिकोंके आशाका परित्याग जीवित अवस्थाविषे भी संभव होइसकै है । तहां अपणे प्राणोंके त्याग हुए भी अपणे बांधवोंके सुखवासतै धनकी आशा संभव होइसकै है । या शंकाकी निवृत्ति करणेवासतै प्राणोंतैं भिन्न धनका ग्रहण करा है ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! जिन बांधवोंके सुखवासतै तुम्हारेकूं यह राज्यादिक अपेक्षित हैं ते तुम्हारे बांधव इस युद्धविषे आये नहीं । ऐसी भगवान्‌की शंकाके निवृत्त करणेवासतै सो अर्जुन तिन बांधवोंका विशेषकरिकै वर्णन करै है–

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) आचार्याः। पितरः। पुत्राः। तथा। एव। च। पितामहाः। मातुलाः। श्वशुराः। पौत्राः। श्यालाः। संबंधिनः। तथा ॥३४॥

(पदार्थः) हे भगवन्! इस युद्धभूमिविषे कोई तौ हमारे आचार्य हैं तथा कोइ पितर हैं तथा कोई पुत्र हैं तथा कोई पितामह हैं तथा कोई मातुल हैं तथा कोई श्वशुर हैं तथा कोई पौत्र हैं तथा कोई श्याल हैं तथा कोई संबन्धी हैं ॥ ३४॥

भा॰ टी॰–इस श्लोकका अर्थ स्पष्टही है ताका अभिप्राय यह है इस युद्धभूमिविषे जितनेक योद्धा एकट्ठे हुए हैं ते सर्व योद्धा हमारे संबंधी ही हैं तिन संबंधियोंतैं भिन्न कोई है नहीं ते सर्व संबंधी तौ अभी मरणेकूं तयार हुए हैं। यातैं किस संबंधीके राज्यसुखादिकोंवासतै मैं इस युद्धविषे प्रवृत्त होवौं ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन! जो कदाचित् कृपाकरिकै तूं इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं नहीं हनन करैगा तौभी यह भीष्मद्रोणादिक राज्यके लोभकरिकै तुम्हारेकूं अवश्य हनन करैंगे यातैं तुमही इन भीष्म द्रोणादिकोंकूं हनन करिकै राज्यकूं भोगो। ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किंनु महीकृते ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) एतान्। न। हंतुम्। इच्छामि। घ्नतः। अपि। मधुसूदन। अपि। त्रैलोक्यराज्यस्य। हेतोः। किंनु। महीकृते ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे मधुसूदन! मेरेकूं हनन करते हुए भी इन आचार्यादिकोंकूं मैं तीन लोकके राज्यकी प्राप्तिवासतै भी हनन करणेकूं नहीं इच्छा करता तौ इस पृथिवीमात्रके राज्यकी प्राप्तिवासतै मैं इन्होंके हननकी इच्छा कैसे करौंगा ॥ ३५ ॥

भा॰ टी॰–हे मधुसूदन! भगवन् तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै हमारेकूं हनन करणेहारेभी जो यह पूर्व उक्त आचार्यादिक हैं तिन्होंके हनन करणेकी इच्छामात्र भी मैं नहीं करता तौ तिन आचार्यादिकोंकूं मैं तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै किस प्रकार हनन करौंगा किंतु नहीं हनन करौंगा। किंवा तिन आचार्यादिकोंके हनन करणेकारिकै जो कदाचित् हमारेकूं भूमि, स्वर्ग और पाताल या तीन लोकोंके राज्यकी प्राप्ति होइ जावै तौ भी मैं इन आचार्यादिकोंके हननकी इच्छा करता नहीं तौ इस पृथिवीमात्रके राज्यकी प्राप्तिवासतैं मैं इन आचार्यादिकोंकूं नहीं हनन करौंगा याके विषे क्या कहणा है। इहां (हे मधुसूदन) या संबोधनकारिकै अर्जुननैं श्री–

भगवान्‌विषे वैदिक मार्गका प्रवृत्तकरणा सूचना करा । ऐसे वैदिक मार्गके प्रवर्त्तक होइकै आप हमारेकूं आचार्यादिकोंके हननविषे किसवासतै प्रवृत्त करते हो॥ ३५॥

हे अर्जुन ! आचार्यादिकोंके मारणेविषे जो तूं दोष मानता है तौ तिन आचार्य आदिकोंकूं छोडिकै दूसरे धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं तुम हनन करो काहेतैं इन दुर्योधनादिकोंनैं तुम्हारेकूं लाक्षागृहविषे दाहादिकोंकरिकै बहुत प्रकारकै दारुण दुःखोंकी प्राप्ति करी है यातैं तिन दुर्योधनादिकोंके हनन करणेविषे तुम्हारी प्रीति संभवै है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) निहत्य । धार्तराष्ट्रान् । नः । का । प्रीतिः । स्यात् । जनार्दन । पापम् । एव । आश्रयेत् । अस्मान् । हत्वा । एतान् । आततायिनः ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! इन दुर्योधनादिकोंकूं हनन करिकै हमारेकूं कौन प्रीति होवैगी किंतु कोईभी प्रीति नहीं होवैगी उलटा इन आततायियोंकूं हनन करिकै हमारेकूं पाप ही आश्रयण करैगा ॥ ३६ ॥

भा० टी०–हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्र जो यह दुर्योधनादिक हैं ते हमारे भ्राता हैं तिन भ्राताओंकूं हनन करिकै हमारेकूं कौन सुख होवैगा । किंतु तिन्होंके हनन करिकै हमारेकूं किंचित् मात्रभी सुखकी प्राप्ति नहीं होवैगी । तात्पर्य यह । मूढजनोंके प्रीतिका विषय जो क्षणमात्रवर्त्ति सुखाभास है ता सुखाभासके लोभ करिकै बहुत कालपर्यंत नरकके प्राप्तिका हेतुरूप यह बांधवोंकी हिंसा हमारेकूं करणेयोग्य नहीं है । यहां जो सुखरूपतातैं रहित होवै तथा सुखकी न्याई प्रतीत होवै ताकूं सुखाभास कहैं हैं । ऐसे विषयजन्य सुख हैं इति । और (हे जनार्दन) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा । हे भगवन् ! यह दुर्योधनादिक जो कदाचित् मारणेही योग्य होवैं तौभी आपही इन्होंकूं हनन करो जिस कारणतैं प्रलयकालविषे सर्व जनोंके हननकरिकैभी आपकूं किंचित्मात्रभी पापका स्पर्श होता नहीं इति । शंका–हे अर्जुन! शास्त्रविषे यह वचन कह्या है "अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ॥ क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः" अर्थ–अग्निके देणेहारा तथा विषके देणेहारा तथा शस्त्र जिसके हाथविषे है तथा परधनके हरण करणेहारा तथा

पराये क्षेत्रके हरण करणेहारा तथा परस्त्रीके हरण करणेहारा यह षट् आततायी कहे जावैं हैं इति । और इन दुर्योधनादिकोंविषे तौ सो षट् प्रकारकाही आततायीपणा है । और दूसरे शास्त्रविषे यह कह्या है । श्लोक–"आततायिन-मायांतं हन्यादेवाविचारयन् ॥ नाततायिवधे दोषो हंतुर्भवति कश्चन" । अर्थ यह–अकस्माततैं आया हुआ जो आततायी पुरुष है तिस आततायी पुरुषकूं यह बुद्धिमान् पुरुष तिसी कालविषेही हनन करै ताके हनन करणेविषे किंचित् मात्रभी विचार नहीं करै । जिस कारणतैं तिस आततायी पुरुषके हनन करणेविषे ता हनन करणेहारे पुरुषकूं किंचित्मात्रभी दोष होवै नहीं इति । या शास्त्रके वचनतैं आततायीके मारणेकरिकै दोषाभाव प्रतीत होवै है यातैं यह दुर्योधनादिक आततायी तुम्हारेकूं अवश्य हनन करणे योग्य हैं । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है । (पापमेवेति) इन दुर्योधनादिक आततायियोंकूं भी हनन कारकै स्थित हुए हमारेकूं पाप अवश्य आश्रयण करैगा । अथवा इन्होंके हनन करिकै हमारेकूं केवल पापही आश्रयण करैगा । दूसरा कोई दृष्टप्रयोजन तथा अदृष्टप्रयोजन प्राप्त होवैगा नहीं और 'आततायिनं हन्यात्' यह पूर्व उक्त वचन यद्यपि आततायी पुरुषोंके हननका विधान करै है तथापि सो वचन अर्थशास्त्रका है धर्मशास्त्रका सो वचन है नहीं ता अर्थशास्त्रतैं धर्मशास्त्र बलवान होवै है । और धर्मशास्त्रतौ प्राणिमात्रकी हिंसा करणेका निषेध करै है । सो धर्मशास्त्र यह है । "स एव पापिष्ठतमो यः कुर्यात्कुलनाशनम्" इति ॥ "न हिंस्यात्सर्वाभूतानि" ॥ अर्थ यह–जो पुरुष अपणे कुलका नाश करै है सोईही पुरुष अत्यन्त पापिष्ठ जानणा । और यह बुद्धिमान् पुरुष सर्व भूतप्राणियोंकी हिंसा नहीं करै इति । यह धर्मशास्त्र पूर्व उक्त अर्थशास्त्रतैं बलवान् है । यातैं इन बांधवोंका हनन करणा हमारेकूं योग्य नहीं है । अथवा (पापमेवाश्रयेत्) इत्यादिक अर्द्ध श्लोकका या प्रकारतैं दूसरा व्याख्यान करणा । शंका–हे अर्जुन ! दुर्योधनादिकोंके हनन करणेकेविषे यद्यपि तुम्हारेकूं प्रीति नहीं है तथापि तुम्हारेकूं हनन करणेविषे इन दुर्योधनादिकोंकूं प्रीति है यातैं यह दुर्योनादिक तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै हनन करैंगे । ऐसी भगवानकी शंकाके हुए अर्जुन कहै है (पापमेवेति) पापम् । एव । आश्रयेत् । अस्मान् हत्वा । एतान् आततायिनः ॥ अर्थ यह–हमारेकूं हननकरिकै स्थित हुए इन दुर्योधनादिक आततायियोंकूं केवल पापही

आँश्रयण करैगा । दूसरा कोई सुख इन्द्रोंकूं प्राप्त नहीं होवैगा । तात्पर्य यह । यह दुर्योधनादिक पूर्व तौ आततायीहैंही और नहीं युद्ध करणेहारे हमारेकूं हनन करिकै अबीभी यह दुर्योधनादिकही पापी होवैंगे । इसविषे हमारेकूं कोई पापका संबन्ध है नहीं यातैं हमारेकूं किंचिन्मात्रभी हानिकी प्राप्ति नहीं ॥ ३६ ॥

तहां अन्य प्राणियोंकी हिंसा करणेविषे कोई फल है नहीं है उलटी अनर्थकीही प्राप्ति होवै है यातैं किसीभी प्राणीकी हिंसा करणेयोग्य नहीं है । यह वार्त्ता (न च श्रेयोनुपश्यामि) इस वचनतैं आदि लेकै अबपर्यंत अर्जुननैं कथन करी । अब ता वार्त्ताकी समाप्ति करैं हैं–

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । न । अर्हाः । वयम् । हंतुम् । धार्तराष्ट्रान् । स्वबांधवान् । स्वजनम् । हि । कथम् । हत्वा । सुखिनः । स्याम । माधव ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे माधव । तिस कारणतैं हम अपणे बांधव धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं हनन करणेकूं नहीं योग्य हैं जिस कारणतैं अपणे बांधवोंकूं हनन करिकै हम कैसे सुखी होवैंगे किंतु नहीं सुखी होवैंगे ॥ ३७ ॥

भा० टी० इहां (तस्मात) या तत् शब्दकरिकै पूर्व कथन करा जो बांधवोंकी हिंसा करणेविषे अदृष्टरूप फलका अभाव तथा अनर्थकी प्राप्ति तिन दोनोंका ग्रहण करणा ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है । जिस कारणतैं बांधवोंकी हिंसा करिकै स्वर्गादिरूप अदृष्टफलकी प्राप्ति होवै नहीं उलटी महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है तिस कारणतैं हम अपणे दुर्योधनादिक बांधवोंके हनन करणेकी इच्छा करते नहीं । शंका–हे अर्जुन ! बांधवोंके हनन करिकै स्वर्गादिरूप अदृष्टसुखकी प्राप्ति मत होवो तथापि इस लोकका अदृष्ट सुख तौ तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै प्राप्त होवैगा । ऐसी भगवान्‌की शंकाकरिकै अर्जुन कहै है (स्वजनं हीति) हे माधव ! अपणे संबंधियोंके सुखवास्तैही श्रेष्ठ पुरुषोंकी प्रवृत्ति होवै है, यातैं अपणे संबंधियोंकूंही हनन करिकै हम किस प्रकार सुखकूं प्राप्त होवैंगे किंतु उलटे दुःखकूंही प्राप्त होवैंगे। इहां (हे माधव) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा। मा नाम लक्ष्मीका है, धव नाम पतिका है, लक्ष्मीका जो पति होवै ताका नाम माधव है । ऐसा

लक्ष्मीका पति होइकै आप हमारेकूं लक्ष्मीतैं रहित बांधवोंकी हिंसारूप निंदित कर्मविषे प्रवृत्त करणे योग्य नहीं हो ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! युद्धविषे अपणे बांधवोंकी हिंसा करिकै जो कदाचित् किसी दृष्टअदृष्टसुखकी प्राप्ति नहीं होती होवै उलटी दोषकीही प्राप्ति होवै तौ इन भीष्मादिक महान् पुरुषोंकी ता कुलके क्षय करणेविषे तथा स्वजनोंकी हिंसा करणेविषे किसवासतै प्रवृत्ति होती है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) यद्यपि । एते । न । पश्यंति । लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतम् । दोषम् । मित्रद्रोहे । च । पातकम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् लोभग्रस्तचित्तवाले यह भीष्मादिक यद्यपि कुलके नाशकृत दोषकूं तथा मित्रोंके द्रोहविषे पातककूं नहीं देखते तथापि हम ताकूं देखते हैं॥ ३८॥

भा० टी०–हे भगवन् ! प्राप्त हुए पदार्थके त्यागकूं नहीं सहारणेका नाम लोभ है ता लोभकारिकै इन भीष्मादिकोंका चित्त ग्रस्त होइ रह्या है या कारणतैं यह भीष्मादिक कुलके नाश करणेकारिकै प्राप्त होणेहारे दोषकूं तथा अपणे मित्रोंके साथि द्रोह करणेकारिकै प्राप्त होणेहारे पातककूं यद्यपि विचारकारिकै देखते नहीं तथापि हम ता दोषकूं तथा पातककूं भलीप्रकार जाणते हैं। यातैं इन भीष्मादिकोंकी तौ यद्यपि युद्धविषे प्रवृत्ति संभवै है तथापि ता युद्धविषे हमारी प्रवृत्ति संभवती नहीं । इतने कहणेकारिकै अर्जुननैं या शंकाकी निवृत्ति करी सा शंका यह है हे अर्जुन ! यह भीष्मादिक जो शिष्ट पुरुष हैं तिन्होंकी अपणे बांधवोंके हनन विषे प्रवृत्ति देखणेमैं आवै है और जो जो शिष्ट पुरुषोंका आचार होवै है सो सो वेदमूलकही होवै है । जैसे श्राद्धादिक कर्मोंविषे प्रवृत्तिरूप शिष्ट पुरुषोंका आचार वेदमूलक होवै है । और ता शिष्ट पुरुषोंके आचारके अनुसारही दूसरे पुरुषोंकी प्रवृत्ति होवै है यातैं भीष्मादिक शिष्ट पुरुषोंकी अपणे बांधवोंके हननविषे प्रवृत्तिकूं देखिकारिकै तुम्हारेकूंभी तिसीविषे प्रवृत्त होणा चाहिये । या भगवान्के शंकाकी अर्जुननैं (लोभोपहतचेतसः) या विशेषणके कहणेकारिकै निवृत्ति करी काहेतैं जिस शिष्ट पुरुषोंके आचारविषे लोभादिक दोष कारण नहीं होवैं किंतु केवल

धर्मबुद्धिही कारण होवै । तिसी आचारविषे वेदमूलकता कल्पना करी जावै है । और सोइही शिष्ट पुरुषोंका आचार इतर जीवोंकूं अंगीकार करणे योग्य होवै है । और जिस शिष्ट पुरुषके आचारविषे केवल लोभादिक दोषही कारण होवैं ता शिष्ट पुरुषके आचारविषे वेदमूलकता कल्पना करी जावै नहीं । और सो लोभादिपूर्वक शिष्ट पुरुषोंका आचार इतर पुरुषोंकूं अंगीकार करणे योग्यभी नहीं है । और इन भीष्मादिकोंका जो बांधवोंके हनन करणेविषे प्रवृत्तिरूप आचार है ताके विषेभी केवल लोभादिक दोषही कारण हैं यातैं सो इन भीष्मादिकोंका आचार वेदमूलक नहीं है । ऐसे इन भीष्मादिकोंके लोभमूलक आचारकूं ग्रहण करिकै हम बांधवोंके हनन करणेविषे कैसे प्रवृत्त होवैंगे किंतु हम ताके विषे कदाचितभी नहीं प्रवृत्त होवैंगे ॥ ३८ ॥

हे अर्जुन ! यद्यपि यह भीष्मादिक लोभतैं युद्धविषें प्रवृत्त हुए हैं तथापि धर्मशास्त्रविषे यह कह्या है । "आहूतो न निवर्तेत द्यूतादपि रणादपि" इति । "विजितं क्षत्रियस्य" इति । अर्थ, यह–क्षत्रिय राजाकूं जो कोई पुरुष जूवा खेलणेवासतै तथा युद्ध करणेवासतै आइकै बुलावै तौ सो क्षत्रिय ता जूवातैं तथा युद्धतैं निवृत्त नहीं होवै किंतु ता पुरुषके साथि जूवा तथा युद्ध अवश्यकरिकै करै । और युद्ध करिकै इकट्ठा करा हुआ जो धन है सो धनही क्षत्रियका धर्म्य धन है इति । इत्यादिक धर्मशास्त्रके वचनोंकरिकै क्षत्रिय राजाका युद्धधर्म सिद्ध होवै है । तथा युद्ध करिकै इकट्ठा करा हुआ धनही धर्म्य धन सिद्ध होवैहै । और तुम्हारेकूं इन भीष्मादिकोंनैं युद्ध करणेवासतै बुलाया है यातैं तुम्हारेकूं इस युद्धविषे अवश्य प्रवृत्त होणा चाहिये । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ॥
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) कथम् । न । ज्ञेयम् । अस्माभिः । पापात् । अस्मात् । निवर्तितुम् । कुलक्षयकृतम् । दोषम् । प्रपश्यद्भिः । जनार्दन ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन । कुलके नाशकृत दोषकूं जाननेहारे हमोंनैं पापके हेतुरूप इस युद्धतैं निवृत्त होणेवासतै कैसे नहीं विचार करणा योग्य है किंतु अवश्य विचार करणा योग्य है ॥ ३९ ॥

भा॰ टी॰–हे जनार्दन ! आपणे कुलके नाश करणेतैं उत्पन्न होणेहारा जो दोष है ता दोषकूं भलीप्रकारतैं जानणेहारे जो हम हैं तिन हमोंनैं पापकी प्राप्ति करणेहारे इस युद्धतैं निवृत्त होणेवासतै क्या नहीं विचार करणा योग्य है किंतु ता युद्धतैं निवृत्त होणेवासतै हमारेकूं अवश्य विचार करणा योग्य है। और "किमकार्यं दुरात्मनाम्"। अर्थ, यह–दुरात्मा पुरुषोंकूं कौन कार्य करणे योग्य नहीं है किंतु दुरात्मा पुरुषोंकूं सर्व करणे योग्य है। या न्यायकूं अंगीकार करिकै यह दुर्योधनादिक जैसे राज्यके लोभकरिकै अपने कुलका नाश करैं हैं। तथा अपणे मित्रोंके साथि द्रोह करैं हैं तैसे हमारेकूं करणा योग्य नहीं है। और "आहूतो न निवर्त्तेत" यह जो धर्मशास्त्रका वचन आपनें पूर्व कह्या था सो वचन केवल लोभमूलक है यातैं सो वचन "स एव पापिष्ठतमो यः कुर्यात्कुलनाशनम्" या वचन करिकै बाधित है यातैं ता लोभमूलक वचनकूं अंगीकार करिकै हमारी युद्धविषे प्रवृत्ति संभवै नहीं। इहां यह तात्पर्य है जिस पुरुषकूं जिस कार्य विषे यह कार्य हमारे श्रेयका साधन है या प्रकारका ज्ञान होवै है सो पुरुषही तिस कार्यविषे प्रवृत्त होवै है यातैं यह जान्या जावै है। श्रेयसाधनताज्ञानही पुरुषोंका प्रवर्त्तक है और जिसके साथि कदाचित्भी अश्रेयका संबंध नहीं होवै ताका नाम श्रेय है। जो ऐसा अंगीकार करिये तौ शत्रुके मारणे वासतै करा जो श्येनयज्ञ है ता श्येन-यज्ञकूंभी धर्मरूपता होणी चाहिये। काहेतैं शत्रुके मरणरूप श्रेयकी साधनता ता श्येनयज्ञविषेभी है परंतु सो शत्रुका मरणरूप श्रेय अश्रेयका असंबंधी नहीं है। किंतु श्येनयज्ञकरिकै शत्रुकूं मारणेहारे पुरुषकूं नरकरूप अश्रेयकी प्राप्ति होवै है। यातैं सो शत्रुका मरणरूप श्रेय नरकरूप अश्रेयके संबंधवालाही है। यातैं ता श्येनयज्ञ विषे धर्मरूपता संभवै नहीं। यह वार्ता अन्य शास्त्रविषेभी कही है। तहां श्लोक–"फलतोपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते। केवलप्रीतिहेतुत्वात् तद्धर्म इति कथ्यते"। अर्थ यह–जो कर्म अपणे फलकी प्राप्तितैंभी अनर्थके साथि संबंधवाला नहीं होवै किंतु केवल सुखकाही हेतु होवै ता कर्मकूं धर्म या नाम करिकै कथन करैं हैं इति। यातैं जैसे श्येनयज्ञ यद्यपि "श्येनेनाभिचरन् यजेत" इत्यादिक शास्त्रकरिकै विधान करा है। तथापि ता श्येनका शत्रुका मरणरूप फल नरकरूप अश्रेयके संबंधवाला है यातैं श्रेष्ठ पुरुषोंकी ता श्येनयज्ञविषे प्रवृत्ति होवै नहीं। तैसै यह युद्धभी "आहूतो न निवर्त्तेत" इत्यादिक शास्त्रके वचनोंकरिकै यद्यपि

विधान करा है तथापि ता युद्धके विजयराज्यादिक फल "स एव पापिष्ठतमो यः कुर्यात्कुलनाशनम्" इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन करा जो कुलके नाशतैं पाप है ता पापरूप अश्रेयके संबंधवालेही हैं । यातैं ते विजयराज्यादिक फल श्रेयरूप नहीं हैं । ऐसे विजयराज्यादिकोंकी प्राप्ति वासतैं हमारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होणा योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥

तहां युद्धके फलरूप जो विजयराज्यादिक हैं ते अश्रेयरूप होणेतैं हमारी इच्छाके विषय नहीं हैं । यातैं तिन विजयराज्यादिकोंकी प्राप्तिवासतैं हमारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होणा योग्य नहीं है । यह अर्थ पूर्व श्लोक विषे कथन करा । अब तिसी अर्थकूं पुनः दृढ करणेवासतैं सो अर्जुन तिन विजयराज्यादिकोंविषे अनर्थका संबंधीपणा कथनकरिकै अश्रेयरूपता वर्णन करैहै पंच श्लोकों करिकै—

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) कुलक्षये । प्रणश्यंति । कुलधर्माः । सनातनाः । धर्मे । नष्टे कुलम् । कृत्स्नम् । अधर्मः । अभिभवति । उत ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! कुलके नाश हुए परंपरासैं प्राप्त कुलके सर्व धर्म नाशकूं प्राप्त होवै हैं । और धर्मके नाश हुए बाकी रहे सर्व ही कुलकूं अधर्म अपणे वश करि लेवै है ॥ ४० ॥

भा० टी०—अपणे वंशपरंपराकरिकै प्राप्त तथा अपणे कुलके अनुसार तथा जातिके अनुसार करणेयोग्य ऐसे जो अग्निहोत्रादिक धर्म हैं तिन धर्मोंकी प्रवृत्ति करणेहारे जो वृद्ध पुरुष हैं तिन वृद्ध पुरुषोंका जबी नाश होवै है तबी तिन कर्त्ता पुरुषोंके अभाव होणेतैं ते अग्निहोत्रादिक सर्व कुलके धर्म नाशकूं प्राप्त होवैं हैं । और तिन वृद्ध पुरुषोंके नाशकरिकै तिन सर्व धर्मोंके नाश हुएतैं अनंतर शिक्षा करणेहारे वृद्ध पुरुषोंके अभावतैं बाकी रहे हुए स्त्रीबालकादिरूप कुलकूं अनाचाररूप अधर्म अपणे वश करि लेवैहै इति ॥ ४० ॥

किंच—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) अधर्माभिभवात्। कृष्ण। प्रदुष्यंति। कुलस्त्रियः। स्त्रीषु। दुष्टासु। वार्ष्णेय। जायते। वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण! ता अधर्मके वशपणेतैं कुलीन सर्व स्त्रियां व्यभिचारिणी होवैं हैं हे वार्ष्णेय तिन व्यभिचारिणी स्त्रियोंविषे वर्णसंकरपुत्र उत्पन्न होवै हैं ॥ ४१ ॥

भा० टी०–हे कृष्ण! ता अधर्मकी वृद्धितैं अनंतर हमारे पतियोंनैं धर्मका उल्लंघन करिकै जो कुलका नाश करा है तौ हमारेकूं पतिव्रताधर्मका उल्लंघन करिकै व्यभिचार करणेविषे कौन दोष होवैगा। या प्रकारकी कुतर्ककरिकै युक्त हुई ते कुलकी स्त्रियां व्यभिचारकर्मविषे प्रवृत्त होवैं हैं। अथवा धर्मशास्त्रविषे पतिके धर्म अधर्मका फल स्त्रीकूंभी कथन करा है। यातैं कुलके नाश करणे करिकै पापकूं प्राप्त हुए जो पति हैं तिन पतित पतियोंके संबंधतैं तिन स्त्रियोंकी व्यभिचारकर्मविषे प्रवृत्ति होवै है। तिन व्यभिचारिणी स्त्रियोंविषे ऊंच जातिवाले पुरुषोंके संबंधतैं अथवा नीच जातिवाले पुरुषोंके संबंधतैं वर्णसंकरपुत्र उत्पन्न होवै हैं ॥ ४१ ॥

किंच–

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः) संकरः। नरकाय। एव। कुलघ्नानाम् कुलस्य। च। पतंति। पितरः। हि। एषाम्। लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) किंच कुलका संकर कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके नरकवासतै ही होवै है तथा इन कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके पितरभी पिंडजलक्रियातैं रहित हुए नरकविषे पडैं हैं ॥ ४२ ॥

भा०टी०–हे भगवन्! कुलविषे उत्पन्न भया जो वर्णसंकर है सो वर्णसंकर कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंकूं नरककी प्राप्तिवासतैही होवै है। किंवा सो वर्णसंकर केवल कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके नरकवासतै नहीं होवै है। किंतु ता वर्णसंकरकरिकै तिनोंके पितरोंकूंभी नरककी प्राप्ति होवै है। या अर्थकूं कहैं हैं। (पतंतीति) अपणे पितरोंवासतै पिंडक्रियाके करणेहारे तथा जलक्रियाके करणेहारे जो पुत्र हैं ते पुत्र पीछे रहे नहीं यातैं निवृत्त होइ गई हैं पिंडक्रिया तथा

जलक्रिया जिनोंकी ऐसें जो कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके पितर हैं ते पितर नरककी प्राप्तिवासतै स्वर्गतैं नीचे पडैं हैं । इहां यद्यपि इतिहासपुराणादिकोंविषे यह वार्त्ता कथन करी है । एक कालविषे परशुराम सर्व क्षत्रियोंकूं हनन करता भया । तिसतैं अनंतर तिन क्षत्रियोंकी स्त्रियां ब्राह्मणोंतैं पुत्रोंकूं उत्पन्न करती भई । जो कदाचित् अन्य पुरुषतैं उत्पन्न हुए पुत्रकी दी हुई पिंडक्रिया तथा जलक्रिया पिताकूं नहीं प्राप्त होती होवै तौ ते क्षत्रिय राजाओंकी स्त्रियां ब्राह्मणोंतैं पुत्रोंकूं किसवासतै उत्पन्न करती भई हैं । यातैं यह जान्या जावै है जैसे स्त्रीरूप क्षेत्रविषे वीर्यरूप बीजकी प्राप्ति करणेहारे बीजपति पुरुषकूं ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिक प्राप्त होवैं हैं तैसे ता स्त्रीरूप क्षेत्रके पति पुरुषकूंभी ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिक प्राप्त होवैं हैं तथापि श्रुतिविषे बीजपति पुरुषकूंही ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिकोंकी प्राप्ति कथन करी है । क्षेत्रपति पुरुषकूं ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिकोंकी प्राप्ति कथन करी नहीं । तहां श्रुति । "न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति" ॥ अर्थ यह । हे अग्नि अपणी स्त्रीविषे अन्य पुरुषतैं उत्पन्न भया जो पुत्र है सो पुत्र होवै नहीं इति । किंवा यह वार्त्ता यास्कमुनिनैंभी कथन करी है । "अन्योदर्यो मनसापि न मंतव्यो ममायं पुत्रः" इति । अर्थ यह । अपणी स्त्रीविषे अन्य पुरुषतैं उत्पन्न भया जो पुत्र है ता पुत्रकूं या क्षेत्रपति पितानैं यह हमाराही पुत्र है या प्रकार मनकरिकैभी नहीं जानणा इति । किंवा श्रुतिविषे अपणे वर्त्तमान पिताका संशयभी कथन करा है । तहां श्रुति । " ये यजामहे इति योऽहमस्मि स सन्यजे " इति । अर्थ यह । जे हम हैं ते हम यजन करते हैं । हम ब्राह्मण हैं अथवा अब्राह्मण हैं यह वार्त्ता हम जानते नहीं । काहेतैं लोकप्रसिद्ध वर्त्तमान जो यह पिता है सो पिता इसी पितातैं मैं उत्पन्न भया हूं । अथवा किसी अन्य पितातैं मैं उत्पन्न भया हूं या प्रकारके संशयकरिकै ग्रस्त हैं यातैं यहही हमारा पिता है या प्रकारका निश्चय संभवै नहीं । यातैं जे हम हैं ते हम यजन करते हैं इति । इत्यादिक श्रुतिवचनोंकरिकै बीजपति पिताकूंही पिंडादिकोंकी प्राप्ति सिद्ध होवै है । क्षेत्रपति पिताकूं पिंडादिकोंकी प्राप्ति सिद्ध होवै नहीं । और स्त्रीरूप क्षेत्रविषे अन्य पुरुषतैं पुत्रकी उत्पत्तिकूं कथन करणेहारे जो स्मृति आदिक शास्त्रोंके वचन हैं तिन वचनोंका इस लोकविषे वंशके स्थापन करणेविषे तात्पर्य है । कोई

क्षेत्रपति पुरुषकूं ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिकोंकी प्राप्तिविषे तिन वचनोंका तात्पर्य नहीं है । यातैं वर्णसंकरपुत्रोंके उत्पन्न हुएतैं कुलनाश करणेहारे पुरुषोंके पितर पिंडादिक क्रियातैं रहित होइकै अवश्य नरकविषे पडैं हैं । यह यद्यपितैं आदि लेके सर्व अर्थ प॰ तरो हि एषाम्) या वचनविषे स्थित हि, या शब्दकरिकै अर्जुननैं सूचन करा इति ॥ ४२ ॥

किंच—

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) दोषैः । एतैः । कुलघ्नानाम् । वर्णसंकरकारकैः । उत्सा-द्यंते । जातिधर्माः । कुलधर्माः । च । शाश्वताः ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! कुलके हनन करणेहारे पुरुषोंके वर्णसंकरके करणेहारे इन दोषोंनैं परंपरातैं प्राप्त जातिके धर्म तथा कुलके धर्म नाश करते हैं ॥४३॥

भा॰ टी॰—हे भगवन् ! जे पुरुष यह कार्य हमारेकूं करणेयोग्य है तथा यह कार्य हमारेकूं नहीं करणे योग्य है या प्रकारके विचारका परित्याग करिकै कामक्रोधलोभादिकोंके वश हुए कुलधर्मोंके प्रवर्त्तक पुरुषोंका हनन करते हैं, तिन पुरुषोंका नाम कुलघ्न है । तिन कुलघ्न पुरुषोंके वर्णसंकरकी उत्पत्ति करणेहारे जो पूर्व उक्त दोष हैं तिन दोषोंनैं श्रुतिस्मृतिमूलक तथा परंपरातैं प्राप्त जो क्षत्रियत्वा-दिक जातिप्रयुक्त धर्म हैं तथा कुलके जो असाधारण धर्म हैं ते सर्व धर्म नाश करते हैं इति ॥ ४३ ॥

किंच—

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) उत्सन्नकुलधर्माणाम् । मनुष्याणाम् । जनार्दन । नरके । अनियतम् । वासः । भवति । इति । अनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

(पदार्थ) हे जनार्दन ! नष्ट करे हैं कुल जातिआदिकोंके धर्म जिनोंनैं ऐसे मनुष्योंका नरकविषे अवधितैं रहित निवास होवै है इसप्रकार हम आचार्योंके मुखतैं श्रवण करते भये हैं ॥ ४४ ॥

भा॰ टी॰—हे जनार्दन ! जे पुरुष लोभके वश होइकै अपणे कुलका हनन करिकै अपणे कुलके धर्मोंकूं तथा जातिके धर्मोंकूं नष्ट करैं हैं तिन पुरुषोंका युगमन्वंतरादिक अवधितैं रहित रौरवादिक नरकोंविषे निवास होवै है। यह वार्त्ता हम केवल अपणी बुद्धिकी कल्पनातैं नहीं कहते किंतु पूर्व आचार्योंके मुखतैं तथा महान ऋषियोंके मुखतैं यह वार्त्ता हम श्रवण करते भये हैं। तहां श्लोक "प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेष्वभिरता नराः। अपश्चात्तापिनः पापान्निरयान् यांति दारुणान्" ॥ अर्थ यह— जे पुरुष पापोंविषे प्रीतिवाले हैं तथा ता पापकी निवृत्तिवासतै प्रायश्चित्तकूं करते नहीं तथा पश्चात्तापकूंभी नहीं करते ते पुरुष ता पापके वशतैं दारुण नरकोंकूं प्राप्त होवैं हैं इति। इत्यादिक अनेक वचन पापी पुरुषोंकूं नरककी प्राप्ति कथन करे हैं। इहां (नरके नियतम्) या वचनविषे ककारके उत्तर अकारका लोप मानिकै अनियतं ऐसा पदच्छेद करा है। ता अनियतपदका पूर्व अर्थ कथन करा। और जो अकारका लोप तहां न अंगीकार करिये तौ नियतं या प्रकारका पदच्छेद करणा। ता नियतपदका अवश्यकरिकै यह अर्थ करणा। क्या ऐसे मनुष्योंकूं नरकविषे अवश्यकरिकै निवास होवै है इति ॥ ४४ ॥

तहां अपणे बांधवोंकी हिंसाविषे है परिअवसान जिसका ऐसा जो युद्ध करणेका निश्चय है सो निश्चयभी सर्व प्रकारतैं अत्यंत पापिष्ठ है तौ यह युद्धरूप कर्म अत्यंत पापिष्ठ है याकेविषे क्या कहणा है। या अर्थके कहणेवासतै ता युद्धके निश्चय करणेकरिकै अपणेकूं धिक्कार करता हुआ सो अर्जुन कहै है—

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः॥ ४५ ॥

(पदच्छेदः) अहो। बत। महत्पापम्। कर्तुम्। व्यवसिताः। वयम्। यत्। राज्यसुखलोभेन। हंतुम्। स्वजनम्। उद्यताः ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) बडा आश्चर्य है बडा खेद है जो हम महान् पापकूं करणेवासतै निश्चयवाले हुए हैं जो हम राज्यसुखके लोभकरिकै अपणे बांधवोंकूं हनन करणेवासतै उद्यमवाले हुए हैं सोईही महान पाप है ॥ ४५ ॥

भा॰ टी॰—हे भगवन् ! यह हमारेकूं बडा आश्चर्य होता है तथा बडा खेद होता है। जो हम विचारवान् होकैभी इस महान् पापके करणेवासतै प्रयत्नवाले

हुए हैं, सो कौन पाप है जिसके करणेवासतै तुम प्रयत्नवाले हुए हो। ऐसी भगवान्की शंका करिकै अर्जुन कहै है। (यदिति) राज्यकी प्राप्तिकरिकै प्राप्त होणेहारा जो क्षणभंगुर विषयसुख है ता विषयसुखविषे जो लंपटतारूप लोभ है ता लोभकरिकै जो हम अपणे भ्रातापुत्रादिक बांधवोंकूं तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै हनन करणेवासतै उद्यमवाले हुए हैं सोईही महान् पाप है इसतैं परे दूसरा कोई पाप है नहीं। तात्पर्य यह जो तुम्हारी ऐसी बुद्धि है तौ युद्धका अभिनिवेश करिकै तूं इहां किसवासतै आया है या प्रकारका वचन आपनैं कहणा नहीं। काहेतैं विचारतैं विनाही कार्यकूं करणेहारा जो मैं हूं तिस हमने यह बहुत उद्धतपणा करा है॥ ४५॥

हे अर्जुन ! तुम्हारेकूं यद्यपि युद्धादिकोंतैं वैराग्य हुआ है तथापि भीमसेनादिकोंकूं ता युद्ध करणेकी बहुत उत्कट इच्छा है। यातैं बांधवोंका नाश तौ अवश्यकरिकै होवैगा। पुनः तुम्हारेकूं क्या कार्य करणे योग्य हैं। ऐसी भगवान्की शंकाकरिकै अर्जुन कहै है—

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ ४६॥

(पदच्छेदः) यदि। माम्। अप्रतीकारम्। अशस्त्रम्। शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्राः। रणे। हन्युः। तत्। मे। क्षेमतरम्। भवेत्॥ ४६॥

(पदार्थः) जबी प्रतीकारतैं रहित तथा शस्त्रोंतैं रहित हमारेकूं यह शस्त्रोंवाले धृतराष्ट्रके पुत्रादिक इस युद्धभूमिविषे हनन करैंगे सो हनन हमारा अत्यंत क्षेमरूप होवैगा॥ ४६॥

भा० टी०—हे भगवन् ! अपणे प्राणोंकी रक्षावासतै करेहुएकी जो प्रतिक्रिया है ताका नाम प्रतीकार है। जैसे अपणे प्राणोंकी रक्षा करणेवासतै ताडन करणेहारे पुरुषकूं जो ताडन करणा है ताका नाम प्रतीकार है। ता प्रतीकारतैं रहितका नाम अप्रतीकार है। अथवा इन बांधवोंकूं मैं हनन करौंगा या प्रकारके निश्चयमात्रकरिकै प्राप्त भया जो पाप है ता पापकी निवृत्ति करणेहारा जो शरीरके नाशतैं विना अन्य प्रायश्चित्त है ता प्रायश्चित्तका नाम प्रतीकार है ता प्रतीकारतैं जो रहित होवै ताका नाम अप्रतीकार है ऐसा अप्रतीकार जो मैं हूं या कारणतैंही मैं शस्त्रोंतैं रहित हूं। ऐसे प्रतीकारतैं रहित तथा शस्त्रोंतैं रहित मेरेकूं जो कदाचित् शस्त्र हैं हाथविषे जिनोंके ऐसे यह धृतराष्ट्रके दुर्योधना-

दिक पुत्र इस युद्धभूमिविषे हनन करैंगे तौ सो हमारा हनन हमारेकूं अत्यंत हित रूप होवैगा । काहेतैं "अहिंसा परमो धर्मः" इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन करा जो सर्व भूतप्राणियोंकी अहिंसरूप धर्म है सो अहिंसारूप धर्म अपणे प्राणोंतैंभी उत्कृष्ट है काहेतैं इन प्राणोंके धारणतैं अनेकप्रकारके पापकी उत्पत्ति होवै है और ता अहिंसाधर्मतैं कोई पाप उत्पन्न होवै नहीं उलटा महान् पुण्य उत्पन्न होवै है। यातैं इस जीवनकी अपेक्षाकरिकै सो हमारा मरणही अत्यंत हितरूप है और अपणे बांधवोंके मारणेके संकल्पकरिकै उत्पन्न भया जो पाप है ता पापकी निवृत्ति करणेहारा दूसरा कोई प्रायश्चित्त है नहीं । किंतु यह हमारा मरणही ता पापके निवृत्तिका प्रायश्चित्त है । या कारणतैंभी यह हमारा मरणही हमारा अत्यंत हितरूप है । इहां किसी पुस्तकविषे (तन्मे प्रियतरं भवेत्) या प्रकारका पाठभी होवै है । ता पाठकाभी यह पूर्व उक्त अर्थही जानि लेना । अथवा (तन्मे क्षेमतरं भवेत्) या वचनका इस प्रकारका अर्थ करणा । सो मरण हमारेकूं क्षेमकी प्राप्तिवासतैंही होवैगा काहेतैं शास्त्रविषे क्षेमका यह स्वरूप कथन करा है । "अप्राप्तप्रापणं योगः क्षेमस्तु स्थितरक्षणम्" । अर्थ यह—अप्राप्तवस्तुकी जो प्राप्ति है ताका नाम योग है । और पूर्वस्थित वस्तुका जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है इति । और क्षेमतैंभी जो अधिक क्षेम होवै ताका नाम क्षेमतर है । सो इहां प्रसंगविषे यह क्षेमतर है । अपणे कुलके नाश करणेतैं उत्पन्न होणेहारा जो दोष है तथा ता दोषकरिकै प्राप्त होणेहारी जो नरककी प्राप्ति है तथा इस लोकविषे प्राप्त होणेहारी जो अपकीर्ति है इत्यादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिपूर्वक जो पूर्वकृत पुण्यकर्मोंके नाशका अभाव है सोईही क्षेम-तर है सो क्षेमतर हमारेकूं इस मरणतैंही प्राप्त होवैगा । यातैं इन बांधवोंके साथि युद्ध करणेतैं हमारा मरणही श्रेष्ठ है इति ॥ ४६ ॥

तिसतैं अनंतर क्या वृत्तांत होता भया ऐसी धृतराष्ट्रकी शंका करिकै संजय कहै है—

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ॥
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्त्वा । अर्जुनः । संख्ये । रथोपस्थे । उपाविशत् । विसृज्य । सशरम् । चापम् । शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! शोककरिकै पीडित है मन जिसका ऐसा अर्जुन संग्राम-विषे इस प्रकारका वचन कहिकरिकै शरसहित धनुषकूं परित्याग करिकै रथके ऊपरि बैठता भया ॥ ४७ ॥

भा॰ टी॰—हे धृतराष्ट्र ! अपणे बांधवोंके विनाशरूप निमित्ततैं उत्पन्न भया जो शोक है ता शोककरिकै पीडित है मन जिसका ऐसा सो अर्जुन ता संग्रामविषे कृष्णभगवान्प्रति ता पूर्व उक्त वचनकूं कहिकरिकै तथा शरसहित धनुषका परित्याग करिकै ता रथके ऊपरि स्थित होता भया इति ॥ ४७ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

तहां सर्व प्राणियोंकी अहिंसा तथा भिक्षा अन्नका भोजन यही हमारा परम धर्म है या प्रकारकी बुद्धि करिकै अर्जुनकी युद्धतैं विमुखताकूं श्रवण करिकै अपणे दुर्योधनादिक पुत्रोंके राज्यकी अचलताकूं निश्चय करिकै स्वस्थ हुआ है चित्त जिसका ऐसा जो धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रकी हर्षकरिकै उत्पन्न भई जो आकांक्षा (तिसतैं अनंतर क्या वृत्तांत होता भया या प्रकारकी) है ता आकांक्षाके निवृत्त करणेकी इच्छावान् सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। यह वार्त्ता वैशंपायन जनमेजयके प्रति कहै हैं—

संजय उवाच।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) तम् । तथा । कृपया । आविष्टम् । अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् । विषीदंतम् । इदम् । वाक्यम् । उवाच । मधुसूदनः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! पूर्व उक्त कृपानैं व्याप्त करा हुआ तथा अश्रुंकरिकै पूर्ण तथा आकुल हैं नेत्र जिसके तथा विषादकूं प्राप्त हुआ ऐसा जो अर्जुन है ताके प्रति श्रीकृष्णभगवान् यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ १ ॥

भा० टी०—यह भीष्म दुर्योधनादिक हमारे संबंधी हैं या प्रकारका व्यामोह है कारण जिसविषे ऐसा जो स्नेहविशेष है ता स्नेहका नाम कृपा है। ता कृपानैं व्याप्त करा हुआ जो अर्जुन है। इहां (कृपयाविष्टम्) इतने कहणेकरिकै अर्जुन विषे व्याप्तिरूप क्रियाका कर्मपणा कथन करा। और ता स्नेहरूप कृपाविषे ता व्याप्तिरूप क्रियाका कर्त्तापणा कथन करा। ता कहणेकरिकै ता कृपाविषे आगंतुकपणा निवृत्त करा। ऐसी स्वभावसिद्ध कृपानैं सो अर्जुन व्याप्त करा है। या कारणतैंही सो अर्जुन विषादकूं प्राप्त हुआ है तहां स्नेहके विषयरूप जो अपणे बांधव हैं। तिन बांधवोंके नाशकी शंका है कारण जिसका ऐसा जो शोकरूप चित्तका व्याकुलीभाव है ताका नाम विषाद है। इहां (विषीदंतम्) या शब्द करिकै ता विषादविषे प्राप्तिरूप क्रियाका कर्मपणा कथन करा। और अर्जुनविषे ता प्राप्तिरूप क्रियाका कर्त्तापणा कथन करा। ता कहणेकरिकै तिस विषादविषे आगंतुकपणा सूचन करा। कदाचित् उत्पन्न होणेहारे पदार्थकूं आगंतुक कहैं हैं ऐसे आगंतुक विषादके वशतैं अश्रुरूप जलकरिकै पूर्ण हुए हैं नेत्र जिसके तथा वस्तुके दर्शनकी असामर्थ्यरूप आकुलता करिकै युक्त हैं नेत्र जिसके ऐसा जो अर्जुन है ता अर्जुनके प्रति सो मधुसूदन भगवान् अनेक प्रकारकी युक्तियोंसहित यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया। ता अर्जुनकी सो भगवान् उपेक्षा नहीं करता भया। इहां संजयनैं कृष्णभगवान्का जो (मधुसूदनः) यह नाम कथन करा है ताकरिकै संजयनैं धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ सूचन करा "मध्वाख्यम् असुरं सूदयतीति मधुसूदनः"। अर्थ यह—मधुनामा असुरकूं जो नाश करै है ताकूं मधुसूदन कहैं हैं। ऐसा दुष्टोंके संहार करणेहारा कृष्णभगवान् अपणे स्वभावके अनुसार ता अर्जुनके प्रतिभी तुम्हारे दुर्योधनादिक दुष्ट पुत्रोंके हनन करणेकाही उपदेश करैगा। अथवा अपणे मधुसूदन नामके सार्थक करणेवासतै सो कृष्णभगवान् अर्जुनकूं निमित्तमात्र करिकै आपही तुम्हारे दुष्ट पुत्राकूं हनन करैगा। यातैं तुमनैं अपणे पुत्रोंके जयकी आशा कदाचितभी नहीं करणी ॥ १ ॥

अब ता कृष्णभगवान्‌के वचनका दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) कुतः । त्वा । कश्मलम् । इदम् । विषमे । समुपस्थितम् । अनार्यजुष्टम् । अस्वर्ग्यम् । अकीर्तिकरम् । अर्जुन ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस भययुक्त स्थानविषे तुम्हारेकूं यह कश्मल किस हेतुतैं प्राप्त भया है कैसा है सो कश्मल श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै असेवित है तथा स्वर्गका विरोधी है तथा अकीर्ति करणेहारा है ॥ २ ॥

भा०टी०—'श्रीभगवानुवाच' या वचनविषे स्थित जो भगवान्‌पद है ता भगवान्‌पदका शास्त्रविषे यह अर्थ कथन करा है। श्लोक—"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतीरणा" ॥ अर्थ यह—संपूर्ण जो ऐश्वर्य है १ तथा संपूर्ण जो धर्म है २ तथा संपूर्ण जो यश है ३ तथा संपूर्ण जो श्री है ४ तथा संपूर्ण जो वैराग्य है ५ तथा संपूर्ण जो ज्ञान है ६ या षटोंका नाम भग है इति । ते ऐश्वर्यादिक षट्‌भग प्रतिबंधतैं रहित हुए नित्यही जिसविषे रहैं ताका नाम भगवान् है । अथवा भगवान्‌शब्दका यह अर्थ है। श्लोक—" उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति" । अर्थ यह । जो सर्वज्ञ पुरुष सर्व भूतोंके उत्पत्तिकूं तथा ता उत्पत्तिके कारणकूं जानै है । तथा तिन सर्व भूतोंके नाशकूं तथा ता नाशके कारणकूं जानै है। तथा जो सर्वज्ञ पुरुष सर्व भूतोंके संपदारूप आगतिकूं तथा सर्व भूतोंके आपदा रूप गतिकूं जानै है तथा जो सर्वज्ञ पुरुष विद्याकूं तथा अविद्याकूं जानै है सो सर्वज्ञ पुरुष भगवान् या नाम करिकै कहणेयोग्य है इति । ऐसा श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । हे अर्जुन! स्नेहरूप कृपा तथा पूर्व उक्त विषाद तथा अश्रुपात यह तीनों हैं कारण जिसके तथा शिष्ट पुरुषोंकरिकै निंदित होणेतैं अत्यंत मलिन है स्वरूप जिसका ऐसा जो यह युद्धरूप स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल है सो कश्मल इस युद्धभूमिविषे सर्व क्षत्रियोंतैं श्रेष्ठ तुम्हारेकूं किस हेतुतैं प्राप्त भया है। तात्पर्य यह । सो युद्धरूप

स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल तुम्हारेकूं मोक्षकी इच्छारूप हेतुतैं प्राप्त भया है। अथवा स्वर्गकी इच्छारूप हेतुतैं प्राप्त भया है। अथवा कीर्तिकी इच्छारूप हेतुतैं प्राप्त भया है इति। अब या तीनों हेतुओंकूं यथाक्रमतैं अनार्यजुष्टं, अस्वर्ग्यं, अकीर्त्तिकरं, या तीन विशेषणोंकरिकै श्रीभगवान् निषेध करै हैं। (अनार्यजुष्टं) इत्यादिक अर्धश्लोककरिकै, हे अर्जुन! अपणे वर्णआश्रमके धर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षकी इच्छा करणेहारे जो अशुद्ध अंतःकरणवाले मुमुक्षुजन हैं ऐसे मुमुक्षुजनोंनैं तौ यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल कदाचित्भी सेवन करणेयोग्य नहीं है। और सर्व कर्मोंके संन्यासका अधिकारी तौ शुद्धअंतःकरणवालाही होवै है। यह वार्त्ता आगे कथन करैंगे यातैं मोक्षकी इच्छारूप हेतुतैं तथा कश्मलकी प्राप्ति संभवै नहीं। और यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल स्वर्गकी प्राप्ति करणेहारे धर्मका विरोधी है यातैं स्वर्गकी इच्छावान् पुरुषनैंभी सो कश्मल सेवन करणेयोग्य नहीं है। और सो कश्मल इस लोकविषे कीर्त्तिका अभाव करणेहारा है अथवा अपकीर्त्ति करणेहारा है यातैं इस लोकके कीर्त्तिकी इच्छावान् पुरुषोंनभी सो कश्मल सेवन करणेयोग्य नहीं है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया मोक्षकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तथा स्वर्गकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तथा कीर्त्तिकी इच्छावान् पुरुषोंनैं यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल सर्वथा परित्याग करणेयोग्य है। और तूं तौ मोक्षकी तथा स्वर्गकी तथा कीर्त्तिकी इच्छावान् हुआभी इस कश्मलकूं सेवन करता है। यातैं यह तुम्हारा बहुत अनुचित व्यवहार है ॥ २ ॥

हे भगवन्! अपणे बांधवोंकी सेनाके देखणेकरिकै उत्पन्न भया जो अधैर्य है ता अधैर्यके वशतैं धनुषमात्रकूंभी धारण करणेविषे असमर्थ जो मैं हूं तिस हमारेकूं अबी क्या करणेयोग्य है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) क्लैब्यम्। मा। स्मगमः। पार्थ। न। एतत्। त्वयि। उपपद्यते। क्षुद्रम्। हृदयदौर्बल्यम्। त्यक्त्वा। उत्तिष्ठ। परंतप ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे पृथाके पुत्र! तूं क्लीबभावकूं मत प्राप्त होउ तैं अर्जुनविषे यह क्लीबभाव नहीं बनि सकता है परंतप या क्षुद्र हृदयके दौर्बल्यकूं परित्याग करिकै तूं युद्धवासतै उठि खड़ा होउ ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे पृथाके पुत्र! ओज तेज आदिकोंका भंगरूप जो अधैर्य है ता अधैर्यरूप जो क्लीबभाव है ता क्लीबभावकूं तूं मत प्राप्त होउ। इहां (हे पार्थ) या संबोधन करिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचना करा पृथा मातानैं देवताका आराधन करिकै ता देवताके प्रसादतैं तुम्हारेकूं पाया था। यातैं तुम्हारेविषे बलकी अधिकता अत्यंत प्रसिद्ध है ऐसा पृथाका पुत्र तूं इस क्लीबभावके योग्य नहीं है। अब अर्जुनपणे करिकैभी ता क्लीबभावकी अयोग्यता निरूपण करैं हैं। (नैतदिति) साक्षात् महेश्वरके साथिभी युद्ध करणेहारा तथा सर्व लोकविषे प्रसिद्ध महान् प्रभाववाला ऐसा जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेविषे यह अधैर्यरूप क्लीबभाव कदाचित्भी बनता नहीं। शंका—हे भगवन्! (न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः) अर्थ यह। मेरा मन भ्रमण करता है यातैं मैं अपणे शरीरके स्थित करणेविषेभी समर्थ नहीं हूं। यह अपणा वृत्तांत पूर्वही मैंनैं आपके प्रति कथन करा था यातैं अबी हमारेकूं आप वारंवार किस वासतै कहते हो। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (क्षुद्रम् इति) हे अर्जुन जिसकूं हृदयका दौर्बल्य कहैं हैं ऐसा जो मनका भ्रमणादिरूप अधैर्य है सो अधैर्य स्वाश्रयपुरुषके क्षुद्रपणेका कारण होणेतैं क्षुद्ररूप है। अथवा सो भ्रमणादिरूप अधैर्य सुगमही निवृत्त करा जावै है यातैं क्षुद्ररूप है। ऐसे क्षुद्र अधैर्यकूं विचारके बलतैं शीघ्रही परित्याग करिकै इस स्वधर्मरूप युद्धके करणेवासतै तुम सावधान होवो। इहां (हे परंतप) या अर्जुनके संबोधन कहणे करिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा। "परं शत्रुं तापयतीति परंतपः"॥ अर्थ यह—अपणे शत्रुओंकूं जो संतापको प्राप्ति करै ताका नाम परंतपहै ऐसा परंतप होईकैभी अत्यंत क्षुद्र अधैर्यरूप शत्रुका नाश नहीं करणा यह बहुत आश्चर्यकी वार्त्ता है। यातैं अपणे परंतप नामके सार्थक करणेवासतै तुम्हारेकूं ता अधैर्यरूप शत्रुका नाश अवश्य करणे योग्य है॥ ३ ॥

हे भगवन्! इस युद्धका जो मैं परित्याग करता हूं सो कोई शोकमोहादिकोंके वशतैं नहीं करता हूं किंतु इस युद्धविषे धर्मरूपता है नहीं उलटा अधर्मरूपता है या कारणतैं मैं इस युद्धका परित्याग करता हूं। या प्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकूं संजय कथन करै है—

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) कथम् । भीष्मम् । अहम् । संख्ये । द्रोणम् । च । मधुसूदन । इषुभिः । प्रतियोत्स्यामि । पूजार्हौ । अरिसूदन ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे मधुसूदन हे अरिसूदन इस रणभूमिविषे मैं अर्जुन पूजाके योग्य भीष्मकूं तथा द्रोणकूं बाणोंकरिकै किस प्रकार हनन करौंगा किंतु नहीं हनन करौंगा ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! हमारे कुलविषे वृद्ध तथा गुणोंकरिकै वृद्ध जो यह भीष्मपितामह हैं तथा धनुर्विद्याका गुरु जो यह द्रोणाचार्य हैं यह दोनों अपणे पिताकी न्याईं पुष्प चंदन अक्षतादिकोंकरिकै पूजन करणेयोग्य हैं । ऐसे भीष्म-द्रोणादिक वृद्धोंके साथि क्रीडास्थानविषे आनंदकी प्राप्तिवासतै लीलायुद्ध करणाभी हमारेकूं उचित नहीं है तो इस रणभूमिविषे तीक्ष्ण शस्त्रों करिकै तिन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणा हमारेकूं किस प्रकार उचित होवैगा ? किंतु तिन भीष्मादिकोंका हनन करणा हमारेकूं उचित नहीं है । इहां यह तात्पर्य है । यह दुर्योधनादिक भीष्मपितामहकूं तथा द्रोणाचार्यकूं छोडिकरिकै तौ हमारे साथि युद्ध करैंगे नहीं किंतु भीष्मद्रोणकूं सम्मुख करिकै हमारे साथि युद्ध करैंगे । तहां भीष्म द्रोणाचार्यके साथि युद्ध करणा धर्म तौ है नहीं, काहेतैं वेदकरिकै विधान करा हुआ जो बलवान् अर्थ है ताका नाम धर्म है । या प्रकारका धर्मका लक्षण जैसे भीष्मद्रोणादिकोंके पूजनविषे घटै है तैसे तिन्होंके साथि युद्ध करणेविषे सो लक्षण नहीं यातैं सो युद्ध धर्मरूप नहीं है । शंका–हे अर्जुन ! जैसैं वृद्धपुरुषोंके साथि युद्ध करणेका शास्त्रविषे विधान नहीं करा है यातैं ता युद्धविषे धर्मरूपता नहीं संभवती तैसैं ता युद्धका शास्त्रविषे निषेधभी तो नहीं करा है यातैं ता युद्धविषे अधर्मरूपताभी नहीं संभवती । शास्त्रकरिकै निषिद्धही अधर्म होवै है । समाधान–हे भगवन् ! शास्त्रविषे यह कहा है । श्लोक । "गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रान्निर्जित्य वादतः । श्मशाने जायते वृक्षः कंकगृध्रोपसेवितः । " अर्थ यह–जो पुरुष अपणे गुरुके प्रति हुंकारशब्द कहै है तथा तुंकारशब्द कहै है तथा साधु ब्राह्मणोंकूं विवादतैं जय करै है सो पुरुष मारिकरिकै श्मशानभूमिविषे कंक गृध्र आदिक

पक्षियोंकरिकै सेवित वृक्षशरीरकूं प्राप्त होवै है इति । इत्यादिक शास्त्रोंके वचनोंनैं शब्दमात्रकरिकैभी गुरुका द्रोह निषेध करा है । जबी शब्दमात्र करिकै गुरुका द्रोहभी अधर्मरूप हुआ तबी तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुओंके साथि तीक्ष्ण शस्त्रों करिकै युद्ध करणा अधर्मरूप है । याके विषे क्या कहणा है । इहां (हे मधुसूदन हे अरिसूदन) यह दो संबोधन भगवान्के जो अर्जुननैं कहे हैं तिन दोनोंका अर्थ एकही है काहेतैं मधुनामा असुरकूं जो हनन करै है ताकूं मधुसूदन कहैं हैं । और शत्रुरूप अरियोंकूं जो हनन करै है ताकूं अरिसूदन कहैं हैं यातैं एकबार कहे हुए अर्थका पुनः कथन करणेविषे यद्यपि अर्जुनकूं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै है तथापि सो अर्जुन तिस कालविषे शोककरिकै व्याकुल था यातैं ता अर्जुनकूं पूर्व उत्तर अर्थका स्मरण रह्या नहीं यातैं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं स्वस्थचित्तवाले पुरुषविषेही सो पुनरुक्तिदोष दिया जावै है । अथवा मधुसूदन अरिसूदन या दो संबोधनोंकरिकै अर्जुननैं भगवान्के प्रति यह अर्थ सूचन करा । हे भगवन्! आपभी तौ मधुअसुरादिक शत्रुओंकूंही हनन करतेहो अपणे मित्रोंकूं हनन करते नहीं । यातै पूजाके योग्य भीष्मद्रोणादिक गुरुओंकूं तुम हनन करो या प्रकारका वचन कहणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादिकोंविषे जा पूज्यता है सा पूज्यता गुरुपणे करिकै है ता गुरुपणेतैं विना तिन्हकी पूज्यताविषे दूसारा कोई कारण है नहीं सो गुरुपणा यद्यपि पूर्वकालविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंविषे रह्या था तथापि इस कालविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंकूं गुरुरूप करिकै अंगीकार करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है। काहेतैं धर्मशास्त्रविषे यह कह्या है । श्लोक ।“गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते”अर्थ यह— जो गुरु अहंकारादिक दोषोंकरिकै उन्मत्तभावकूं प्राप्त भया है तथा जो गुरु शास्त्रविहित करणे योग्य अर्थकूं तथा शास्त्रनिषिद्ध अकरणें योग्य अर्थकूं जाणता नहीं तथा जो गुरु शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे प्रवृत्त होवै है ऐसे गुरुका शिष्यनैं परित्यागही करणा इति । यह सर्व लक्षण इन भीष्मद्रोणाचार्यादिकोंविषे घटैं हैं काहेतैं यह भीष्मद्रोणादिक युद्धके गर्वकरिकै महान् उन्मत्तभावकूं प्राप्त हुए हैं । और इन भीष्मद्रोणादिकोंनैं कपट करिकै राज्यका ग्रहण करा है तथा अपणे शिष्योंके साथि द्रोह करा है यातैं यह भीष्मद्रोणादिक कार्य अकार्यके ज्ञानतैंभी रहित हैं या

कारणतैंही शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे वर्त्तणेहारे हैं । ऐसे भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणाही श्रेष्ठ है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ॥ हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) गुरून् । अहत्वा । हि । महानुभावान् । श्रेयः । भोक्तुम् । भैक्ष्यम् । अपि । इह । लोके । हत्वा । अर्थकामान् । तु । गुरून् । इह । एव । भुंजीय । भोगान् । रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जिसै कारणतैं महानुभाव गुरुओंकूं न हनन करिकै इस लोकविषे भिक्षाअन्नकूं भोजन करणाभी श्रेष्ठ है इन अर्थकामवाले भी गुरुओंकूं हनन करिकै मैं इस लोकविषे ही रुधिरलिप्त विषयोंकूं भोगौंगा ॥ ५ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! भीष्मद्रोणाचार्यादिक गुरुओंकूं न हनन करिकै हमारा परलोक तौ अवश्यकरिकै सिद्ध होवैगा । और इस लोकविषे तौ तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुओंकूं न हनन करिकै राज्यतैं रहित हुए हम राजाओंकूं शास्त्रनिषिद्ध भिक्षाअन्नभी भोजन करणेकूं अत्यंत श्रेष्ठ है । परन्तु तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुओंकूं हनन करिकै हमारेकूं यह राज्यभी श्रेष्ठ नहीं है । काहेतैं शास्त्रविषे यह कह्या है । श्लोक । "अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमंदिरम् । अक्लेशयित्वा चात्मानं यदल्पमपि तद्बहु" । अर्थ यह–दूसरे प्राणियोंकूं संतापकी प्राप्ति न करिकै तथा वेदविरुद्ध नास्तिकोंके मंदिरकूं न जाइ करिकै तथा अपणे आत्माकूं क्लेशकी प्राप्ति नहीं करिकै इस पुरुषकूं जो अल्प पदार्थकीभी प्राप्ति होवै सा अल्प पदार्थकी प्राप्तिभी इस पुरुषनैं बहुत करिकै मानणी इति । यातैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके मारणेकरिकैं प्राप्त होणेहारा जो राज्य है ता राज्यतैं हम इन भीष्मादिकोंकूं न मारिकै या भिक्षाअन्नकूंही बहुतकरिकै मानते हैं । यह सर्व अर्थ अर्जुननैं (हि) याशब्दकरिकै सूचन करा । शंका–हे अर्जुन ! "गुरोरप्यवलिप्तस्य" या पूर्वउक्त वचनकरिकै इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे गुरुपणेका अभाव हम कथन करि आये हैं यातैं वारंवार तूं इन्होंविषे गुरुबुद्धि किसवास्तै करता है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए सो अर्जुन कहै है । (महानुभावानिति) हे भगवन् ! श्रवण, अध्ययन, तप आचार इत्यादिक श्रेष्ठ गुणोंकरिकै महान् है प्रभाव जिन्होंका ऐसे जो यह भीष्म

द्रोणादिक हैं तिन भीष्मादिकोंनें कालकामादिकभी अपणे वश करे हैं ऐसे महान् पुण्यवाले भीष्मादिकोंकूं पूर्व उक्त क्षुद्र पापकर्मका स्पर्शमात्रभी होवै नहीं । यातैं यत्किंचित् अनुचित कर्मकूं देखिकरिकै ऐसे महानुभाव पुरुषोंविषे गुरुत्वबुद्धिका परित्याग करणा हमारेकूं योग्य नहीं है । अथवा (हिमहानुभावान्) यह एकही पद है ताका यह अर्थ करणा । हिमं जाड्यमपहंतीति हिमहा आदित्यो अग्निर्वा तस्येव अनुभावः सामर्थ्यं येषां ते हिमहानुभावाः तान्"। अर्थ यह–जडतारूप जो हिमहै ता हिमकूं जो नाशकरै ताका नाम हिमहा है ऐसा सूर्य भगवान् है अथवा अग्नि है ता सूर्यभगवान्के तथा अग्निके समानहै सामर्थ्य जिन्होंका तिन्होंका नाम हिमहानुभाव है। ऐसे अतितेजस्वी भीष्मद्रोणादिकोंकूं ते पूर्व उक्त क्षुद्र पाप दोषकी प्राप्ति करै नहीं। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषे भी कथन करी है । श्लोक ।"धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा" । अर्थ यह– ईश्वर पुरुषोंका शीघ्रही धर्ममर्यादाका उल्लंघन देखणेविषे आवता है सो धर्ममर्यादाका उल्लंघन तिन तेजस्वी पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं। जैसे शुद्ध अशुद्ध सर्व पदार्थोंकूं भक्षण करणेहारा जो अग्नि है तिस अग्निकूं सो अशुद्ध वस्तुका भक्षण दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं । इति तैसे इन भीष्मद्रोणादिक तेजस्वी पुरुषोंकूं ते पूर्वउक्त अनुचित कर्म दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं ॥ शंका–हे अर्जुन! यह भीष्म द्रोणादिक जबी अपणे अर्थके लोभकरिकै इस युद्धविषे प्रवृत्त होवैंगे तबी वेचाहै अपणा आत्मा जिन्होंनें ऐसे इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे सो पूर्व उक्त माहात्म्य किस प्रकार संभवैगा । यह वार्त्ता भीष्मपितामहनैं आपही युधिष्ठिरके प्रति कथन करी है। तहां श्लोक। "अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः" । अर्थ यह–हे महाराज युधिष्ठिर ! यह पुरुष अपणे अर्थकाही दास होवै और सो अर्थ किसीभी पुरुषका दास होता नहीं यह जो वार्त्ता शास्त्रविषे कही है सा वार्त्ता सत्य है। या कारणतैंही मैं अपणे अर्थके लोभकरिकै इन कौरवोंके साथि बांध्या हुआ हूं इति । यातैं अर्थके लोभवाले इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे सो पूर्व उक्त माहात्म्य संभवता नहीं । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए सो अर्जुन कहै है। (हत्वेति) हे भगवन् ! ते भीष्मद्रोणादिक यद्यपि अर्थकी कामनावाले हैं तथापि ते भीष्मद्रोणादिक हमारी अपेक्षाकरिकै तौ गुरुही हैं। यह अर्थ अर्जुननैं पुनः गुरुशब्दके कथनकरिकै सूचन करा । ऐसे अर्थकामनावालेभी गुरु-

वोंकूं हनन करिकै मैं केवल विषयोंकूंही भोगौंगा ता गुरुवोंके मारणेकरिकै मैं मोक्षकूं तौ प्राप्त होवौंगा नहीं ते विषयभोगभी केवल इस लोकविषेही हमारेकूं प्राप्त होवैंगे । परलोकविषे ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त होवैंगे नहीं । इस लोकविषेभी श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै अनिंदित ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त नहीं होवैंगे । किंतु अयश-रूपी रुधिरकरिकै व्याप्त होणेतैं अत्यंत निंदित ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त होवैंगे । तात्पर्य यह । इन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके मारणेकरिकै जबी इस लोकविषेभी हमारेकूं इस प्रकारका दुःख होवैगा तबी परलोकके दुःखका मैं क्या वर्णन करौं । अथवा (अर्थकामान्) यह विषयरूप भोगोंका विशेषण जानना, ता पक्षविषे यह अर्थ करना । इन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं हनन करिकै मैं केवल अर्थकामरूप विषयोंकूंही भोगौंगा परंतु तिन्होंके मारणेकरिकै हमारेकूं कोई धर्मकी तथा मोक्षकी प्राप्ति होवैगी नहीं ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! भिक्षाअन्नका भोजन करणा क्षत्रियोंकूं शास्त्रकरिकै निषिद्ध है और युद्ध करणा तौ क्षत्रियोंकूं शास्त्रकरिकै विधान करा है यातैं स्वधर्म होणेतैं युद्धही तुम्हारेकूं श्रेयकी प्राप्ति करणेहारा है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ॥ यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) नच । एतत् । विद्मः । कतरत् । नः । गरीयः । यद्वा । जयेम । यदि वा । नः । जयेयुः । यान् । एव । हत्वा । न । जिजीविषामः । ते । अवस्थिताः । प्रमुखे । धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! हमारेकूं भिक्षा और युद्ध इन दोनोंके मध्यविषे कौन धर्म श्रेष्ठ है इस वार्त्ताकूं हम नहीं जानतेहैं और युद्धविषे प्रवृत्त हुएभी क्या हम जीतैंगे अथवा हमारेकूं यह कौरव जीतैंगे किंवा जिन भीष्मादिक बांधवोंकूं हनन करिकै हम जीवनेकीभी इच्छा नहीं करते हैं ते भीष्मद्रोणादिक बांधवही हमारे सम्मुख स्थित हुए हैं ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! भिक्षाअन्नका भोजन तथा युद्ध ता दोनों धर्मौंविषे हमारेकूं कौन धर्म श्रेष्ठ है । क्या हिंसातैं रहित होणेतैं भिक्षाका अन्नही श्रेष्ठ है

अथवा स्वधर्म होणेतैं युद्धही श्रेष्ठ है या वार्त्ताकूं हम जानि सकते नहीं । शंका—हे अर्जुन । भिक्षाअन्नका भोजन तथा युद्ध या दोनों धर्मोंविषे स्वधर्म होणेतैं युद्धही तुम्हारेकूं श्रेष्ठ है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहैहै (यद्वेति) हे भगवन् । जो कदाचित् हम युद्धविषे प्रवृत्तभी होवैं तौभी हमही इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं जय करैंगे अथवा यह भीष्मद्रोणादिकही हमारेकूं जय करैंगे इस वार्त्ताकूंभी हम जाणते नहीं । जो कदाचित यह भीष्मद्रोणादिकही हमारेकूं जीतैंगे तौ अंतविषे हमारेकूं भिक्षा माँगिकैही भोजन करणा पड़ैगा । अथवा हमारा मरण होवैगा । इन दोनों वार्त्ताओंविषे एक वार्त्ता तौ अवश्यकरिकै होवैगी यातैं ता युद्धतैं प्रथमही भिक्षा माँगिकै भोजन करणा हमारेकूं श्रेष्ठ है । शंका—हे अर्जुन ! हमारा जय होवैगा अथवा इन भीष्मद्रोणादिकोंका जय होवैगा या प्रकारका संशय तूं किसवासतै करता है मैं कृष्णभगवान् तुम्हारी सहायताविषे हूं यातैं तुम्हाराही निश्चयकरिकै जय होवैगा । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (यानेवेति) हे भगवन् ! जो कदाचित आपकी सहायताकरिकै हमारा जयभी होवै तौभी सो जय अंततैं हमारा पराजयही है। काहेतैं जिन भीष्मद्रोणादिक बांधवोंकूं हनन करिकै हम अपणे जीवनमात्रकीभी इच्छा नहीं करते तौ तिन्होंकूं हननकरिकै हम विषयभोगोंकी इच्छा कैसे करेंगे किंतु नहीं करैंगे ते भीष्मद्रोणादिकही हम युद्धविषे मरैंगे या प्रकारका निश्चय करिकै हमारे सम्मुख स्थित हुए हैं । ऐसे प्रिय बांधवोंकूं नाश करिकै जो जय होणा है सो जयभी पराजयरूपही है यातैं भिक्षाअन्नके भोजनतैं इस युद्धविषे श्रेष्ठता नहीं है इति। इहां किसी टीकाकारनैं (न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो) या प्रथम पादका यह अर्थ कथन करा है । हमारे मध्यविषे कौन सेना अधिक है या वार्त्ताकूं हम जानते नहीं सो यह अर्थ संभवता नहीं। काहेतैं इस श्लोकतैं आगले श्लोकविषे (पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः) या वचनकरिकै अर्जुननैं धर्मविषेही संशय दिखाया है । ता वचनके अनुसार इस श्लोकविषेभी भिक्षाअन्न और युद्ध या दोनों धर्मोंविषेही अर्जुनका संशय संभवै है । सेनाकी अधिकताविषे संशय संभवै नहीं । किंवा (न चैतद्विद्मः) या वचन करिकै जो सेनाके अधिकताका संशय अंगीकार करिये तौ ता सेनाके अधिकताके संशयकरिकैही जयका संशय सिद्ध होइ सकै है । यातैं (यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः) या द्वितीयपादकरिकै कथन करा जो जयका संशय है सो व्यर्थ होवैगा या कारणतैं प्रथम व्याख्यानही बहुत टीकाकारोंकूं संमत है ॥ ६ ॥

इहां पूर्वग्रंथकरिकै संसारके दोषोंका निरूपण करा ताकरिकै अधिकारी पुरुषके विशेषण कथन करे। तहां (न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ३१ इस वचनविषे रणविषे मरणकूं प्राप्त हुए शूरवीरकूं योगयुक्त संन्यासियोंके समान योगक्षेमकी प्राप्ति कथन करी ता कहणेकरिकै "अन्यत् श्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयः" या कठवल्ली श्रुतिकरिकै सिद्ध मोक्षरूप श्रेयका कथन करा ता मोक्षरूप श्रेयतैं इतर पदार्थोंविषे अर्थतैं अश्रेयरूपता कथन करी ता कहणेकरिकै नित्यअनित्य वस्तुका विवेक दिखाया । और (न कांक्षे विजयं कृष्ण) ३२ इस श्लोक करिकै इस लोकके विषयजन्य सुखतैं वैराग्य दिखाया । और (अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः) ३५ या वचनकरिकै स्वर्गादिक लोकोंके विषयजन्य सुखतैं वैराग्य दिखाया । और (नरके नियतं वासो भवति) ४४ या वचनकरिकै या स्थूल शरीरतैं भिन्न करिकै आत्माका स्वरूप दिखाया । और (किं नो राज्येन गोविंद) ३२ या वचन करिकै मनका निग्रहरूप शम दिखाया । और (किं भोगैर्जीवितेन वा) ३२ या वचनकरिकै इंद्रियोंका निग्रहरूप दम दिखाया । और (यद्यप्येते न पश्यंति) ३८ या वचनकरिकै निर्लोभता दिखाई । और (तन्मे क्षेमतरं भवेत्) ४६ या वचनकरिकै तितिक्षा दिखाई । इस प्रकार या गती शास्त्रके प्रथम अध्यायका अर्थ संन्यासके साधनोंको सूचन करै है । और इस द्वितीय अध्यायविषे तौ (श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके) ५ या वचनकरिकै भिक्षाअन्नके भोजनकरिकै उपलक्षित संन्यासका निरूपण करा । अब ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवास्तै श्रुतिनैं कथन करा जो ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप शिष्यका गमन है ताका निरूपण करैं हैं काहेतैं जिस पुरुषनैं संसारके सर्व दोषोंकूं जान्या है तथा जो पुरुष इस लोकके तथा परलोकके विषयजन्य सुखोंतैं अत्यंत वैराग्यकूं प्राप्त भया है तिसतैं अनंतर जो पुरुष विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके शरणकूं प्राप्त भया है ऐसे साधनसंपन्न पुरुषकूंही ब्रह्मविद्याके ग्रहण करणेका अधिकार है । तहां पूर्वग्रंथविषे भीष्मद्रोणादिकोंके संकटके वशतैं "व्युत्थायाऽथ भिक्षाचर्यं चरंति" या श्रुतिकरिकै सिद्ध भिक्षाचर्याविषे अर्जुनकी अभिलाषा दिखाई अब विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप अर्जुनका गमनभी तिन भीष्मद्रोणादिकोंके संकटके व्याजकरिकैही निरूपण करैं हैं-

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि
मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः । पृच्छामि । त्वाम् । धर्मसंमूढचेताः । यत् । श्रेयः । स्यात् । निश्चितम् । ब्रूहि । तत् । मे । शिष्यः । ते । अहम् । शाधि । माम् । त्वाम् । प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! कार्पण्यदोषकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त हुआ है स्वभाव जिसका तथा धर्मविषयक संशयकरिकै व्याप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसा मैं अर्जुन तुम्हारेप्रति श्रेय पूछता हूं यातैं जो निश्चित श्रेय होवै सो हमारेप्रति कथन करो मैं तुम्हारा शिष्य हूं यातैं तुम्हारे शरणकूं प्राप्त हुए हमारेकूं आप शिक्षा करो ॥ ७ ॥

भा० टी०—इस लोकविषे जो पुरुष यत्किंचित् धनकी हानिकूंभी नहीं सहारि सकै है ता पुरुषकूं कृपण कहैं हैं ता कृपण पुरुषके समान होणेतैं मोक्षरूप पुरुषार्थकी प्राप्तितैं रहित सर्व अनात्मवेत्ता अज्ञानी पुरुष कृपण हैं । तहां श्रुति । "यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः" । अर्थ यह—हे गार्गि, अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै जो पुरुष इस अक्षर आत्माकूं न जानिकरिकै इस लोकतैं जावै है सो अज्ञानी पुरुष कृपणही है इति । तहां स्मृति । " कृपणोऽजितेंद्रियः " । अर्थ यह—जिस पुरुषनैं अपणे इन्द्रियोंकूं नहीं जीत्या है सो पुरुष कृपणही है इति । इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणतैं अज्ञानी पुरुषोंविषेही कृपणरूपता सिद्ध होवै है । ऐसे कृपण पुरुषोंविषे रहणेहारा जो देहादिक अनात्मपदार्थोंका अध्यास है ता अध्यासका नाम कार्पण्य है ता कार्पण्यकरिकै उत्पन्न भया जो इस जन्मविषे यहही हमारे बांधव हैं तिन्हके नाश हुए हम जीविकरिकै क्या करैंगे या प्रकारका अभिनिवेशरूप ममतालक्षणदोष है ता दोषकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त हुआ है युद्धका उद्यमरूप स्वभाव जिसका ऐसा जो मैं अर्जुन हूं । तथा धर्मविषे निर्णय करणेहारे प्रमाणके अदर्शनतैं क्या इन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणाही हमारा धर्म है । अथवा इन भीष्मादिकोंका पालन करणा हमारा धर्म है तथा क्या पृथिवीका परिपालन करणा

हमारा धर्म है अथवा पूर्व प्राप्त वनविषे निवासही हमारा धर्म है इत्यादिक अनेक संशयोंकारिकै व्याप्त है चित्त जिसका ऐसा जो मैं अर्जुन हूं सो मैं अर्जुन तुम्हारेप्रति अपणा श्रेय पूछता हूं। यातैं जो परमपुरुषार्थरूप श्रेय एकांतिकरूप तथा आत्यंतिकरूप निश्चयकारिकै होवै सो श्रेय आप हमारे प्रति कथन करो। तहां स्वसाधनोंतैं अनंतर अवश्यभावीपणेका नाम एकांतिकपणा है। और एकवार उत्पन्न हुएका पुनः कदाचितभी नाश नहीं होणा याका नाम आत्यंतिकपणा है। जैसे लोकविषे औषधके किये हुए कदाचित् रोगकी निवृत्ति नहींभी होवै है। और जो कदाचित् ता औषधकारिकै रोगकी निवृत्ति होवैभी है तौभी पुनः रोगकी उत्पत्ति करिकै सा रोगकी निवृत्ति नाश होइ जावै है। इस प्रकार यागके किये हुएभी किसी प्रतिबंधके वशतैं स्वर्गकी प्राप्ति नहींभी होवै है। और ता यागकरिकै प्राप्त हुआभी स्वर्ग दुःखकारिकै मिश्रितही होवै है। तथा नाशकूं प्राप्त होवै है। यातैं रोगकी निवृत्तिविषे तथा स्वर्गकी प्राप्तिविषे सो एकांतिकपणा तथा आत्यंतिकपणा संभवता नहीं। और ब्रह्मात्मसाक्षात्कारतैं अनंतर सो परमपुरुषार्थरूप श्रेय अवश्यकारिकै प्राप्त होवै है। यातैं ता श्रेयविषे एकांतिकपणाभी है। और एकवार प्राप्त हुआ सो श्रेय कदाचितभी नाशकूं प्राप्त होवै नहीं। यातैं ता श्रेयविषे आत्यंतिकपणाभी है ऐसे श्रेयका हमारेप्रति उपदेश करो। शंका–हे अर्जुन! श्रुतिविषे यह कह्या है। "नापुत्रायाशिष्याय वै पुनः"। अर्थ यह– जो पुरुष पुत्रभावतैं तथा शिष्यभावतैं रहित होवै ता पुरुषके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करणा इति। और तूं तौ हमारा सखा है। हमारा शिष्य तूं है नहीं। यातैं तुम्हारे प्रति मैं कैसे श्रेयका उपदेश करौं। ऐसी भगवानकी शंकाके हुए अर्जुन कहै है (शिष्यस्तेहमिति) हे भगवन्! आपकी शिक्षाके योग्य होणेतैं मैं आपका शिष्यही हूं मैं आपका सखा नहीं हूं काहेतैं समानज्ञानवाले पुरुषोंकाही परस्पर सखाभाव होवै है न्यून अधिक ज्ञानवाले पुरुषोंका परस्पर सखाभाव होवै नहीं। और मैं तुम्हारी अपेक्षाकारिकै अत्यंत न्यूनज्ञानवाला हूं। यातैं मैं आपका सखा नहीं हूं किंतु शिष्य हूं यातैं तुम्हारे शरणकूं प्राप्त हुआ जो मैं हूं तिस मैं शिष्यकूं आप कृपा करिकै श्रेयका उपदेश करो। शिष्यभावतैं रहितपणेकी शंकाकारिकै आप हमारी उपेक्षा मत करौ। इतनेकारिकै ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप शिष्यके गमनकूं बोधन करणेहारी इन दोनों श्रुतियोंका

अर्थ निरूपण करा ते दोनों श्रुति यह हैं । " तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्स-मित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् इति भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति" ॥ अर्थ यह—ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै यह अधिकारी पुरुष अपणे हस्तोंविषे समिदादिक भेटकूं लेकरिकै श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै इति । और वरुणका पुत्र भृगुऋषि ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै अपणे वरुणपि-ताके समीप जाता भया तहां जाइकै हे भगवन् ! हमारेप्रति ब्रह्मका उपदेश करौ या प्रकारका प्रश्न करता भया इति । यह वरुणभृगुका संवाद आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं इति ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! तूं सर्व शास्त्रोंका वेत्ता पंडित है यातैं तूं आपही श्रेयका विचार कर तूं हमारा शिष्य किसवासतै होता है ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है—

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रि-याणाम् ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) नहि । प्रपश्यामि । मम । अपनुद्यात् । यत् । शोकम् । उच्छोषणम् । इंद्रियाणाम् । अवाप्य । भूमौ । असपत्नम् । ऋद्धम् । राज्यम् । सुराणाम् । अपि । च । आधिपत्यम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जो श्रेय हमारे इंद्रियोंके संताप करणेहारे शोककूं निवृत्त करै तिस श्रेयकूं मैं नहीं देखताहूं इस भूमिविषे शत्रुवोंतैं रहित तथा धनधान्यकरिकै युक्त राज्यकूं प्राप्त होइकै तथा देवतावोंके अधिपतिपणेकूं भी प्राप्त होइकै मैं ता श्रेयकूं नहीं देखता हूं ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! जो श्रेय प्राप्त होइकै हमारे शोकके निवृत्त करै ता श्रेयकूं मैं जानता नहीं या कारणतैं हमारे प्रति आप ता श्रेयका उपदेश करो । इतने कहणेकरिकै अर्जुननैं या श्रुतिका अर्थ सूचन करा " सोहं भगवः शोचामि तं मां भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु इति " । अर्थ यह—हे भगवन् ! सनत्कुमार आत्मवेत्ता पुरुष शोककूं तरै है यह वार्ता हमनै आपसरीखे विद्वान् पुरुषोंके मुखतैं श्रवण करी है । और मैं नारद तौ शोककूं प्राप्त होता हूं यातैं मैं आत्म-

वेत्ता नहीं हूं । ऐसे मैं नारदकूं आप शोकके पारकूं प्राप्त करौ । तात्पर्य यह । ब्रह्मविद्याका उपदेश करिकै हमारे शोककूं आप नाश करो इति । यह सनत्कुमार-नारदका संवाद आत्मपुराणके त्रयोदश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । शंका—हे अर्जुन ! ता शोकके नहीं निवृत्त हुएभी तुम्हारी क्या हानि है । ऐसी भगवान्की शंकाकरिकै अर्जुन ता शोकका विशेषण कहै है (इंद्रियाणामुच्छोषणमिति) हे भगवन् ! सो शोक सर्व कालविषे हमारे इंद्रियोंकूं संतापकी प्राप्ति करणेहारा है ऐसे शोकके विद्यमान हुए हमारी महान् हानि है यातैं ता शोककी निवृत्ति अवश्य करी चाहिये । शंका—हे अर्जुन ! जो तूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होवैगा तौ तुम्हारे शोककी निवृत्ति अवश्य करिकै होवैगी । तहां इस युद्धविषे जो तुम्हारा जय होवैगा तौ राज्यकी प्राप्तिकरिकै तुम्हारे शोककी निवृत्ति होवैगी और जो तूं युद्धविषे मृत्युकूं प्राप्त होवैगा तौ स्वर्गकी प्राप्तिकरिकै तुम्हारे शोककी निवृत्ति होवैगी । यातैं इस युद्धकूं छोडिकै शोकके निवृत्तिवासतै तूं दूसरा उपाय किसवासतै खोजता है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है । (अवाप्य भूमाविति) हे भगवन् ! या भूमिविषे शत्रुवोंतैं रहित तथा धनधान्यादिक पदार्थोंकरिकै युक्त ऐसे राज्यकूं प्राप्त होइकै तथा इंद्रतैं आदि लैके हिरण्यगर्भपर्यंत सर्व देवतावोंके ऐश्वर्यकूं प्राप्त होइकै जो कदाचित् मैं स्थित होवौं तौभी जो श्रेय हमारे शोककूं निवृत्तकरणेहारा है ता श्रेयकूं मैं देखता नहीं यातैं सो शोकके निवृत्तकरणेहारा श्रेय इस युद्धतैं कोई भिन्नही है । तात्पर्य यह । इस लोकके विषयभोगोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयभोगोंविषे श्रुतिप्रमाणकरिकै तथा युक्तिरूप अनुमानप्रमाणकरिकै अनित्यताही सिद्ध होवै है । यातैं तिन अनित्य भोगोंतैं शोककी निवृत्ति संभवै नहीं उलटा ते भोग तीन काल-विषे या पुरुषकूं शोककीही प्राप्ति करैं हैं । तहां न प्राप्त हुए ते भोग अपणी इच्छाकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करै हैं । और प्राप्तिकालविषे ते भोग पराधीनताकरिकै तथा नाशके भयकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करैं हैं। और अपणे नाशकालविषे ते भोग वियोगकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करैं हैं। ऐसे शोकके करणेहारे अनित्य भोगोंकरिकै शोककी निवृत्ति संभवै नहीं । तहां श्रुति—"तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्रपुण्यजितो लोकः क्षीयते" इति । अर्थ यह—जैसे कर्मकरिकै प्राप्त होणेतैं इस लोकके पदार्थ नाशकूं प्राप्त

होवैं हैं तैसे पुण्यकर्मकरिकै प्राप्त होणेतैं स्वर्गादिक लोकोंके पदार्थभी नाशकूं प्राप्त होवैं हैं इति । या श्रुतिकरिकै सर्व भोगोंविषे अनित्यताही सिद्ध होवै है । और इस लोकके तथा परलोकके सर्व पदार्थ अनित्य होणेकूं योग्य हैं । कार्य होणेतैं जो जो कार्य होवै है सो सो अनित्यही होवै है । जैसे प्रसिद्ध घटादिक पदार्थ हैं या प्रकारके अनुमानरूप युक्तिकरिकैभी तिन सर्व भोगोंविषे अनित्यताही सिद्ध होवै है । और इस लोकके पदार्थोंका नाश तौ सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्षही प्रतीत होवै है । ऐसे अनित्य पदार्थोंकी प्राप्तिकरिकै शोककी निवृत्ति संभवै नहीं यातैं शोककी निवृत्तिवासतै हमारेकूं युद्ध करणा योग्य नहीं है । इतनेकरिकै इस लोक परलोकके भोगोंका वैराग्य अधिकारीका विशेषणरूप करिकै वर्णन करा ॥ ८ ॥

हे संजय ! इस प्रकारके वचनोंकूं कहिकरिकै सो अर्जुन क्या करता भया ऐसी धृतराष्ट्रकी आकांक्षाके हुए संजय कहै है—

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ॥
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्त्वा । हृषीकेशम् । गुडाकेशः । परंतपः । न । योत्स्ये । इति । गोविंदम् । उक्त्वा । तूष्णीम् । बभूव । ह ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! शत्रुवोंकूं संताप करणेहारा तथा निद्रांकूं जीतणेहारा अर्जुन हृषीकेश भगवानूके प्रति इस प्रकारके वचन कहिकरिकै अंतविषे मैं नहीं युद्ध करौंगा या प्रकारका वचन ता गोविंदके प्रति कथन करिकै तूष्णींभावकूं प्राप्त होता भया ॥ ९ ॥

भा० टी०—गुडाका नाम निद्राका है ता निद्राकूं जो अपणे वश करै है ताकूं गुडाकेश कहै हैं । दूसरे गुडाकेश शब्दके अर्थ प्रथम अध्यायविषे कथन करि आये हैं । ऐसे निद्रारूप आलस्यतैं रहित तथा अपणे शत्रुवोंकूं संतापकी प्राप्ति करणेहारा जो अर्जुन है सो अर्जुन हृषीक नामा इंद्रियोंके प्रवर्त्तक अंतर्यामी कृष्णभगवानूके प्रति ते पूर्व उक्त वचन कहिकरिकै अंतविषे मैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके साथि कदाचित्भी युद्ध नहीं करौंगा । या प्रकारका वचन ता गोविंदके प्रति कहिकरिकै तूष्णींभावकूं प्राप्त होता भया । इहां गोविंद शब्दका या

प्रकारका अर्थ शास्त्रविषे कथन करा है । गोभिर्वेदांतवाक्यैरेव विंदते लभ्यते इति गोविंदः । अर्थ यह–गोशब्द "तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादिक वेदांतवाक्योंका वाचक है । तिन वेदांत वाक्योंकरिकैही जो प्राप्त होवै ताकूं गोविंद कहै हैं । अथवा "गां वेदलक्षणां वाणीं विंदतीति गोविंदः" अर्थ यह–ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण या चारि वेदरूप वाणीकूं जो भली प्रकारतैं जाने है ताकूं गोविंद कहै हैं । इतने कहणेकरिकै सर्व वेदोंके उपादानकारणत्वरूपकरिकै कृष्णभगवान्‌विषे सर्वज्ञता सूचन करी । और इसश्लोकके आदिविषे (एवमुक्त्वा) या वचनकरिकै सो अर्जुन (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकरिकै युद्धके स्वरूपकी अयोग्यता कथन करता भया । और तिसतैं अनंतर (न योत्स्ये) या वचनकरिकै सो अर्जुन ता युद्धके फलके अभावकूं कथन करता भया । तिसतैं अनंतर सो अर्जुन तूष्णींभावकूं प्राप्त होता भया । तात्पर्य यह । युद्ध करणेवासतै अर्जुननैं जो पूर्व नेत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका दशनादिरूप व्यापार करा था ता सर्व व्यापारकी निवृत्तिकरिकै विर्व्यापार होता भया । यहही अर्जुनका तूष्णींभाव जानणा केवल वाणीमात्रका निरोध तूष्णींभाव नहीं जानणा । इहां (बभूव ह) या वचनविषे स्थित जो हशब्द है, ता हशब्दकरिकै यह अर्थ सूचन करा स्वभावतैंही आलस्यतैं रहित तथा सर्व शत्रुओंकूं संताप करणेहारा जो अर्जुन है तिस अर्जुनविषे आगंतुक आलस्य तथा शत्रुओंका अतापकत्व कदाचित्भी नहीं रहि सकैगा इति । और सर्वज्ञातकूं सूचन करणेहारा जो गोविंदपद है तथा सर्वशक्तिसंपन्नताकूं सूचन-करणेहारा जो हृषीकेश पद है तिन दोनों पदोंकरिकै ता कृष्णभगवान्‌विषे अर्जुनके शोकमोहकी निवृत्ति करणेमें आयासका अभाव सूचन करा । तात्पर्य यह । सर्व शक्तिसंपन्न सर्वज्ञ कृष्णभगवान्‌कूं अत्यंत अल्प शोकमोहकी निवृत्ति करणेविषे क्या परिश्रम होवै है ॥ ९ ॥

तहां युद्धकी उपेक्षावान् अर्जुनकी भगवान्‌नैंभी उपेक्षाही करी होवैगी या प्रकारकी जो धृतराष्ट्रकी दुराशा है ता दुराशाके निवृत्त करणेवासतै सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति युद्धविषे अर्जुनकी उपेक्षा देखिकरिकैभी सो कृष्णभगवान् ता अर्जुनकी उपेक्षा नहीं करता भया या प्रकारका वचन कहैं–

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) तम् । उवाच । हृषीकेशः । प्रहसन् । इव । भारत । सेनयोः । उभयोः । मध्ये । विषीदंतम् । इदम् । वचः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! सो कृष्णभगवान् दोनों सेनावोंके मध्यविषे विषादकूं प्राप्त हुए तिस अर्जुनके प्रति प्रहास करते हुएकी न्याईं यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ १० ॥

भा० टी०—हे भरतवंशविषे उत्पन्न हुआ धृतराष्ट्र ! पूर्वयुद्धका उद्यम करिकै दोनों सेनावोंके मध्यविषे आइकै ता उद्यमके विरोधी मोहरूप विषादकूं प्राप्त भया जो अर्जुन है ता अर्जुनका सो अनुचित आचरण प्रगट करिकै लज्जारूप समुद्रविषे डुबावते हुएकी न्याई सो अंतर्यामी भगवान् ता अर्जुनके प्रति परम गंभीर है अर्थ जिसका तथा अनुचित आचरणकूं प्रकाश करणेहारा जो 'अशोच्यान्' इत्यादिक वक्ष्यमाण वचन है ता वचनकूं कहता भया। इहां (प्रहसन्निव) या वचनविषे स्थित जो (इव) यह शब्द है ताका यह अभिप्राय है । अन्य पुरुषका अनुचित आचरण प्रगट करिकै ताकी लज्जाकूं उत्पन्न करणा याका नाम प्रहास है। और सा लज्जा दुःखरूपही होवै है यातैं जो पुरुष जिस पुरुषके द्वेषका विषय होवै है, सो पुरुषही तिस पुरुषके प्रहासका मुख्य विषय होवै है । और अर्जुन तौ भगवान्के द्वेषका विषय है नहीं किंतु सो अर्जुन भगवान्के कृपाका विषय है और अर्जुनके अनुचित आचरणका जो प्रकाश करणा है सोभी ता अर्जुनकी लज्जाके उत्पत्तिका हेतु नहीं है किंतु सो अनुचित आचरणका प्रकाश ता अर्जुनके विवेकके उत्पत्तिका हेतु है यातैं अर्जुनविषे सो प्रहास गौण है मुख्य नहीं । तात्पर्य यह । जैसे कोई पुरुष अपणे शत्रुके लज्जाकी उत्पत्ति करणे वासतै ताके अनुचित आचरणका प्रकाश करै है तैसे सो श्रीकृष्णभगवान्भी अर्जुनके विवेककी उत्पत्ति करणेवासतै ता अर्जुनके अनुचित आचरणकूं प्रकाश करता भया। और लज्जाकी उत्पति तौ अनुचित आचरणके प्रकाशतैं अनंतर अवश्यही होवै है यातैं सा लज्जा-की उत्पत्ति होवो अथवा नहीं होवो परंतु ता लज्जाकी उत्पत्ति करणेविषे भगवा-न्का तात्पर्य नहीं है केवल विवेककी उत्पत्तिविषेही भगवान्का तात्पर्य है । या सर्व अर्थका इव शब्दकरिकै सूचन करा । और (सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतं) यह जो अर्जुनका विशेषण कह्या है ताका यह अभिप्राय है, युद्धके आरंभतैं पूर्वही अपणे गृहविषे स्थित हुआ तूं जो कदाचित् युद्धकी उपेक्षा करता तौ यह तुम्हारा

अनुचित आचरण नहीं कह्या जाता । परंतु तूं तौ महान् उत्साहपूर्वक इस युद्धभूमिविषे आइकै इस युद्धकी उपेक्षा करता भया है यातैं यह तुम्हारा बहुत अनुचित आचरण कह्या जावै है इति । यह वार्त्ता 'अशोच्यान्' इत्यादिक वचनोंविषे आगे स्पष्ट होवैगी ॥ १० ॥

तहां अर्जुनकी युद्धरूप स्वधर्मविषे पूर्वस्वभावतैं उत्पन्न हुईभी प्रवृत्ति दो प्रकारके मोहकरिकै तथा ता मोहजन्य शोककरिकै प्रतिबद्ध होती भई । यातैं पुनः ता युद्धरूप स्वधर्मविषे अर्जुनकी प्रवृत्ति करावणेवासतै ता अर्जुनका सो दो प्रकारका मोह अवश्यकरिकै दूर करणेकूं योग्य है तहां सर्व संसारधर्मौतैं रहित स्वप्रकाश परमानंदस्वरूप आत्माविषे स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर तिन दोनों शरीरोंका कारणरूप अविद्या या तीनों उपाधियोंके अविवेककरिकै जो मिथ्यारूप संसारविषे सत्यत्व तथा आत्मधर्मत्व आदिक प्रतीति हैं सो प्रथम मोह है सो मोह सर्व प्राणिमात्रविषे रहै है यातैं सो मोह साधारण है । और युद्धरूप स्वधर्मविषे हिंसादिकोंकी बाहुल्यताकरिकै जो अधर्मत्वकी प्रतीति है सो दूसरा मोह है । यह दूसरा मोह करुणादिक दोषकरिकै केवल अर्जुनकूंही प्राप्त भया है यातैं दूसरा मोह असाधारण है । तहां स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन उपाधियोंके विवेककरिकै प्राप्त भया जो शुद्ध आत्मस्वरूपका बोध है सो बोध प्रथम मोहका निवर्त्तक है यातैं सो बोध सर्व प्राणीमात्रकूं साधारण है । और युद्धविषे यद्यपि हिंसादिक होवैं हैं तथापि सो युद्ध क्षत्रिय राजावोंका स्वधर्म है यातैं ता युद्धविषे अधर्मरूपता नहीं है या प्रकारका जो बोध है सो बोध दूसरे मोहका निवर्त्तक है । यह दूसरा बोध केवल अर्जुनके प्रतिही है यातैं यह दूसरा बोध असाधारण है । इस प्रकार दो प्रकारके बोधकरिकै जबी दो प्रकारके मोहकी निवृत्ति होवै है तबी ता मोहरूप कारणके निवृत्त हुएतैं अनंतर ताके शोकरूप कार्यकी आपही निवृत्ति होइ जावै है । ता शोककी निवृत्तिविषे किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा होवै नहीं । या प्रकारके अभिप्रायकरिकै सो श्रीकृष्णभगवान् ता दोनों प्रकारके मोहका कथन करता हुआ ता अर्जुनके प्रति कहै है—

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अशोच्यान् । अन्वशोचः । त्वम् । प्रज्ञावादान् । च । भाषसे । गतासून् । अगतासून् । च । न । अनुशोचंति । पंडिताः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शोक करणेके अयोग्य भीष्मद्रोणादिकोंकूं तूं शोक करता है तथा बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकै नहीं कहणे योग्य वचनोंकूं तूं कथन करता है और पंडित पुरुष तौ प्राणोंतैं रहित बांधवोंकूं तथा प्राणयुक्त बांधवोंकूं नहीं शोक करते ॥ ११ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! आत्मदृष्टिकारिकै तथा शरीरदृष्टिकारिकै शोक करणेके योग्य नहीं जो यह भीष्मद्रोणादिक हैं तिन्होंका तूं पंडित होइकैभी शोक करता है ते भीष्मद्रोणादिक हमारे निमित्त मृत्युकूं प्राप्त होते हैं। तिन भीष्मद्रोणादिकोंतैं विना मैं राज्यसुखादिकोंकूं क्या करौंगा या प्रकारका शोक (दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण) इत्यादिक वचनोंकरिकै तूं करता भया है सो शोक करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । काहेतैं शोक करणेके अयोग्य पदार्थोंविषे शोचत्वबुद्धिरूप भ्रम पशु पक्षी आदिक सर्व प्राणिमात्रविषे साधारण है और तूं तौ अत्यंत पंडित होइकैभी तिस भ्रमकूं प्राप्त भया है यातैं तुम्हारेकूं यह भ्रम होणा अत्यंत अनुचित है । और (कुतस्त्वा कश्मलमिदं) इत्यादिक मेरे वचनोंकारिकै तुम्हारेकूं यह हमनैं बहुत अनुचित करा है याप्रकारके विचारकी प्राप्ति होणी चाहती थी और तूं आपभी बुद्धिमान् है ऐसा बुद्धिमान् हुआभी तूं बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकै नहीं कहणे योग्य (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकूं कथन करता है परन्तु लज्जाकरिकै तूष्णीं भावकूं तूं प्राप्त होता नहीं इसतैं परे दूसरा क्या अनुचित व्यवहार होवैहै यातैं युद्धतैं निवृत्तिरूप अधर्मविषे जो धर्मत्व बुद्धिरूप भ्रांति है तथा युद्धरूप धर्मविषे जो अधर्मत्वबुद्धिरूप भ्रांति है सा असाधारण भ्रांति तैं अत्यंत पंडितकूं उचित नहीं है। अथवा (प्रज्ञावादांश्च भाषसे) या वचनका यह अर्थ करणा देहतैं भिन्न करिकै आत्माकूं जानणेहारे जो प्रज्ञावान् पुरुष हैं तिन प्रज्ञावान् पुरुषोंके (नरके नियतं वासः पतंति पितरो ह्येषां) इत्यादिक वचनमात्रोंकूंही तूं कथन करता है परन्तु तिन प्रज्ञावान् पुरुषोंकी न्याईं तिन वचनोंके यथार्थ तात्पर्यकूं तूं जाणता नहीं । जो तूं शास्त्रके वचनोंका यथार्थ तात्पर्य जाणता तौ तूं शोकमोहकूं प्राप्त नहीं होता । शंका—हे भगवन् ! वसिष्ठादिक जो महान् पुरुष हुए हैं तिनोंनैंभी अपणे पुत्रादिक बांधवोंके मरणेकरिकै महान् शोक करा है यातैं अपणे बांधवोंके मरणेविषे शोक

करणा अनुचित नहीं है किंतु शिष्टाचारकरिकै प्राप्त होणेतैं सो शोक करणा उचित है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए भगवान् कहैं हैं। (गतासूनिति) हे अर्जुन! विचारकरिकै उत्पन्न भया है आत्माके वास्तव स्वरूपका ज्ञान जिन्होंकूं ऐसे जो पंडित हैं ते पंडित पुरुष प्राणोंतैं रहित बांधवोंके शरीरोंका तथा प्राणयुक्त बांधवोंके शरीरोंका शोक करते नहीं। तात्पर्य यह। मृत्युके प्राप्त हुए यह हमारे बांधव सर्व पदार्थोंका परित्याग करिकै जाते भये हैं ते हमारे बांधव अबी क्या करते होवैंगे तथा किस स्थानविषे स्थित होवैंगे। और यह जीवते हुए हमारे बांधव तिन मरे हुए संबंधियोंके वियोगकरिकै कैसे जीवैंगे। या प्रकारके व्यामोहकूं ते पंडित पुरुष प्राप्त होते नहीं काहेतैं तिन ब्रह्मवेत्ता पंडित पुरुषोंकूं समाधिकालविषे तौ तिन बांधवोंकी प्रतीतिही नहीं होवै है और समाधितैं उत्थानकालविषे यद्यपि तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं बांधवोंकी प्रतीति होवै है तथापि ते ब्रह्मवेत्ता पुरुष ता व्युत्थानकालविषे तिन बांधवोंकूं मिथ्यारूप करिकै निश्चय करैं हैं। और जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके साक्षात्कारकरिकै सर्पभ्रमके निवृत्त हुएतैं अनंतर ता सर्पभ्रमजन्य भयकंपादिक आपही निवृत्त होइ जावैं हैं। और जैसे पित्तदोषयुक्त रसनइंद्रियवाले पुरुषकूं कदाचित् गुडविषे तिक्त रसकी प्रतीति हुएभी ता गुडविषे मधुररसके निश्चयकूं बलवान् होणेतैं तिक्त रसकी इच्छा करिकै ता पुरुषकी गुडविषे प्रवृत्ति होवै नहीं तैसे शोकके अविषय पदार्थोंविषे जो शोचत्वबुद्धिरूप भ्रम है सो भ्रमभी अधिष्ठान आत्माके अज्ञानकरिकै करा हुआ है। जबी अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता अज्ञानकी निवृत्ति होवै है तबी ता अज्ञानका कार्यरूप शोचत्वभ्रम आपही निवृत्ति होइ जावै है। और वसिष्ठादिक महान् पुरुषोंनैं प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं जो शोकमोहादिक करे हैं ते शोकमोहादिक शिष्टाचाररूप करिकै ग्रहण करे जावैं नहीं। काहेतैं शिष्ट पुरुषनैं धर्मबुद्धिकरिकै अनुष्ठान करा जो अलौकिक व्यवहार है सोईही शिष्टाचार कह्या जावै है। यह शिष्टाचारका लक्षण तिन वसिष्ठादिकोंके शोकमोहादिकोंविषे घटता नहीं काहेत ते शोकमोहादिक पशुपक्षी आदिक सर्व प्राणियोंविषे स्वभावतैंही प्राप्त हैं यातैं तिन्होंविषे अलौकिकरूपता संभवै नहीं और तिन वसिष्ठादिकोंनैं कोई धर्मबुद्धि करिकै शोकमोहादिक करे नहीं यातैं तिन शोकमोहादिकोंविषे शिष्टाचाररूपता संभवै नहीं। और या प्रकारके शिष्टाचारके लक्षणका परित्याग करिकै जो सामान्यतैं

शिष्ट पुरुषोंके व्यवहारमात्रकूंही प्रमाण मानिये तो शिष्ट पुरुषोंकी जो मलमूत्रादिकोंका परित्यागरूप स्वाभाविक चेष्टा है सा स्वाभाविक चेष्टाभी शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करी चाहिये । और ता स्वाभाविक चेष्टाकूं कोईभी बुद्धिमान् पुरुष शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करता नहीं यातैं वसिष्ठादिकोंके शोकमोहकूं देखि करिकै तुम्हारेकूं शोकमोह करणा योग्य नहीं है ॥ ११ ॥

अब (नत्वेवाहं) इत्यादिक ओगणीस १९ श्लोकोंकरिकै (अशोच्यानन्वशोचस्त्वं) इस वचनका अर्थ विस्तारतैं निरूपण करैं हैं । और तिसवैं अनंतर (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इत्यादिक अष्ट श्लोकोंकरिकैं (प्रज्ञावादांश्च भाषसे) इस वचनका अर्थ विस्तारतैं निरूपण करैंगे काहेतैं साधारण असाधारण यह पूर्व उक्त दो प्रकारका मोह भिन्न भिन्न प्रयत्नकरिकैही निवृत्त होवै है एक प्रयत्नकरिकै निवृत्त होवैं नहीं । तहां स्थूल शरीरतैं आत्माका भेद सिद्ध करणेवासतै प्रथम आत्माविषे नित्यत्व सिद्ध करैं हैं–

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ॥
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) न[५] । तु । एव । अहम्[१] । जातु[२] । न[३] । आसम्[४] । न[५] । त्वम्[६] । न[७] । इमे[८] । जनाधिपाः[१०] । न[११] । च[१२] । एव । न[१७] । भविष्यामः[१८] । सर्वे[१६] । वयम्[१५] । अतः[१३] । परम्[१४] ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं कृष्ण भगवान्[१] इसतैं पूर्व[२] कदाचितभी नहीं[३] होता[४] भया हूं यह[५] नहीं कह्या जावै है तथा तूं अर्जुन[६] इसतैं पूर्व कदाचितभी नहीं[७] होता भया है यहभी नहीं कह्या जावै है । तथा यह सर्व[१०] राजे इसतैं पूर्व कदाचितभी नहीं होते भये हैं यहभी[११] नहीं कह्या जावै है किंतु मैं तूं यह सर्व राजे पूर्व होतेही भये हैं तथा[१२] इसतैं[१३] आगे[१४] हम[१५] सर्व[१६] नहीं[१७] होवैंगे[१८] यहभी नहीं कह्या जावै है किंतु हम सर्व आगेभी होवैंगे ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जैसे सर्व जगतका कारण मैं कृष्णभगवान् इसतैं पूर्व कदाचितभी नहीं होता भया हूं यह कह्या जावै नहीं किंतु इसतैं पूर्वभी मैं होता भया हूं तैसे तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं पूर्व कदाचितभी नहीं होते भये हैं यह कह्या जावै नहीं किंतु तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं पूर्वभी होते भये हैं । इतने कहणेकारिकै आत्मा-

विषे प्रागभावका अप्रतियोगीपणा दिखाया । और मैं कृष्णभगवान् तथा तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं आगे कदाचित्भी नहीं होवैंगे यह कह्या जावै नहीं किंतु इसतैं आगेभी हम सर्व होवैंगेही । इतने कहणेकरिकै आत्माविषे प्रध्वंसाभावका अप्रतियोगीपणा दिखाया या कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध भया भूतकालविषे तथा भविष्यत् कालविषे तथा वर्त्तमानकालविषे जो विद्यमान होवै है ताकूं नित्य कहैं हैं यह नित्यका लक्षण आत्माविषेही घटै है । या स्थूल देहविषे घटता नहीं यातैं यह आत्माही नित्य होणेतैं यह आत्मा स्थूल शरीरतैं विलक्षणही सिद्ध होवै है । इसी विलक्षणताकूं (नत्वेवाहं) या वचनविषे स्थित तु या शब्दकरिकै सूचन करा है इति ॥ १२॥

हे भगवन् ! चेतनता धर्मकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूल देह है सो स्थूल देहही आत्मा है या प्रकार चार्वाक नास्तिक मानैं हैं । या स्थूल देहकूं आत्मा मानणेमैं तिन्होंके मतविषे मैं स्थूल हूं मैं गौर हूं मैं चलता हूं इत्यादिक ज्ञानोंकी प्रामाण्यताभी बाधतैं रहित सिद्ध होवै है । या देहतैं जो आत्माकूं भिन्न मानिये तौ यह सर्व ज्ञान अप्रमारूप होवैंगे यातैं या स्थूल देहतैं आत्मा भिन्न नहीं है किंतु स्थूलत्व गौरत्व आदिक धर्मोंवाला यह स्थूल देहही आत्मा है किंवा या स्थूल शरीरतैं जो आत्माकूं भिन्नभी अंगीकार करिये तौभी ता आत्माविषे जन्ममरणका अभाव संभवै नहीं काहेतैं देवदत्तनामा पुरुष जन्मकूं प्राप्त भया है तथा देवदत्तनामा पुरुष मरणकूं प्राप्त भया है या प्रकारकी प्रतीति सर्व जनोंकूं होवै है यातैं देहके जन्मसाथि आत्माकाभी जन्म संभवै है तथा देहके मरणसाथि आत्माकाभी मरण संभवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) देहिनः[२]। अस्मिन्[३]। यथा[१]। देहे[४]। कौमारम्[५]। यौवनम्[६]। जरा[७]। तथा[८]। देहांतरप्राप्तिः[१०]। धीरः[११]। तत्र[९]। न[१२]। मुह्यति[१३] ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे[१] देही[२] आत्माकूं इस देहविषे कौमार यौवन जरा यह तीन अवस्था प्राप्त होवैं हैं तैसे दूसरे देहकीभी प्राप्ति होवै है तिसविषे धीर[११] पुरुष[१२] नहीं मोहकूं प्राप्त होवै है ॥ १३ ॥

भा॰ टी॰–भूत, भविष्यत, वर्त्तमान या तीन कालोंविषे स्थित जितनेक जगत्मंडलवर्त्ती देह हैं ते सब देह जिसके होवैं ताकूं देही कहैं हैं सो एकही देही आत्मा विभु होणेतैं सर्व देहोंके साथि संबंधवाळा है, यातैं वा एक चेतन आत्माकरिकैही सर्व शरीरोंविषे नाना प्रकारकी चेष्टा सिद्ध होइ सकैं हैं। देह देह-विषे आत्माके भेद मानणेमैं किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है। या अर्थके सूचन करणेवासतैही (देहिनः) या पदविषे एकवचनका कथन करा है। और पूर्वश्लो-कविषे जो (सर्वे वयं) यह बहुवचन कथन करा था ता बहुवचनका शरीरोंके भेदविषे तात्पर्य है कोई आत्माके भेदविषे ता बहुवचनका तात्पर्य नहीं है यातैं पूर्वउत्तर वचनोंका विरोध होवै नहीं। ऐसे एक देही आत्माके जैसे इस वर्त्तमान स्थूलदेहविषे बाल्य अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था यह परस्पर विरुद्ध तीन अवस्था होवैं हैं तिन बाल्यादिक तीन अवस्थावोंके भेदकरिकै ता देही आत्माका भेद होवै नहीं काहेतैं जो मैं पूर्व बाल्य अवस्थाविषे अपणे माता-पिताकूं अनुभव करता भया हूं सोइही मैं अबी वृद्ध अवस्थाविषे अपणे पुत्र पौत्रा-दिकोंका अनुभव करता हूं। या प्रत्यभिज्ञाज्ञानके बलतैं बाल्य अवस्थाके आत्माका तथा वृद्ध अवस्थाके आत्माका अभेदही सिद्ध होवै है। और बाल्य अवस्थाके शरीरका तथा वृद्ध अवस्थाके शरीरका भेद तौ सर्वकूं प्रत्यक्षही प्रतीत होवै है यातैं देहके भेदकरिकै आत्माका भेद होवै नहीं। इसी प्रकार जन्मादिक विकारोंतैं रहित आत्माकूं इस शरीरतैं अत्यन्त विलक्षण शरीरकी प्राप्ति स्वप्नविषे तथा योगके प्रभावजन्य ऐश्वर्यविषे होवै है। तहां तिस तिस देहोंके भेदकी प्रतीति हुएभी सोईही मैं हूं या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानके बलतैं आत्माकी एकताही सिद्ध होवै है। जो कदाचित् यह स्थूल देहही आत्मा होवै तौ बाल्ययौवनादिक अवस्थावोंके भेदकरिकै देहके भेद सिद्धहुए सोई मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान नहीं होणा चाहिये। काहेतैं अन्यविषे रहे हुए संस्कार अन्य पुरुषके प्रत्यभिज्ञाज्ञानके कारण होवैं नहीं किंतु एक अधिकरणविषे वर्त्तमान हुए संस्कारोंका तथा प्रत्यभिज्ञाज्ञानका परस्पर कारणकार्यभाव होवै है। किंवा बाल्य, यौवन, वृद्ध या तीन अवस्थावोंके भेद हुएभी तीन अवस्थारूप धर्मोंका आश्रय जो देह है सो देह बाल्य अवस्थातैं लैके वृद्ध अवस्थापर्यंत एकही रहै है ता देहकी एकताकूंही सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै है। आत्माके एकताकूं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै नहीं। या

प्रकारका वचन जो सो चार्वाकादिकोंका है सो संभवै नहीं काहेतैं स्वप्नविषे जाग्रत्के देहतैं भिन्नही देह होवै है । और योगके प्रभावतैं योगी पुरुष अनेक देहोंकूं रचे है । तहां धर्मीरूप देहोंकाही भेद है यातैं तहां सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान नहीं होणा चाहिये । और सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौ स्वप्नद्रष्टा पुरुषकूं तथा योगी पुरुषकूंभी होवै है यातैं देहोंकी एकताकूं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै नहीं । इसी अभिप्रायकरिकै बाल्यादिक अवस्था तथा स्वप्नद्रष्टा योगी पुरुषके देह यह दो प्रकारके दृष्टांत दिये हैं यातैं जैसे मरुमरीचिकादिकोंविषे जलादिकोंकी बुद्धि भ्रांतिरूप होवै है तैसे मैं स्थूल हूं मैं गौर हूं मैं चलता हूं इत्यादिक बुद्धियांभी भ्रांतिरूपही हैं काहेतैं अधिष्ठान वस्तुके ज्ञानतैं तिन दोनों बुद्धियोंका बाध होइ जावै है । जिसका अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै बाध होवै है सो भ्रांतिही होवै है । यह वार्त्ता (न जायते) इत्यादिक वचनोंविषे आगे स्पष्ट होवैगी । इतने कहणेकरिकै देहतैं भिन्न हुआभी आत्मा ता देहके उत्पन्न हुए ता देहके साथि उत्पन्न होवै है तथा देहके नाश हुए ता देहके साथि नाश होवै है यह वादीका पक्षभी खंडन हुआ जानणा काहेतैं ता पक्षविषे यद्यपि बाल्य यौवनादिक अवस्थावोंके भेद हुएभी सोईही मै हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञानधर्मीरूप देहकी एकताकूं लैके संभव होइ सके है तथापि जिस स्वप्नविषे तथा योग जन्य ऐश्वर्यविषे धर्मीरूप देहोंकाही भेद होवै है । तिस स्थलविषे सोईही मैं हूं इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान ता वादीके मतविषे नहीं संभवैगा । और तहांभी सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौ होवै है यातैं देहके उत्पत्तिनाशके साथि आत्माका उत्पत्तिनाश मानणा अत्यंत विरुद्ध है । अथवा । (देहिनोस्मिन्) या श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । जैसे जन्मादिक विकारोंतैं रहित एकही आत्माकूं कौमारादिक तीन अवस्थावोंकी प्राप्ति होवै है तैसे इस देहतैं प्राणोंके उत्क्रमणतैं अनंतर दूसरे देहकी प्राप्ति होवै है । तहां जैसे बाल्यादिक अवस्थावोंकी प्राप्तिकालविषे सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै है तैसे मरणतैं अनंतर दूसरे देहके प्राप्त हुए सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै नहीं यातैं सोईही मैं हूं या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानकरिकै यद्यपि तहां पूर्व उत्तर देहोंविषे आत्माकी एकता सिद्ध होवै नहीं तथापि युक्तिकरिकै तहां आत्माकी एकता सिद्ध होइ सकै है । सा युक्ति यह है माताके उदरतैं बाहिर निकस्या हुआ जो बालक है तिस बालककूं इसी कालविषे

हर्ष, शोक, भय आदिकोंकी प्राप्ति होवै है तिन हर्षशोकादिकोंकी प्राप्तिविषे दूसरा तौ कोई कारण संभवता नहीं किंतु केवल पूर्वजन्मके संस्कारही तिन हर्षशोकादिकोंके कारण हैं। जो कदाचित् पूर्वजन्मके संस्कार नहीं अंगीकार करिये तौ माताके उदरतैं बाहिर निकस्या जो बालक है ता बालककी उसी कालविषे माताके स्तन्यपानादिकोंविषे प्रवृत्ति होवै है सा नहीं होणी चाहिये काहेतैं चेतन प्राणियोंकी जो जो प्रवृत्ति होवै है सा सा प्रवृत्ति यह वस्तु हमारे इष्टका साधन है या प्रकारके इष्टसाधनताज्ञानकरिकै जन्य होवै है। इष्टसाधनताज्ञानतैं विना कोईभी प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं बालककी जो माताके स्तन्यपानविषे प्रथम प्रवृत्ति है ता प्रवृत्तितैं पूर्व यह स्तन्यपान हमारे इष्टका साधन है या प्रकारका इष्टसाधनताज्ञान ता बालककूं अवश्य मान्या चाहिये। और ता जन्मकालविषे ता बालककूं सो इष्टसाधनताज्ञान अनुभवरूप तौ संभवता नहीं किंतु सो इष्टसाधनताज्ञान स्मृतिरूप मानणा होवैगा। और जो जो स्मृतिरूप ज्ञान होवै है सो सो पूर्व अनुभवजन्य संस्कारोंतैंही होवै है संस्कारोंतैं विना स्मृतिज्ञान होवै नहीं। यातैं ता बालककूं पूर्वजन्मोंविषे यह माताका स्तन्यपान हमारे क्षुधाकी निवृत्तिरूप इष्टका साधन है या प्रकारका अनुभव बहुतवार हुआ है तिन अनुभवजन्य संस्कारोंतैंही ता बालककूं जन्मकालविषे सो स्मरणरूप इष्टसाधनताज्ञान होवै है। यह अंगीकार करणा होवैगा। और ते संस्कारभी अनुद्बुद्ध हुए स्मृतिज्ञानकूं उत्पन्न करैं नहीं किंतु उद्बुद्ध हुएही ते संस्कार स्मृतिज्ञानकूं उत्पन्न करैं हैं। जो अनुद्बुद्ध संस्कारोंतैंभी वस्तुकी स्मृति होती होवै तौ सर्वकालविषे ता वस्तुकी स्मृती होणी चाहिये। यातैं जन्मकालविषे ता बालकके पूर्वजन्मके संस्कारोंका उद्बोधन करणेहारा पुण्यपापरूप अदृष्टतैं विना दूसरा कोई संभवता नहीं। किंतु जिन पूर्वजन्मोंके पुण्यपापरूप अदृष्टोंनैं यह वर्त्तमान शरीर दिया है। ते पुण्यपापरूप अदृष्टही ता जन्मकालविषे पूर्वजन्मके संस्कारोंकूं उद्बुद्ध करैं हैं। और ते पूर्वजन्मके संस्कार तथा पुण्यपापरूप अदृष्ट आत्मारूप आश्रयतैं विना स्वतंत्र रहैं नहीं यातैं पूर्वजन्मविषे आत्माकी विद्यमानता अंगीकार करी चाहिये। या प्रकारकी युक्तिकरिकैही पूर्व उत्तर शरीरविषे आत्माकी एकता सिद्ध होवै है इति। अथवा। (देहिनोस्मिन्) या श्लोकका यह तीसरा अर्थ करणा—जैसे तैं एकही देह आत्माका क्रमतैं देहके बाल्यादिक अवस्थावोंकी उत्पत्ति विनाश हुएभी नित्य होणेतैं भेद

नहीं होवै है तैसे विभु होणेतैं एकही आत्माकूं एकही कालविषे सर्व देहोंकी प्राप्ति होवै है तहां आत्माकूं जो देहादिकोंकी न्याई मध्यम परिमाणवाला मानियैं तौ आत्माविषे देहादिकोंकी न्याई अनित्यता प्राप्त होवैगी। और आत्माकूं जो अणुपरिमाणवाला मानियैं तौ सर्व शरीरविषे व्यापक सुखदुःखकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये तिन दोनों दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै आत्माकूं विभु मान्या चाहिये। और सर्व शरीरोंविषे 'अहम् अस्मि अहम् अस्मि' या प्रकारकी एकाकर प्रतीति देखणेविषे आवै है। यातैं सर्व शरीरोंविषे तूं एकही आत्मा व्यापक है। इस प्रकार सर्व शरीरोंविषे आत्माकी एकताके सिद्ध हुएभी यह भीष्मद्रोणादिक वध्य हैं और मैं अर्जुन इन्होंका घातक हूं या प्रकारकी भेदकल्पनाकूं करिकै जो तूं मोहकूं प्राप्त भया है ताकेविषे तुम्हारा अविद्वान्‌पणा ही हेतु है। और जो विद्वान् पुरुष सर्व शरीरोंविषे आत्माकी एकताकूं जानैं हैं ते विद्वान् धीर पुरुष ताकेविषे मोहकूं प्राप्त होवैं नहीं। काहेतैं मैं इन्होंका हनन करणेहारा हूं और हमारेकारिकै यह हनन होवैंगे या प्रकारका भेददर्शन ता विद्वान् पुरुषकूं होता नहीं। या कहणेकरिकै भगवान्‌नैं यह अनुमान सूचन करा वादियोंके विवादका विषयरूप जो यह भीष्मद्रोणादिक सर्व देह हैं ते सर्व देह एक भोक्ता आत्मावाले हैं देहत्व धर्मवाले होणेतैं तुम्हारे बाल्ययौवनादिक देहोंकी न्याई, इति। तहां श्रुतिभी कहै है। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा इति" अर्थ यह—एकही आत्मादेव सर्वभूतप्राणियोंविषे व्यापक है तथा काष्ठोंविषे अग्निकी न्याई गुह्य है। तथा सर्वभूतप्राणियोंका अंतरआत्मा है इति। इतने कहणेकरिकै आत्माविषे नित्यपणा तथा विभुपणा सिद्ध करा ताकरिकै इतने मत खंडन करे तहां चार्वाक नास्तिक तौ या स्थूल देहकूंही आत्मा मानैं हैं। और तिन चार्वाकोंके एकदेशियोंविषे कोईक तौ इंद्रियोंकूंही आत्मा मानैं हैं और कोईक मनकूंही आत्मा मानैं हैं और कोईक प्राणोंकूंही आत्मा मानैं हैं। और सौगत तौ क्षणिक विज्ञानकूंही आत्मा मानैं हैं। और दिगंबर तौ देहतैं भिन्न तथा स्थिर स्वभाववाला तथा देहके समान परिमाणवाला आत्माकूं मानैं हैं। और मध्यम परिमाणवालेविषे नित्यता संभवै नहीं यातैं नित्य तथा अणुपरिमाणवाला आत्मा है या प्रकार दिगंबरोंके एकदेशी मानैं हैं। सिद्धांतमैं आत्माकूं नित्य तथा विभु माननेविषे ते सर्व मत खंडन होइ जावैं हैं इति ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! आत्मा नित्य है तथा विभु है या अर्थविषे तौ हम विवाद करते नहीं परंतु सर्व देहोंविषे आत्मा एक है या अर्थकूं हम नहीं सहारि सकते हैं कांहेतैं बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार या नव गुणोंवाला नित्य विभु आत्मा होवै है सो आत्मा शरीर शरीरविषे भिन्न भिन्न होवै है या प्रकार वैशेषिक अंगीकार करैं हैं। इसीही पक्षकूं दूसरे तार्किक, मीमांसक आदिकभी अंगीकार करैं हैं । और आत्माकूं निर्गुण मानणेहारे सांख्यशास्त्रवाले तौ आत्मा सुखदुःखादिक गुणोंवाला है या अर्थविषे यद्यपि विवाद करैं हैं तथापि शरीर शरीरविषे आत्मा भिन्न भिन्न है या अर्थविषे ते सांख्यशास्त्रवालेभी विवाद करते नहीं। जो कदाचित् सर्व शरीरोंविषे एकही आत्मा अंगीकार करिये तौ एक शरीरविषे सुखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे सुखकी प्राप्ति होणी चाहिये तथा एक शरीरविषे दुःखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे दुःखकी प्राप्ति होणी चाहिये । और एक शरीरविषे सुखदुःखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे सुखदुःखकी प्राप्ति देखणेविषे आवती नहीं यातैं शरीर शरीरविषे भिन्न भिन्न आत्मा मान्या चाहिये। इस प्रकार आत्माके भेद सिद्ध हुए भीष्मद्रोणादिकोंतैं भिन्न मैं आत्मा यद्यपि नित्य हूं तथा विभु हूं तथापि मैं आत्मा सुखदुःखादिक गुणोंवाला हूं यातैं तिन भीष्मद्रोणादिक बांधवोंके देहके नाश हुए हमारेविषे सुखका वियोग तथा दुःखका संबंध अवश्यकरिकै होवैगा यातैं हमारेकूं शोक मोह करणा अनुचित नहीं है किंतु उचित है । इस प्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकी शंकाकरिकै सो श्रीभगवान् लिंगदेहके विवेक करणेवासतै कहै हैं—

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४॥

(पदच्छेदः) मात्रास्पर्शाः । तु । कौंतेय । शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनः । अनित्याः । तान् । तितिक्षस्व । भारत ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे कुंतीके पुत्र हे भरतवंशविषे उत्पन्न हुआ अर्जुन ! अनियतस्वभाववाले जो इंद्रियोंके विषयोंके साथि संबंध हैं ते उत्पत्तिनाशवान् अंतःकरणकूंही शीतउष्णकी प्राप्तिद्वारा सुखदुःखकी प्राप्ति करणेहारे हैं तिन्होंकूं तूं सहन कर ॥ १४ ॥

भा० टी०–जिन्होंकरिकै विषय जाने जावैं हैं तिन्होंका नाम मात्रा है ऐसे नेत्रादिक इंद्रिय हैं । नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकैही रूपादिक विषय जाने जावैं हैं तिन नेत्रादिक इंद्रियोंके जे रूपादिक विषयोंके साथि यथायोग्य संबंध हैं तिन्होंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै जन्य जो तिस तिस विषयाकार अंतःकरणका परिणामरूप वृत्तियां हैं तिन्होंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा कौषीतकिउपनिषद्विषे वागादिक दश इंद्रियोंकूं प्रज्ञामात्रा कहा है और नामादिक दश विषयोंकूं भूतमात्रा कहा है तिन वागादिक दश इंद्रियोंका तथा नामादिक दश विषयोंका इहां मात्राशब्दकरिकै ग्रहण करणा । तिन इंद्रियविषयरूप मात्रावोंके जो परस्पर विषयविषयीभावसंबंध हैं तिन्होंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा मात्रा यह तृतीयाविभक्त्यंत प्रमाताका वाचक भिन्न पद जानणा । ता प्रमाताके साथि जो विषय इंद्रियोंके संबंध हैं तिनोंका नाम मात्रास्पर्श है । और आगम नाम उत्पत्तिका है । और अपाय नाम नाशका है सो आगम तथा अपाय जिसका होवै ताका नाम आगमापायी है । ऐसे आगमापायी अंतःकरणकूंही ते मात्रास्पर्श शीतउष्णादिकोंकी प्राप्तिद्वारा सुखदुःखकी प्राप्ति करैं हैं । सर्वत्र व्यापक नित्य आत्माकूं ते मात्रास्पर्श सुखदुःखकी प्राप्ति करैं नहीं काहेतैं सो नित्य आत्मा निर्गुण है तथा निर्विकार है । तहां श्रुति । "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" । अर्थ यह–यह आत्मादेव सर्वका साक्षी है तथा चेतन है तथा अद्वितीय है तथा निर्गुण है तथा निष्क्रिय है इति । ऐसे निर्विकार नित्य आत्माकूं अनित्य अंतःकरणके सुखदुःखादिक धर्मोंकी आश्रयता संभवै नहीं काहेतैं धर्म और धर्मी या दोनोंका अभेदही होवै है अभेदतैं विना दूसरा कोई तिन्होंका संबंध संभवता नहीं सो नित्यअनित्यका अभेद कहणा अत्यंत विरुद्ध है यातैं ते सुखदुःखादिक आत्माके धर्म नहीं हैं । और सुखदुःखादिरूप साक्ष्य पदार्थोंविषे साक्षी आत्माका धर्मपणा कदाचितभी संभवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । सुखदुःखादिक धर्मोंका आश्रय केवल अंतःकरणही है आत्मा तिन सुखदुःखादिक धर्मोंका आश्रय नहीं है । सो अंतःकरण शरीरशरीरविषे भिन्न भिन्न है ता अंतःकरणके भेदकूं अंगीकार करिकैही कोई सुखी है कोई दुःखी है इत्यादिक व्यवस्था संभव होइ सकैं हैं यातैं सुखदुःखादिकोंकी व्यवस्थाके अनुपपत्तितैं शरीरशरीरविषे आत्माका भेद मानणा अत्यंत असंगत है । किंवा

सर्व जगत्का प्रकाश करणेहारा तथा जन्मादिक विंकारोंतैं रहित जो आत्मा है सो आत्मा सतरूप करिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै सर्व पदार्थोंविषे अनुगत हुआ प्रतीत होवै है यातैं ता सत्तास्फुरणरूप आत्माके भेदविषे कोईभी प्रमाण नहीं है उलटा "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" इत्यादिक अनेक श्रुतियां आत्माके अभेदविषेही प्रमाण हैं। किंवा। सुखदुःखादिकोंकी उत्पत्तिविषे अंतःकरणकूं कारणता है। यह वार्त्ता नैयायिकोंकूं तथा सिद्धांतीकूं दोनोंकूं अंगीकार है। तहां नैयायिक तौ मनरूप अन्तःकरणकूं सुखदुःखादिक धर्मोंका निमित्तकारण मानैं हैं। और आत्माकूं सुखदुःखादिकोंका समवायिकारण मानैं हैं। और सिद्धांत विषे अंतःकरणकूंही सुखदुःखादिकोंका उपादानकारण मान्या है। तहां "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" इत्यादिक श्रुतियोंनैं आत्माकूं निर्गुण कह्या है यातैं निर्गुण आत्माविषे गुणकी समवायिकारणता कहणी श्रुतितैं विरुद्ध है। और अंतःकरणतैं विना दूसरे किसी पदार्थविषे सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणता संभवै नहीं। और निमित्तकारणताकी अपेक्षा करिकै समवायिकारणता श्रेष्ठभी होवै है यातैं नैयायिकोंनैंभी अंतःकरणकूंही सुखदुखादिकोंका समवायिकारण मान्या चाहिये। किंवा। केवल युक्तिकरिकैही अंतःकरणविषे सुखदुःखादिक धर्मोंकी उपादानकारणता सिद्ध नहीं है। किंतु श्रुतिप्रमाणकरिकैभी सिद्ध है। तहां श्रुति। "कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीभीरित्येतत्सर्वं मन एवेति"। अर्थ यह—इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, वृत्तिज्ञान, भय यह सर्व मनरूपही हैं इति। यह श्रुति कामादिक विकारोंका मनके साथि अभेद कथन करती हुई मनकूं तिन कामादिक विकारोंका उपादानकारणत्व कथन करै है। ता श्रुतिविषे कामादिक विकार सुखदुःखादिक धर्मोंकेभी उपलक्षक हैं। और आत्माकूं तौ स्वप्रकाशज्ञान आनंदरूपताकरिकै अनेक श्रुतियोंनैं कथन करा है। यातैं आत्माकूं तिन सुखदुःखादिक धर्मोंकी आश्रयता संभवै नहीं यातैं नैयायिकादिकोंनैं जो आत्माविषे विकारीपणा तथा भेद अंगीकार करा है सो केवल भ्रांतिकरिकै अंगीकार करा है हे अर्जुन! आगमापायी होणेतैं तथा दृश्य होणेतैं नित्य द्रष्टा आत्मातैं भिन्न जो यह अंतःकरण है ता अंतःकरणविषे सुखदुःखकी उत्पत्ति करणेहारे जो मात्रास्पर्श हैं ते मात्रास्पर्श नियतस्वभाववाले नहीं हैं किंतु अनियतस्वभाववाले हैं

काहेतैं एक कालविषे सुखकूं उत्पन्न करणेहारे जो शीतउष्णादिक हैं तेही शीतउष्णादिक अन्यकालविषे दुःखकूंही उत्पन्न करैं हैं। इसी प्रकार किसी कालविषे दुःखकूं उत्पन्न करणेहारे जो शीतउष्णादिक हैं तेही शीतउष्णादिक अन्यकालविषे सुखकूंही उत्पन्न करैं हैं। यातैं ते मात्रास्पर्श अनियत स्वभाववाले हैं। इहां शीतउष्णका ग्रहण आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक या तीन प्रकारके सुखदुःखके ग्रहणकाभी उपलक्षक है। तहां ज्वरादिक व्याधियोंकरिकै अंतःकरणविषे उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आध्यात्मिक दुःख कहैं हैं। और सिंहसर्पादिक भूतोंकरिकै उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आधिभौतिक दुःख कहैं हैं। और जल अग्नि ग्रहादिकोंकरिकै उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आधिदैविक दुःख कहैं हैं। इस प्रकार सुखकेभी तीन भेद जानि लेणे। यातैं हे अर्जुन! अत्यंत अस्थिर स्वभाववाले तथा ते निर्विकार आत्मातैं भिन्न विकारी अंतःकरणकूं सुखदुःखकी प्राप्ति करणेहारे ऐसे जो भीष्मद्रोणादिकोंके संयोगवियोगरूप मात्रास्पर्श हैं तिन मात्रास्पर्शोंकूं तूं सहन कर। तात्पर्यय ह। यह मात्रास्पर्श मैं अविकारी आत्माकी किंचित्मात्रभी हानि करते नहीं। या प्रकारके विवेककरिकै तूं तिन मात्रास्पर्शोंकी उपेक्षा कर। दुःखादिक धर्मवाले अंतःकरणके तादात्म्य अध्यास करिकै तूं अपणे आत्माकूं दुःखी मत मान यहही तिन मात्रास्पर्शोंका सहन है। इहां (हे कौंतेय हे भारत) या दोनों संबोधनोंकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा मातृकुल तथा पितृकुल या दोनों कुलोंकरिकै अत्यंत शुद्ध जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेकूं या प्रकारका अज्ञान उचित नहीं है इति। और किसी टीकाविषे (आगमापायिनः) यह विशेषण मात्रास्पर्शोंकाही कथन करा है। आगमापायी होणेतैं ते मात्रास्पर्श अनित्य हैं या प्रकार ताका अर्थ करा है। परंतु इस व्याख्यानविषे (शीतोष्णसुखदुःखदाः) या वचनकरिकै कथन करी जो सुखदुःखकी प्राप्ति सा सुखदुःखकी प्राप्ति ते मात्रास्पर्श किसकूं करैं हैं या प्रकारकी जिज्ञासाके हुए अंतःकरणकूं सुखदुःखकी प्राप्ति करैं हैं या प्रकारके अर्थतैं अंतःकरणका ग्रहण होवै है। और पूर्व व्याख्यानविषे (आगमापायिनः) यह शब्द अंतःकरणकाही वाचक है यातैं ता शब्दतैंही अंतःकरणकी प्राप्ति है॥ १४ ॥

हे भगवन्! अंतःकरणकूं जो सुखदुःखका आश्रय अंगीकार करोगे तौ तिस अंतःकरणकूंही कर्ताभोक्तापणेकी प्राप्तिकरिकै चेतनरूपता अंगीकार करणी

होवैगी । ता अंतःकरणकूंही जबी चेतनरूपता सिद्ध हुई तबी ता अंतःकरणतैं भिन्न तथा ता अंतःकरणकूं प्रकाश करणेहारे भोक्ता आत्माविषे कोई प्रमाण है नहीं यातैं केवल नाममात्रविषे विवाद सिद्ध होवैगा तिन नामोंके अर्थविषे कोई विवद होवैगा नहीं । किसी वादीनैं जिसकूं अंतःकरण नामकरिकै कथन करा । किसी वादीनैं तिसकूं आत्मा नामकरिकै कथन करा । और ता अंतःकरणतैं भिन्न जो चेतन आत्मा अंगीकार करोगे तौ वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकार करी जो बंधमोक्ष दोनोंकी समानाधिकरणता है सा सिद्ध नहीं होवैगी किंतु ता बंधमोक्षका भिन्न भिन्न अधिकरण सिद्ध होवैगा । तहां सुखदुःखका आश्रय होणेतैं अंतःकरण तौ बंधका अधिकरण होवैगा और ता अंतःकरणतैं भिन्न आत्मा मोक्षका अधिकरण होवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् कहैं हैं—

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) यम् । हि । न । व्यथयंति । एते । पुरुषम् । पुरुषर्षभ । समदुःखसुखम् । धीरम् । सः । अमृतत्वाय । कल्पते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे पुरुषोंविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! समान हैं दुःखसुख जिसकूं ऐसे जिस धीर पुरुषकूं यह मात्रास्पर्श जिस कारणतैं नहीं व्यथा करते तिस कारणतैं सो धीर पुरुष मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति" । अर्थ यह—स्वप्न अवस्थाविषे सूर्यादिक ज्योतियोंके अभाव हुए यह आत्मा पुरुषही स्वयंज्योति है इति । या श्रुतिप्रमाणतैं स्वप्रकाशरूपकरिकै सिद्ध जो चेतन आत्माहै सो चेतन आत्मा अपणे परिपूर्णरूपकरिकै सर्वशरीररूप पुरियोंविषे निवास करैहै याकारणतैं श्रुतिभगवती ता चेतन आत्माकूं पुरुष या नामकरिकै कथन करै है । अथवा अष्ट पुरोंविषे जो निवास करैहै ताका नाम पुरुष है ते अष्टपुर यह हैं । श्लोक—"कर्मेंद्रियाणि खलु पंच तथा पराणि ज्ञानेन्द्रियाणि मनआदिचतुष्टयं च॥ प्राणादिपंचकमथो वियदादिकं च कामश्च कर्म च तमः पुनरष्टमी पूः"इति । अर्थ यह—वागादिक पंच कर्मइंद्रिय १ तथा श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय २ तथा मनआदिक अंतःकरणचारि ३ तथा प्राणादिक पंचप्राण ४ तथा आकाशादिक पंचभूत ५ तथा काम ६ तथा कर्म ७ तथा तम ८ या अष्टोंका

नाम पुर है। इहां तम शब्दकरिकै कारणअज्ञान ग्रहण करणा इति। तहां श्रुति। "स वायं पुरुषः सर्वासु पूर्षु परिवाशयः" अर्थ यह—यह चेतन आत्मा शरीरादिरूप सर्व पुरियोंविषे निवास करता हुआ पुरुषसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है इति। ऐसे स्वयंज्योति आत्माकूं अनात्म अंतःकरणके धर्मरूपकरिकै तथा दृश्यरूपकरिकै यह दुःखसुख समान नहीं हैं या कारणतैं ता आत्माकूं समदुःखसुख कहैं हैं। इहां दुःखसुखका ग्रहण पूर्व उक्त अंतःकरणके कामसंकल्पादिक सर्व धर्मोंका उपलक्षक है। तहां श्रुति। "एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान्"। अर्थ यह—ब्रह्मरूप ब्राह्मणका यह नित्य महिमा है जो पुण्यकर्मकरिकै सुखरूप वृद्धिकूं नहीं प्राप्त होवै है। और पापकर्मकरिकै दुःखरूप कनिष्ठताकूं नहीं प्राप्त होवै है इति। या श्रुतिनैं आत्माविषे सुख दुःख दोनों धर्मोंका निषेध करा है ताकरिकै कामसंकल्पादिक सर्व धर्मोंका निषेधभी जानि लेणा। और सो स्वयंज्योति आत्मा अपणे चिदाभासद्वारा बुद्धिके साथि तादात्म्य अध्यासकूं प्राप्त होइकै ता बुद्धिकूं शुभ अशुभ कार्यविषे प्रेरणा करै है यातैं ता बुद्धिके प्रेरक साक्षी आत्माकूं धीर या नामकरिकै कथन करैं हैं। "धियमीरयतीति धीरः इति"। तहां श्रुति। "सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति"। अर्थ यह—बुद्धिरूप उपाधिवाला यह आत्मादेव स्वप्नकूं प्राप्त होइकै इस जाग्रत्का परित्याग करै है इति। इतने कहणेकरिकै आत्माविषे बंधकी प्रसक्ति दिखाई। जिस अधिकरणविषे जो वस्तु स्वभावतैं होवै नहीं तिस अधिकरणविषे तिस वस्तुका आरोप करण याका नाम प्रसक्ति है। यह वार्त्ता दूसरे शास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक। "यतो मानानि सिध्यंति जाग्रदादित्रयं तथा। भावाभावविभागश्च स ब्रह्मास्मीति बोध्यते"। अर्थ यह—जिस स्वयंज्योति आत्मातैं प्रत्यक्षादिक सर्व प्रमाण सिद्ध होवैं हैं तथा जाग्रदादिक तीन अवस्था सिद्ध होवैं हैं तथा यह भावपदार्थ है यह अभाव है इत्यादिक भेद सिद्ध होवैं हैं सो साक्षी आत्माही "ब्रह्मास्मि" इत्यादिक महावाक्योंनैं बोधन करा है इति। ऐसे सम दुःखसुख धीरपुरुषकूं पूर्व उक्त सुखदुःखके देणेहारे मात्रास्पर्श जिस कारणतैं वास्तवतैं व्यथाकी प्राप्ति करते नहीं काहेतैं सो स्वयंज्योति पुरुष सर्व विकारोंका प्रकाशक होणेतैं तिन विकारोंके योग्य नहीं है। तहां श्रुति। "सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्य इति"। अर्थ यह—जैसे सर्व लोकोंका चक्षु

जो सूर्यभगवान् है सो सूर्यभगवान् चक्षुके विषय बाह्य दोषोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं तैसे एक अद्वितीयरूप सर्व भूतोंका अंतरआत्मा बाह्य लोकदुःखोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं इति। इस कारणतैं सो धीर पुरुष अपणे स्वरूपभूत ब्रह्मात्माके एकताज्ञानकरिकै सर्व दुःखोंके उपदानकारणरूप अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक अद्वितीय स्वप्रकाश परमानन्दरूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवै है। जो कदाचित् यह स्वयंज्योति आत्मा आरोपित बंधका आश्रय नहीं होवै किंतु स्वाभाविक बंधका आश्रय होवै तौ धर्मीकी निवृत्तितैं विना स्वाभाविक धर्मोंकी निवृत्ति होवै नहीं। जैसे अग्निरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना ताके उष्णादिक स्वाभाविक धर्मोंकी निवृत्ति होवै नहीं तैसे आत्मारूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना ता स्वाभाविक बंधरूप धर्मकी कदाचित्भी निवृत्ति नहीं होवैगी। और आत्मा तौ नित्य है यातैं ता आत्माकी कदाचित्भी निवृत्ति संभवै नहीं यातैं आत्मा कदाचित्भी मुक्त नहीं होवैगा। यह वार्ता अन्य शास्त्रविषे भी कथन करी है। तहां श्लोक। "आत्मा कर्त्रादिरूपश्चेन्मा कांक्षीस्तर्हि मुक्तताम्। नहि स्वभावो भावानां व्यावर्तेतौष्णवद्रवेः"। अर्थ यह—आत्मा जो कदाचित् स्वभावतैंही कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूप बंधवाला होवै तौ हे शिष्य! तूं मुक्तपणेकी इच्छा मत कर काहेतैं भावपदार्थोंका जो स्वाभाविक धर्म होवै है सो धर्म ता भावपदार्थरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना कदाचितभी निवृत्त होवै नहीं। जैसे सूर्यका स्वाभाविक धर्म जो उष्णता है सो उष्णतारूप धर्म सूर्यरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना निवृत्त होवै नहीं इति। किंवा आत्माविषे स्वाभाविक बंधके अंगीकार किये किसीकूंभी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होवैगी। सो यह वार्ता "विमुक्तश्च विमुच्यते ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" इत्यादिक ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारी अनेक श्रुतियोंतैंभी विरुद्ध है। शंका—आत्माविषे जो कदाचित् स्वाभाविक बंध हम अंगीकार करैं तौ यह पूर्व उक्त दोष हमारेकूं प्राप्त होवै परंतु ता आत्माविषे सो बंध हम स्वाभाविक अंगीकार करते नहीं। किंतु ता आत्माविषे बुद्धि आदिक उपाधिकृत बंध है। तहां श्रुति। "आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः"। अर्थ यह—इंद्रियमनरूप उपाधिकरिकै युक्त आत्मा भोक्ता होवै है या प्रकार बुद्धिमान् पुरुष कथन करैं हैं इति। इस प्रकार आत्माविषे उपाधिकृत बंधके अंगीकार किये हुए आत्मारूप धर्मीके विद्यमान हुएभी ता औपाधिक बंधकी निवृत्ति करिकै मुक्तिकी प्राप्ति होइ सकै है।

समाधान–हे वादी ! या तुम्हारे कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है जो वस्तु अपणे धर्मोंकूं अन्य वस्तुविषे स्थितरूप करिकै प्रतीत करावै है ता वस्तुका नाम उपाधि है । जैसे रक्तवर्णवाला जपाकुसुम अपणे रक्तवर्णकूं समीपवर्ति स्फटिकमणिविषे स्थित रूपकरिकै प्रतीत करावै है यातैं ता जपाकुसुमकूं उपाधि कहैं हैं तैसे यह बुद्धि आदिकभी अपणे सुखदुःखादिक धर्मोंकूं आत्माविषे स्थितरूप करिकै प्रतीत करावै है यातैं यह बुद्धि आदिकभी उपाधि हैं । और जो धर्म उपाधिकृत होवै है सो धर्म असत्यही होवै है । जैसे जपाकुसुमरूप उपाधिकृत जो स्फटिकमणिविषे रक्तता है सा रक्तता असत्यही है तैसे बुद्धि आदिक उपाधिकृत जो आत्माविषे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक बंध है सो बंधभी असत्यही होवैगा । इस प्रकार बंधविषे औपाधिकता मानिकरिकै असत्यरूपताकूं अंगीकार करणेहारा तूं वादी हमारे सिद्धांतरूप मार्गविषेही प्राप्त भया है यातैं तूं हमारे अनुकूल है प्रतिकूल नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया वास्तवतैं कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक सर्व संसारधर्मोंके संबंधतैं रहित आत्माविषेभी अंतःकरणादिक उपाधिके वशतैं जो तिन संसारधर्मोंके संबंधकी प्रतीति है यहही आत्माविषे बंध है । और अपणे वास्तव स्वरूपके ज्ञान करिकै जबी अपणे स्वरूपके अज्ञानकी निवृत्ति होवै है तथा ता अज्ञानके कार्यरूप बुद्धि आदिक उपाधियोंकी निवृत्ति होवै है तथा ता उपाधिकृत सर्वभ्रमकी निवृत्ति होवै है तबी सर्व दृश्यप्रपंचके संबंधतैं रहित होणेतैं शुद्धरूप तथा स्वप्रकाश परमानंदरूपताकरिकै सर्वत्र परिपूर्णरूप जो आत्मा है ता आत्मादेवका स्वतःही कैवल्यरूप मोक्ष होवै है। यातैं बंध मोक्ष या दोनोंका भिन्न भिन्न अधिकरण नहीं है किंतु एकही आत्मा दोनोंका अधिकरण है । या कहणेतैं अंतःकरण आत्मा या प्रकारके नाममात्रविषेही विवाद है । तिन दोनों नामोंका अर्थ एकही है । यह जो पूर्ववादीनैं कहा था सोभी खंडन हुआ जानणा काहेतैं प्रकाश्य और प्रकाशक या दोनोंकी एकता संभवै नहीं । जैसे प्रकाश्य जो घटादिक पदार्थ हैं तथा प्रकाशक जो दीपकादिक हैं तिन दोनोंकी एकता संभवै नहीं तैसे प्रकाश्यरूप जो अंतःकरणादिक हैं तथा प्रकाशक जो साक्षी आत्मा है तिन दोनोंकीभी एकता संभवै नहीं किंतु प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशकतैं भिन्नही होवै है जो कदाचित् एकही पदार्थकूं प्रकाश्यरूप तथा प्रकाशकरूप मानिये तौ एकही पदार्थविषे प्रकाशरूप क्रियाका कर्तापणा तथा कर्मपणा प्राप्त होवैगा सो अत्यंत विरुद्ध

है। एकही वस्तुविषे एक क्रियानिरूपित कर्तापणा तथा कर्मपणा कहांभी देखणे-विषे आवता नहीं। शंका–एकही वस्तुविषे जो प्रकाश्यता तथा प्रकाशकता नहीं होवै तौ आत्माविषेभी सा प्रकाश्यता तथा प्रकाशकता कैसे संभवैगी। समाधान–स्वयंज्योति आत्माविषे हम केवल प्रकाशकताही अंगीकार करते हैं घटादिक पदार्थोंकी न्याईं आत्माविषे प्रकाश्यता हम अंगीकार करते नहीं। और आत्मा-विषे जो अंतःकरणादिकोंका प्रकाशकपणा है सो स्वप्रकाशज्ञानरूपतातैं भिन्न नहीं है किंतु सो प्रकाशकपणा स्वप्रकाश ज्ञानरूपताही है। ऐसा प्रकाशकपणा आत्मातैं भिन्न अंतःकरणादिकोंविषे संभवता नहीं। शंका–बुद्धिकी वृत्तियोंतैं भिन्न दूसरा कोई ज्ञान है नहीं यातैं बुद्धिकी वृत्तियांही ज्ञानरूप हैं। समाधान–ज्ञान सर्व देशविषे तथा सर्व कालविषे अनुगत है तथा भेद करणेहारे धर्मोंतैं रहित है यातैं सो ज्ञान विभु है तथा नित्य है तथा एक है। और बुद्धिका परि-णामरूप वृत्तियां तौ परिच्छिन्न हैं तथा अनित्य हैं तथा अनेक हैं। ऐसे विभु नित्य एक ज्ञानकूं परिच्छिन्न अनित्य अनेक वृत्तिरूपता संभवै नहीं। शंका–ज्ञानकूं जो नित्य तथा एक अंगीकार करौगे तौ हमारेविषे पूर्वला घटज्ञान नाश हुआ है और अबी पटज्ञान उत्पन्न भया है या प्रकारकी प्रतीति ज्ञानके उत्पत्ति-नाशकूं तथा भेदकूं विषय करणेहारी असंगत होवैगी। समाधान–सा प्रतीति ज्ञानके उत्पत्तिनाशकूं विषय करती नहीं किंतु ता साक्षीआत्मारूप ज्ञानका जो घटादिक विषयोंके साथि वृत्तिद्वारा संबंध है ता संबंधके उत्पत्तिनाशादि-कोंकूं सा प्रतीति विषय करै है। जो ऐसा नहीं अंगीकार करिये तौ तिस तिस ज्ञानकी उत्पत्ति तथा नाश तथा भेद आदिकोंकी कल्पना करणेविषे अत्यंत गौर-वदोषकी प्राप्ति होवैगी यातैं सो साक्षी आत्मारूप ज्ञान नित्य है तथा विभु है तथा एक अद्वितीयरूप है। तहां श्रुति। "नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविना-शित्वात् आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः महदद्भुतमनंतमपारं विज्ञानघन एव तदेव ब्रह्म-पूर्वमनपरमनंतरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्मसर्वानुभूरिति"। अर्थ यह–द्रष्टा आत्माका स्वरूपभूत जो ज्ञानरूप दृष्टि सा दृष्टि नाशतैं रहित है यातैं ता दृष्टिका किसी अवस्थाविषे अभाव होवै नहीं। और यह ज्ञानस्वरूप आत्मा आकाशकी न्याईं सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है। और यह ज्ञानस्वरूप आत्मा महान्‌रूप है तथा अनंत है तथा अपार है तथा विज्ञानघन है। और यह ज्ञानस्वरूप ब्रह्म कारणतैं

रहित है तथा कार्यतैं रहित तथा अंतरपणेतैं रहित है तथा बाह्यपणेतैं रहित है यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ब्रह्मरूप है इति। इत्यादिक अनेक श्रुतियां आत्माकूं विभु, नित्य प्रकाश ज्ञान स्वरूपकरिकै कथन करै हैं। इतने कहणेकरिकै अविद्यारूप कारणउपाधितैंभी आत्माका भेद सिद्ध हुआ यातैं यह अर्थ सिद्ध भया स्थूलसूक्ष्म-कारणरूप असत्य उपाधियोंकरिकै करा हुआ जो आत्माविषे बंधभ्रम है ता बंधभ्रमकी जबी आत्माके ज्ञानकरिकै निवृत्ति होवै है तबी या स्वयंज्योति पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति होवै है या हमारे सिद्धांतविषे पूर्व उक्त किंचित्मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवै नहीं। इहां (हे पुरुषर्षभ) या संबोधनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा स्वप्रकाशचैतन्यरूपताकरिकै जो तुम्हारे विषे पुरुषपणा है तथा परमानंद रूपताकारिकै जो तुम्हारेविषे सर्व द्वैतप्रपंचकी अपेक्षाकरिकै श्रेष्ठतारूप ऋषभपणा है ता अपणे पुरुषपणेकूं तथा ऋषभपणेकूं नहीं जानता हुआही तूं शोककूं प्राप्त हुआ है यातैं ता शोकके निवृत्तिका कोई दूसरा उपाय है नहीं किंतु ता अपणे स्वरूपके ज्ञानतैंही तुम्हारे शोककी निवृत्ति होवैगी। तहां श्रुति । "तरति शोक-मात्मवित्" । अर्थ यह—आत्मवेत्ता पुरुष शोकतैं रहित होवै है इति । या श्लोक-विषे (पुरुषं) इस एकवचनकरिकै सांख्यशास्त्रके मतका खंडन करा काहेतैं ते सांख्यशास्त्रवाले अनेक पुरुषोंकूं अंगीकार करैं हैं इति ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! यद्यपि चेतन आत्मा पुरुष एकही है तथापि ता पुरुषविषे सत्यरूप जड पदार्थोंका जो द्रष्टापणारूप संसार है सो संसार असत्य नहीं है किंतु सो संसार सत्य है ता संसारके सत्य हुए शीतउष्णादिक सुखदुःखके कारणोंके विद्यमान हुए ता सुखदुःखका भोगभी अवश्यकरिकै होवैगा । और सत्य वस्तुकी ज्ञानतैं निवृत्ति होवै नहीं । जो सत्य वस्तुकीभी ज्ञानतैं निवृत्ति होवै तौ सत्यात्माकीभी ज्ञानतैं निवृत्ति होणी चाहिये यातैं पूर्व कथन करी हुई मात्रास्पर्शोंकी तितिक्षा कैसे संभवैगी । तथा यह पुरुष मोक्षकी प्राप्तिवासतै कैसे योग्य होवैगा । समाधान—हे अर्जुन ! जैसे शुक्तिविषे कल्पित जो रजत है ता रजतकी शुक्तिरूप अधिष्ठानके ज्ञानतैं निवृत्ति होवै है तैसे या सर्व द्वैतप्रपंचकूं आत्माविषे कल्पित होणेतैं ता अधिष्ठान आत्माके ज्ञानकरिकै ता कल्पित प्रपंचकी निवृत्ति बनि सकै है । शंका—हे भगवन् ! जैसे आत्माकी प्रतीति होवै है तैसे अनात्म प्रपंचकीभी प्रतीति होवै है यातैं आत्मा अनात्मा दोनोंकी तुल्यप्रतीतिके हुए आत्माकी न्याईं

अनात्मजगत्भी सत्य किसवासतै नहीं होवै । तथा अनात्मजगत्की न्याईं आत्माभी असत्य किस वासतै नहीं होवै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीकृष्णभगवान् तिन दोनोंविषे विशेषता वर्णन करैं हैं–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६

(पदच्छेदः) न । असतः । विद्यते । भावः । न । अभावः । विद्यते । सतः । उभयोः। अपि । दृष्टः। अंतः। तु । अनयोः। तत्त्वदर्शिभिः॥ १६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असत्वस्तुकी सत्ता नहीं संभवै है तथा सत्वस्तुका अभाव नहीं संभवै है इन सत् असत् दोनोंकी भी मर्यादा तत्वदर्शी पुरुषोंनैं देखी है॥ १६ ॥

भा०टी०–कालकृत परिच्छेद देशकृत परिच्छेद वस्तुकृत परिच्छेद या तीन प्रकारके परिच्छेदोंवाला जो पदार्थ होवै है सो पदार्थ असत् कह्या जावै है । ऐसे घटादिक अनात्म पदार्थ हैं । तहां प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम कालपरिच्छेद है । जैसे घटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता घटका मृत्तिकाविषे प्रागभाव रहै है ता प्रागभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे है । और ता घटके नाशतैं अनन्तर ता घटका प्रध्वंसाभाव ता घटके कपालोंविषे रहै है और ता प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे है यातैं सो घट कालकृत परिच्छेदवाला है । घटके नाश हुएतैं अनन्तर जो ठीकरे रहैं हैं तिन्होंका नाम कपाल है और अत्यंताभावका प्रतियोगीपणा है ताका नाम देशपरिच्छेद है । जैसे जिस देशविषे घट रहै है ता देशकूं छोडिकै अन्य सर्व देशविषे ता घटका अत्यंताभाव रहै है। ता अत्यंताभावका जो प्रतियोगीपणा ता घटविषे रहै है, यातैं सो घट देशकृत परिच्छेदवाला है । तहां वेदांतसिद्धांतविषे यद्यपि जो पदार्थ कालकृत परिच्छेदवाला होवै है सो पदार्थ नियमकरिकै देशकृत परिच्छेदवालाभी होवै है । यातैं कालकृत परिच्छेदके ग्रहण करणेकारिकैही देशकृत परिच्छेदकाभी ग्रहण होइ सकै है ता देशकृत परिच्छेदका भिन्न ग्रहण करणा संभवै नहीं । तथापि नैयायिक पृथिवी, जल, तेज, वायु या चारोंके परमाणुवोंकूं तथा मनकूं मूर्त्तद्रव्य मानैं हैं तथा नित्य मानैं हैं यातैं ते नैयायिक तिन परमाणुवोंविषे तथा मनविषे केवल देशकृत परिच्छेदही अंगीकार करैं हैं कालकृत परिच्छेद अंगीकार करैं नहीं । या कारणतैं

इहां कालकृत परिच्छेदतैं देशकृत परिच्छेद भिन्न ग्रहण करा है। और सजातीय भेद विजातीय भेद स्वगतभेद या तीन प्रकारके भेदोंका नाम वस्तुकृत परिच्छेद है। जैसे एक वृक्षका दूसरे वृक्षतैं जो भेद है ता भेदकूं सजातीयभेद कहैं हैं। और तिसी वृक्षका पाषाणादिकोंतैं जो भेद है ता भेदकूं विजातीयभेद कहैं हैं। और तिसी वृक्षका अपणे पत्रपुष्पफलादिकोंतैं जो भेद है ता भेदकूं स्वगत-भेद कहैं हैं। अथवा जीवईश्वरका भेद १ जीवजगतका भेद २ जीवोंका परस्पर भेद ३ ईश्वरजगत्का भेद ४ जगत्का परस्पर भेद ५ या पंच प्रकारके भेदका नाम वस्तुपरिच्छेद है। यद्यपि वेदांतसिद्धांतविषे जो पदार्थ कालकृत परिच्छेदवाला तथा देशकृत परिच्छेदवाला होवै है सो पदार्थ नियमकरिकै वस्तुपरिच्छेदवालाभी होवै है यातैं कालकृत देशकृत परिच्छेदके ग्रहण कियेतैं वस्तुकृत परिच्छेदकाभी ग्रहण होइ सकै है ता वस्तुकृत परिच्छेदका भिन्न ग्रहण करणा उचित नहीं है। तथापि नैयायिकोंके मतविषे आकाश, काल, दिशा यह तीनों नित्य हैं तथा विभु हैं यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ते नैयायिक कालकृत परिच्छेद तथा देशकृत परिच्छेद मानते नहीं परंतु तिन आकाशादिकोंविषे ते नैयायिक वस्तुकृतपरिच्छेद तौ अंगीकार करै हैं या कारणतैं कालकृत परिच्छेद देशकृत परिच्छेद या दोनों परिच्छेदोंतैं वस्तुकृत परिच्छेदकूं भिन्न ग्रहण करा है। इस प्रकारके तीन परिच्छेदोंवाला होणेतैं असतरूप जो शीतउष्णादिक सर्व प्रपंच है ता असत् प्रपंचका सत्तारूप भाव संभवै नहीं। इहां सत्ताशब्दकरिकै तीन परिच्छेदोंतैं रहिततारूप पारमार्थिकपणेका ग्रहणकरणा। जैसे घटत्व और घटत्वका अभाव यह दोनों धर्म परस्पर विरोधि होणेतैं एक अधिकरणविषे कदाचित्भी रहते नहीं। तैसे परिच्छिन्नत्वरूप असत्त्व तथा अपरिच्छिन्नत्वरूप सत्त्व यह दोनों धर्मभी परस्पर विरोधि होणेतैं एक अधिकरणविषे कदाचित्भी रहते नहीं। तात्पर्य यह। अनात्मरूप जितनाक दृश्य प्रपंच है सो दृश्य प्रपंच सर्वत्र अनुगत है नहीं यातैं किसी कालविषे तथा किसी देशविषे तथा किसी वस्तुविषे ता दृश्य प्रपंचका अनिषेध होवै नहीं किंतु ता दृश्य प्रपंचका सर्व देशकालवस्तुविषे निषेधही होवै है। जैसे घटका अपणी उत्पत्तितैं पूर्वकालविषे तथा नाशतैं उत्तरकालविषे तथा अपणे अधिकरणकूं छोडिकै अन्य सर्व देशविषे तथा पटादिक वस्तुवोंविषे 'घटो नास्ति' या प्रकारका निषेधही होवै है। और जो सत् वस्तु है सो सर्वत्र अनुगत है। यातैं ता

सत् वस्तुका किसी कालविषे तथा किसी देशविषे तथा किसी वस्तुविषे कदाचित्भी निषेध होवै नहीं। यातैं जैसे एकही रज्जुविषे प्रतीत भये जो सर्प, दंड, जलधारा, माला आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंविषे सा रज्जु तौ 'अयं सर्पः, अयं दंडः' या प्रकार इदंरूपकरिकै अनुगत हुई प्रतीत होवै है। यातैं सा रज्जु तिन कल्पित सर्पदंडादिकोंविषे अनुगत है और ता सर्पकी प्रतीतिविषे दंडकी प्रतीति होवै नहीं और ता दंडकी प्रतीतिविषे सर्पकी प्रतीति होवै नहीं यातैं ते कल्पित सर्पदंडादिक परस्पर व्यभिचारी होणेतैं अनुगत नहीं हैं। या कारणतैंही ते अनुगत सर्पदंडादिक ता अनुगत रज्जुविषे कल्पित हैं तैसे 'सन् घटः, सन् पटः' या प्रकार सर्व पदार्थोंविषे सत् वस्तु तौ अनुगत होइकै प्रतीत होवै है यातैं सो सत् वस्तु सर्वत्र अनुगत है। और घट, पट नहीं है तथा पट, घट नहीं है या प्रकार घटपटादिक पदार्थ परस्पर व्यभिचारी होणेतैं अननुगत हैं या कारणतैं यह अननुगत घटपटादिक प्रपंच ता अनुगत सत् वस्तुविषे कल्पित है। शंका—हे भगवन्! अनुगतपणेतैं रहित व्यभिचारी वस्तुकूं जो कल्पित मानौगे तौ सत् वस्तुभी कल्पित होवैगा काहेतैं सो सत् वस्तुभी शशशृंग वंध्यापुत्रादिक तुच्छ पदार्थोंतैं व्यावृत्त होणेतैं व्यभिचारीही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (नाभावो विद्यते सतः इति) हे अर्जुन! सत् अधिकरणविषे रहणेहारा जो भेद है ता भेदके प्रतियोगीपणेका नामही वस्तुपरिच्छेद है। जैसे घटरूप सत् वस्तुविषे रहणेहारा जो पटका भेद है ता भेदका प्रतियोगीपणा ता पटविषे है यहही ता पटविषे वस्तुपरिच्छेद है और शशशृंग वंध्यापुत्रादिक असत् पदार्थोंविषे सत्रूपता है नहीं यातैं तिन शशशृंगादिक असत् पदार्थोंतैं सत् वस्तुका भेद अंगीकार किये हुएभी ता सत् वस्तुविषे वस्तुपरिच्छेदकी प्राप्ति होवै नहीं और स्वप्रकाश नित्यविभुरूप एकही सत् वस्तु सर्वत्र व्यापक है यातैं ता सत् वस्तुविषे किसी सत् व्यक्तिका भेद संभवै नहीं। काहेतैं 'घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है। यातैं सत् वस्तुविषे घटादिक पदार्थोंविषे रहणेहारे भेदका प्रतियोगीपणा संभवता नहीं। ऐसे देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित सत् वस्तुका देशकालवस्तुकृत परिच्छिन्नत्वरूप अभाव संभवै नहीं काहेतैं जैसे घटत्व और घटत्वका अभाव यह दोनों धर्म परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधिकरणविषे रहते नहीं तैसे परिच्छिन्नत्व अपरिच्छिन्नत्व यह दोनों

धर्मभी परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधिकरणविषे रहैं नहीं । शंका—जिसविषे देशकालवस्तुपरिच्छेदका निषेध करते हो ऐसी कोई सत् वस्तु है नहीं किंतु सत्ता नामा एक परा जाति है सा सत्ताजाति द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे तौ समवायसंबंधकरिकै रहै है । और तिन द्रव्यादिकोंविषे रहणेहारे जो सामान्य, विशेष, समवाय यह तीन पदार्थ हैं तिन्होंविषे सा सत्ताजाति सामानाधिकरण्य-संबंधकरिकै रहै है । या कारणतैंही तिन द्रव्यादिक षट् पदार्थोंविषे 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्' इत्यादिक सत् व्यवहार होवै है यातैं उत्पत्तितैं पूर्व वर्तमानप्रागभावके प्रतियोगी होणेतैं असत्‌रूप जो घटादिक हैं तिन असत् घटादिकोंकाही कुलालदंड चक्रादिक कारणोंके व्यापारतैं सत्त्व होवै है और तिन सत्‌रूप घटादिकोंकाही मृत्तिकादिक कारणोंके नाशतैं अभावभी होवै है यातैं असत् पदार्थका भाव नहीं होवै है और सत् वस्तुका अभाव नहीं होवै है या प्रकारका आपका वचन संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (उभयोरपीति) हे अर्जुन ! सत् वस्तुका तथा असत् वस्तुका जो अंत है । क्या जो सत् वस्तु होवै है सो सर्व कालविषे सत्‌ही होवैहै कदाचित्‌भी असत् होवै नहीं और जो असत् वस्तु होवै है सो सर्व कालविषे असत्‌ही होवै है कदाचित्‌भी सत् होवै नहीं या प्रकारकी नियमरूप जो मर्यादा है सो मर्यादारूप अंत वस्तुके यथार्थ स्वरूपकूं जानणेहारे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैंही विचारपूर्वक श्रुतिस्मृतियुक्तियोंकरिकै निश्चय करा है । कुतार्किक नैयायिकादिकोंनैं सो मर्यादारूप अंत निश्चय करा नहीं । इहां श्रुतिस्मृतिप्रमाणतैं विरुद्ध तर्कका नाम कुतर्क है तिन कुतर्कोंकूं कथन करणेहारे वादियोंकूं कुतार्किक कहैं हैं ऐसे कुतार्किक पुरुषोंविषे सो पूर्व उक्त विपरीतभ्रम संभव होइ सकै है । इहां श्लोकविषे (अंतस्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है ता तुशब्दका निश्चयरूप अवधारण अर्थ है तिस तुशब्दका (अंतः) या पदके साथि जो अन्वय करिये तौ यह अर्थ सिद्ध होवै है सत् वस्तु सत्‌ही होवै है और असत् वस्तु असत्‌ही होवै है या प्रकार ता सत् असत्‌का नियमही तत्त्वदर्शी पुरुषोंनैं देख्या है ता सत् असत् वस्तुका अनियम देख्या नहीं इति । और तिस तुशब्दका (तत्त्वदर्शिभिः) या पदके साथि जो अन्वय करिये तौ यह अर्थ सिद्ध होवै है । तत्त्वदर्शी पुरुषोंनैंही ता सत् असत् वस्तुका नियम देख्या है । अतत्त्वदर्शी पुरुषोंनैं सो नियम देख्या नहीं इति । तहां श्रुति । " सदेवसो-

म्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयमिति ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति"। अर्थ यह—हे प्रियदर्शन। यह दृश्यमान प्रपंच अपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत् वस्तुरूपही होता भया है सो सत् वस्तु एक अद्वितीयरूपही होता भया इति। या प्रकार छांदोग्य उपनिषद्के षष्ठ अध्यायके आदिविषे कथन करिकै ताके अंतविषे यह कह्या है। यह सर्व जगत् आत्मास्वरूपहीहै सो आत्माही सत्यरूप है। हे श्वेतकेतु! सो सत् वस्तु आत्मा तूं है इति। यह श्रुति सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदतैं रहित एक अद्वितीय वस्तुकूंही कथन करै है और "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"। अर्थ यह—घटशरावादिक विकार केवल वाणीमात्र होणेतैं मिथ्या हैं तिन घटशरावादिक विकारोंका कारणरूप मृत्तिकाही सत्य है इति। यह श्रुति परस्पर व्यभिचारीरूप घटशरावादिक विकरोंविषे मिथ्यापणेकूंही कथन करै है। तथा "अन्नेन सौम्यशुंगेनापो मूलम न्विच्छ अद्भिः सौम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा इति"। अर्थ यह—हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु! या पृथिवीरूप कार्यकरिकै तूं जलरूप कारणकूं निश्चय कर। तथा जलरूप कार्यकरिकै तूं तेजरूप कारणकूं निश्चय कर। तथा ता तेजरूप कार्यकरिकै तूं सत्वस्तुरूप कारणकूं निश्चय कर। हे श्वेतकेतु! यह सर्व प्रजा ता सत्वस्तुतैंही उत्पन्न होवै है। तथा ता सत् वस्तुविषेही स्थित होवै है तथा ता सत् वस्तुविषेही लयकूं प्राप्त होवै है इति। यह श्रुति ता सत् वस्तुविषेही पृथिवी आदिक सर्व विकारोंका कल्पितपणा कथन करै है।"सदेव सौम्येदमग्रआसीत्" इत्यादिक सर्व श्रुतियोंका अर्थ आत्मपुराणके द्वादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं। किंवा। 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्' इत्यादिक प्रतीतियोंका विषय जो सत्ता है सा सत्ता पराजातिरूप है या प्रकारका वचन जो नैयायिकोंनैं कथन करा है सो तिन्होंका कहणा अत्यंत असंगत है काहेतैं सन् सन् यह सत्ताकूं विषय करणेहारी प्रतीति द्रव्यादिक सर्व पदार्थमात्रविषे समान होवैहै। केवल द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे सा प्रतीति होवै नहीं। यातैं सन् सन् या प्रकारकी प्रतीतिकरिकै द्रव्य गुणकर्ममात्रविषे रहणेहारी सत्ताजातिकी कल्पना होइ सकै नहीं। और एकरूप प्रतीति एकरूप विषयकरिकैही सिद्ध होवै है। ता एकरूप प्रतीतिविषे संबंधका भेद तथा स्वरूपका भेद कल्पना करणा अनुचित

है । जैसे अनेक घटोंविषे ' अयं घटः, अयं घटः' या प्रकारकी जो एकरूप प्रतीति है सा एकरूप प्रतीति घटत्वरूप एकरूप विषय करिकैही सिद्ध होइ सकै है । यातैं घटव्यक्तियोंविषे ता घटत्वधर्मके संबंधका भेद कल्पना करणा अनुचित है । तैसे सन् सन् यह एकरूपप्रतीति द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे तौ समवायसंबंधविशिष्ट सत्ताकूं विषय करै है और सामान्य, विशेष, समवाय या तीन पदार्थोंविषे सामानाधिकरण्यसंबंधविशिष्ट सत्ताकूं विषय करै है या प्रकार संबंधका भेद कल्पना करणा उचित नहीं है । और विषयकी एकरूपताके अभाव हुएभी जो कदाचित् प्रतीतिकी एकरूपता अंगीकार करौगे तौ तुम्हारे मतविषे किसीभी जातिकी सिद्धि नहीं होवैगी । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया नैयायिकोंनैं अंगीकार करी जो सत्ताजाति है सा सत्ताजाती 'घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक सत् व्यवहारोंका साधक नहीं है किंतु ज्ञात अज्ञात अवस्थाकूं प्रकाश करणेहारा तथा स्वतः स्फुरणरूप एकही सत्वस्तु अपणे तादात्म्य अध्यासकरिकै सर्व पदार्थोंविषे सन् सन् या प्रकारके सत् व्यरहारका साधक होवै है । किंवा । 'सन् घटः, सन् पटः' इत्यादिक प्रतीतियां घटपटादिक व्यक्तियोंविषे सत्ताव्यक्तिके अभेदमात्रकूं विषय करैं हैं तिन घटपटादिक व्यक्तियोंविषे सत्ताजातिके समवायिपणेकूं ते प्रतीतियां विषय करैं नहीं । काहेतैं अभेदकूं विषय करणेहारी जो प्रतीति है ता प्रतीतिका भेदघटित समवायसंबंधकरिकै निर्वाह होइ सकै नहीं । इस प्रकार ' द्रव्यं सत्, गुणः सन् ' इत्यादिक प्रतीतियोंकरिकै ता एक सत् वस्तुका द्रव्यादिक सर्व पदार्थोंके साथि अभेद सिद्ध हुए ता एक सत् वस्तुके साथि अभिन्न होणेतैं तिन द्रव्यगुणादिक पदार्थोंका परस्परभी भेद सिद्ध होवै नहीं । तिन द्रव्यादिकोंके भेदके असिद्ध हुए तिन द्रव्यगुणादिक धर्मियोंविषे सत्ताजातिरूप धर्मभी कल्पना करा जावै नहीं । यातैं सत् वस्तुरूप धर्मीविषे द्रव्यगुणादिक पदार्थोंका अभेदही अंगीकार करणेयोग्य है । सो जड चेतनका अभेद वास्तवतैं तौ संभवै नहीं किंतु आध्यासिकअभेदही संभवै है । किंवा । नैयायिकोंनैं विभुरूप कालपदार्थका सर्व पदार्थोंके साथि संबंध अंगीकार करा है ता कालके संबंधकूं ग्रहण करिकैही ' घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक सर्व व्यवहार संभव होइ सकै है ता कालसंबंधतैं भिन्न सत्ताजातिरूप पदार्थके माननेविषे कोई प्रमाण है नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे अघटरूप

जो पटादिक पदार्थ हैं तिन पटादिक पदार्थोंकूं अन्य देशविषे तथा अन्य काल-विषे घटरूपता होवै नहीं। और जैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे घट-रूपकरिकै स्थित जो घट है ता घटकी अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे अघटरूपता साक्षात् इंद्रकरिकैभी सिद्ध होइ सकै नहीं। तैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे असतरूपकरिकै विद्यमान जो पदार्थ है ता असत् पदार्थका अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे सत्त्व सिद्ध होइ सकै नहीं। तैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे सतरूपकरिकै विद्यमान जो पदार्थ है ता सत् पदार्थका अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे असत्त्व सिद्ध होइ सकै नहीं। यातैं सत, असत् दोनोंका नियतरूपही अंगीकार करणेकूं योग्य है यातैं एकही सत् वस्तु माया-कल्पित असत्की निवृत्ति करिकै मोक्षरूप अमृतकी प्राप्तिके योग्य होवै है। तथा सत वस्तुमात्रकी दृष्टिकरिकै पूर्व उक्ततितिक्षाभी संभव होइ सकै है इति ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! पूर्व कथन करा जो देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित सत् वस्तु है सो सत् वस्तु ज्ञानरूप स्फुरणतैं भिन्न है अथवा अभिन्न है। तहां प्रथम भेदपक्ष तौ संभवे नहीं काहेतैं ता सत वस्तुकूं जो ज्ञानरूप स्फुरणतैं भिन्न अंगीकार करौगे, तौ सो सत् वस्तु भेदरूप वस्तुपरिच्छेदवाला होवैगा। ता परिच्छिन्नताकी प्राप्तिरूप दोषकी निवृत्ति वासतै सो सत् वस्तु ज्ञानरूप स्फुरणतैं अभिन्न है यह दूसरा पक्ष अंगीकार करणा होवैगा। और जैसे 'अयं सर्पः' या प्रतीतिकरिकै रज्जुविषे जो सर्पका अभेद प्रतीत होवै है सो अभेद वास्तवतैं है नहीं किंतु सो अभेद आध्यासिक है। तैसे ता सत् वस्तुविषे ज्ञानरूप स्फुरणा जो आध्यासिक अभेद अंगीकार करौगे तौ ता ज्ञानरूप स्फुरणतैं वास्तवतैं भिन्न हुआ सो सत् वस्तु घटादिक पदार्थोंकी न्याईं जड होवैगा। यातैं ता जडता दोषकी निवृत्ति वासतै ता सत् वस्तुविषे ज्ञानरूप स्फुरणका वास्तव अभेद अंगीकार करणा होवैगा। ता वास्तव अभेदके अंगीकार किये हुएभी ता सत् वस्तुविषे पुनः देशका-लवस्तुपरिच्छेदकी प्राप्ति होवैगी काहेतैं हमारेविषे पूर्वला घटका ज्ञान नाश हुआ है अभी पटका ज्ञान उत्पन्न भया है। या प्रकारकी प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है। ता प्रतीतितैं ज्ञानरूप स्फुरणका उत्पत्ति तथा नाश सिद्ध होवै है और 'अहं घटं जानामि' अर्थ यह-मैं घटकूं जानता हूं याप्रकारकी प्रतीतिभी सर्व लोकोंकूं होवै है या प्रतीतितैं अहंशब्दके अर्थविषे ता ज्ञानरूप स्फुरणकी आश्रयता सिद्ध होवै है।

और घटविषे ता ज्ञानरूप स्फुरणकी विषयता सिद्ध होवै है। यातैं सो ज्ञानरूप स्फुरण देशकालवस्तुपरिच्छेदवालाही सिद्ध होवै है। ऐसे परिच्छिन्न ज्ञानरूप स्फुरणतैं जबी ता सत् वस्तुका वास्तवतैं अभेद हुआ तबी ता सत् वस्तुविषेभी सो देशकालवस्तुपरिच्छेद प्राप्त होवैगा यातैं सो सत् वस्तु देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित है यह आपका वचन संभवता नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्॥
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) अविनाशि । तु । तत् । विद्धि । येन । सर्वम् । इदं । ततम् । विनाशम् । अव्ययस्य । अस्य । न । कश्चित् । कर्तुम् । अर्हति ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस सत्रूप स्फुरणनैं यह सर्व दृश्यप्रपंच व्याप्त करा है तिस सत्रूप स्फुरणकूं तूं परिच्छेदरूप विनाशतैं रहित ही जान जिस कारणतैं इस अपरिच्छिन्न सत्रूप स्फुरणका परिच्छिन्नतारूप विनाशकूं कोईभी करणेकूं नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥

भा० टी०-देशकृत परिच्छेद, कालकृत परिच्छेद, वस्तुकृत परिच्छेद या तीन प्रकारके परिच्छेदोंका नाम विनाश है सो विनाश जिसकूं प्राप्त होवै है ताका नाम विनाशि है ऐसे परिच्छिन्न पदार्थ हैं तिन विनाशि पदार्थोंतैं जो विलक्षण होवै ताका नाम अविनाशि है क्या तीन प्रकारके परिच्छेदतैं रहित वस्तुका नाम अविनाशि है। हे अर्जुन ! ता सत् वस्तुरूप स्फुरणकूं तू इस प्रकारका अविनाशि जान कैसा है सो सत् वस्तुरूप स्फुरण जिस एक अद्वितीय नित्य विभुरूप स्फुरणनैं स्वतः सत्तास्फूर्तितैं रहित यह सर्व दृश्य प्रपंच व्याप्त करा है। जैसे रज्जुरूप अधिष्ठाननैं अपणे इदम् अंशकरिकै कल्पित सर्प, दंड, जलधारादिक व्याप्त करीते हैं तैसे जिस सत् वस्तुरूप स्फुरणनैं अपणी सत्तास्फूर्तिके अध्यासकरिकै यह सर्व दृश्यप्रपंच व्याप्त करा है। ऐसे सत् वस्तुरूप स्फुरणकूं तूं परिच्छिन्नतारूप विनाशतैं रहितही जान। काहेतैं परिच्छेदरूप नाशतैं रहित तथा सर्वदा अपरोक्ष-रूप ऐसा जो सर्वत्र व्यापक सत्रूप स्फुरण है ता सत् वस्तुरूप स्फुरणके पारि-

च्छिन्नतारूप विनाशकूं कोई आश्रय अथवा कोई विषय अथवा कोई इंद्रिय अर्थका संबंधरूप हेतु करणेविषे समर्थ होवै नहीं काहेतें कल्पित वस्तु अकल्पित वस्तुके परिच्छेदकूं करि सकै नहीं। जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प दंडादिक अकल्पित परिच्छेदकूं करि सकैं नहीं तैसे सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे कल्पित जो विषय इंद्रियादिक हैं ते विषय इंद्रियादिक ता अकल्पित स्फुरणके परिच्छेदकूं करि सकैं नहीं और जो वादी ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे परिच्छिन्नपणेका आरोप अंगीकार करै सो औपाधिक परिच्छिन्नपणा हमारेकूंभी अंगीकार है। परंतु ता स्फुरणविषे वास्तवतैं परिच्छिन्नपणा है नहीं। किंवा। 'अहं घटं जानामि'। अर्थ यह—मैं घटकूं जानता हूं या ज्ञानविषे अहंकार तौ आश्रयरूपकरिकै प्रतीत होवै है। और घट विषयरूपकरिकै प्रतीत होवैहै। और उत्पत्तिनाशवाली कोई अंतःकरणकी वृत्ति तौ सर्वत्र व्यापक सत्‌रूप स्फुरणके अभिव्यंजकतारूपकरिकै प्रतीत होवै है ता अभिव्यंजकवृत्तिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशकरिकैही ता वृत्ति उपहित सत्‌रूप स्फुरणविषे उत्पत्ति नाश प्रतीत होवै है। वास्तवतैं ता सत्‌रूप स्फुरणका उत्पत्तिनाश होवै नहीं। अथवा। आत्मा मनका संयोग ज्ञानका कारण होवै यह नैयायिकोंनैंभी अंगीकार करा है। ता संयोगरूप उपाधिके उत्पत्तिनाश करिकैही ता संयोग उपहित सत्‌रूप स्फुरणविषे सो उत्पत्तिनाश प्रतीत होवै है वास्तवतैं ता स्फुरणका उत्पत्तिनाश होवै नहीं। जैसे मीमांसकोंके मतविषे स्वभावतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो वर्णात्मक शब्द है ता शब्दविषे ध्वनिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है। और जैसे नैयायिकोंके मतविषे वास्तवतैं उत्पत्ति नाशतैं रहित जो आकाश है ता आकाशविषे घटरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है। तैसे वेदांतसिद्धांतविषेभी वास्तवतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो ज्ञानरूप स्फुरण है ता स्फुरणविषे अंतःकरणकी वृत्तिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है। अथवा आत्मामनका संयोगरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका ता स्फुरणविषे आरोप होवै है वास्तवतैं ता सत्‌वस्तुरूप स्फुरणका उत्पत्ति नाश होवै नहीं। और यद्यपि ता सत्‌वस्तुरूप स्फुरणविषे यह अहंकार कल्पित है यातैं ता कल्पित अहंकारविषे ता स्फुरणकी आश्रयता संभवै नहीं। तथापि ता अहंकारकी वृत्तिके साथि ता स्फुरणका तादात्म्य अध्यास है या कारणतैं ता वृत्तिके आश्रयरूप अहंकारके आश्रित हुआ सो स्फुरण प्रतीत होवै

है वास्तवतैं सो अहंकार ता स्फुरणका आश्रय नहीं है काहेतैं सुषुप्ति अवस्थाविषे ता अहंकारके अभाव हुएभी ता अहंकारके सूक्ष्म वासनायुक्त अज्ञानकूं प्रकाश करणेहारा चैतन्य स्वतःही स्फुरण होवै है। जो कदाचित् सुषुप्ति अवस्थाविषे सो चैतन्य स्वतः स्फुरणरूप नहीं होवै तौ इतने कालपर्यंत मैं किंचित्मात्रभी नहीं जानता भया या प्रकारका अज्ञानविषयक स्मरण जो सुषुप्तितैं उठे हुए पुरुषकूं होवै है सो नहीं होणा चाहिये। और या प्रकारका स्मरण तौ सर्व पुरुषोंकूं होवै है यातैं यह जान्या जावै है सुषुप्ति अवस्थाविषे अज्ञानकूं प्रकाश करणेहारा चैतन्य स्वतः स्फुरणरूप है ता स्फुरणरूप अनुभवकरिकैही जाग्रत् अवस्थाविषे सो अज्ञानविषयक स्मरण होवै है। किंवा। केवल जाग्रत् अवस्थाके स्मरणकी अनुपपत्तितैंही सुषुप्ति अवस्थाविषे चैतन्यरूप स्फुरणकी सिद्धि नहीं होवै है। किंतु साक्षात् श्रुतिप्रमाणकरिकैभी ता ज्ञानरूप स्फुरणकी सिद्धि होवै है। तहां श्रुति। " यद्वैतन्न पश्यति पश्यन्वैतद्द्रष्टव्यं न पश्यति नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो वियतेऽविनाशित्वात् "। अर्थ यह—सुषुप्ति अवस्थाविषे यह आत्मादेव द्वैतप्रपंचकूं जो नहीं देखता है सो अपणे चैतन्यरूप स्फुरणके अभाव हुएतैं नहीं देखता है यह वार्त्ता कही जावै नहीं किंतु ता सुषुप्ति अवस्थाविषे यह आत्मादेव अपणे चैतन्यरूप स्फुरणकरिकै देखता हुआभी तहां द्वैतप्रपंचका अभाव होणेतैं ता द्वैतप्रपंचकूं देखता नहीं काहेतैं ता द्रष्टा आत्माका स्वरूपभूत जो स्फुरणरूप दृष्टि है सा दृष्टि नाशतैं रहित है यातैं ता स्फुरणरूप दृष्टिका किसीभी अवस्थाविषे अभाव होवै नहीं इति। यह श्रुति सुषुप्तिअवस्थाविषे स्वप्रकाशरूप स्फुरणके सद्भावकूं तथा नित्यताकूं कथन करै है। किंवा। जैसे अहंकारादिक ता ज्ञानरूप स्फुरणविषे कल्पित हैं तैसे घटादिक विषयोंके अज्ञात अवस्थाकूं प्रकाश करणेहारा जो सत वस्तुरूप स्फुरण है ता स्फुरणविषे ते घटादिक विषयभी कल्पित हैं। काहेतैं जो घट हमनैं पूर्व नहीं जान्या था सोईही घट अबी हमनैं जान्या है या प्रकारके अनुभवकरिकैही सा घटकी अज्ञात अवस्था सिद्ध होवै है। और जो ज्ञान अज्ञात वस्तुका प्रकाश करै है सो ज्ञानही प्रमाज्ञान होवै है या प्रकार अज्ञात अर्थका ज्ञापकत्वरूप प्रमाज्ञानका लक्षण सर्व शास्त्रवाले अंगीकार करैं हैं। या कारणतैंही नैयायिकोंनैं 'यथार्थानुभवः प्रमा' या प्रमाके लक्षणविषे पूर्वज्ञात अर्थकूं विषय करणेहारी स्मृतिके निवारण करणेवासतैं अनुभव यह पद कथन करा है।

तहां घटादिक विषयोंविषे जो अज्ञातपणा है सो अज्ञातपणा नेत्रादिक इंद्रियों-करिकै जान्या जावै नहीं काहेतें ता अज्ञातपणेके जानणेविषे नेत्रादिक इंद्रियोंका सामर्थ्य है नहीं । और सो घटादिकोंका अज्ञातपणा अनुमानप्रमाणकरिकैभी जान्या जावै नहीं काहेतें जैसे पर्वतविषे स्थित अग्निके जनावणेहारा धूमरूप लिंग होवै है तैसे ता अज्ञातपणेके जनावणेहारा कोई लिंग है नहीं । तहां जो वादी ता अज्ञातपणेकी सिद्धिवासतै या प्रकारका अनुमान करै यह घट पूर्व अज्ञात था इदानींकालविषे ज्ञात होणेतें सो या प्रकारके अनुमानकरिकैभी सो घटका अज्ञातपणा सिद्ध होवै नहीं काहेतें जहां एकही घटविषे व्यवधानतें रहित 'अयं घटः, 'अयं घटः' या प्रकारके अनेक ज्ञान होवैं हैं तहां प्रथम ज्ञानकूं छोडिकै द्वितीयतृतीय आदिक ज्ञानोंका विषय जो घट है ता घटविषे इदानींकालविषे ज्ञातपणारूप हेतु तौ रहै है परंतु पूर्व अज्ञातपणारूप साध्य रहै नहीं काहेतें ता स्थलविषे पूर्व पूर्व ज्ञानकरिकै ज्ञात घटकूंही उत्तर उत्तर ज्ञान विषय करैं हैं यातें साध्यके अभाववाले घटविषे रहणेहारा सो हेतु व्यभिचारी है ता व्यभिचारी हेतुतें पूर्व अज्ञातत्वरूप साध्यकी सिद्धि होइ सकै नहीं । किंवा । इदानीं ज्ञातत्वरूप हेतुका पूर्व अज्ञातत्वरूप साध्यतें भेद सिद्ध होवै नहीं । काहेतें जो पूर्व अज्ञात हुआ इदानींकालविषे ज्ञात होवै है ताकूंही इदानींकालविषे ज्ञान कहैं हैं । और जो हेतु अपणे साध्यतें अभिन्न होवै है सो हेतु सिद्धसाधनतादोषवाला होवै है । या कारणतैंभी ता दुष्ट हेतुतें अज्ञातत्वरूप साध्यकी सिद्धि होवै नहीं । किंवा । घटादिकोंकी अज्ञात अवस्थाके ज्ञानतैं विना तिन घटादिकोंविषे स्वविषयक प्रत्यक्षज्ञानके प्रति कारणता ग्रहण करी जावै नहीं काहेतें जिस वस्तुविषे जिस कार्यतें नियम करिकै पूर्ववर्त्तिपणेका ज्ञान होवै है तिसी वस्तुविषे ता कार्यकी कारणता ग्रहण करी जावै है । जैसे मृत्तिकाविषे घटरूपकार्यतें पूर्ववर्त्तिपणेके ज्ञान हुएतें अनंतरही ता मृत्तिकाविषे घटके कारण-ताका ज्ञान होवै है । पूर्ववर्त्तिपणेके ज्ञानतें विना कारणताका ज्ञान होवै नहीं यातैं ता घटके प्रत्यक्षज्ञानतें पूर्व ता घटके अज्ञात अवस्थाका ज्ञान अवश्य अंगीकार करा चाहिये । किंवा । ता घटके अज्ञात अवस्थाका ज्ञान जो नहीं होता होवै तो मैं घटकूं नहीं जानता हूं या प्रकारके सर्व लोकोंके अनुभवका विरोध होवैगा यातैं यह अर्थ सिद्ध भया अज्ञातरूप स्फुरण अपणे स्वयंज्योतिरूपकरिकै प्रकाश-मान हुआ अपणेविषे कल्पित घटादिक पदार्थोंकूंभी प्रकाश करै है यातैं ता अज्ञा-

तरूप स्फुरणविषेही तिन घटादिक पदार्थोंका कल्पितपणा सिद्ध होवै है। जो कदाचित् सो अज्ञातरूप स्फुरण तिन घटादिक पदार्थोंकूं प्रकाश नहीं करता होवै तौ तिन घटादिक पदार्थोंकूं स्वभावतैं जड होणेतैं तिन घटादिकोंका अज्ञातपणा तथा ता अज्ञातपणेका ज्ञान दोनों नहीं सिद्ध होवैंगे। और ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे जो अज्ञातपणा है सो अपणेविषे कल्पित अज्ञानकरिकैही है। यह वार्ता (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः) या वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे कहैंगे। इतने कहणेकरिकै ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे विभुपणा सिद्ध करा। तहां श्रुति। "महद्भूतमनंतमपारं विज्ञानघन एवेति सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म इति"। अर्थ यह—सो सत् वस्तुरूप स्फुरण महान्‌रूप है तथा अनंत है तथा अपार है तथा विज्ञानघन है तथा सत्य है तथा ज्ञानरूप है तथा अनंत है इति। यह श्रुति ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे महत्‌पणा तथा अनंतपणा कथन करै है। तहां ता ज्ञानरूप स्फुरणविषे कल्पित जो यह सर्व जगत्‌है ता सर्व जगत्‌के साथि ता स्फुरणका जो कल्पित तादात्म्यसंबंध है यहही ता स्फुरणविषे महत्‌पणा है। और देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं जो रहितपणा है यहही ता स्फुरणविषे अनंतपणा है इतने कहणेकरिकै शून्यवादियोंका मतभी खंडन करा। काहेतैं अधिष्ठानवस्तुतैं विना कोईभी भ्रम होवै नहीं। तथा अधिष्ठानतैं विना ता भ्रमका बाधभी होवै नहीं। और शून्यवादियोंके मतविषे कोई सत् वस्तु अधिष्ठानतैं है नहीं यातैं तिन्होंका मत असंगत है। तहां श्रुति। "पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः"। अर्थ यह—स्वयंज्योतिरूप पुरुषतैं परे कोईभी वस्तु है नहीं। किंतु सो स्वयंज्योतिपुरुषही या सर्व जगत्‌का अवधिरूप है तथा परागतिरूप है इति। यह श्रुति सर्व जगत्‌के बाधका अवधिरूपकरिकै ता स्वयंज्योति पुरुषका कथन करै है। यह वार्ता भगवान् भाष्यकारोंनैंभी कथन करी है। "सर्वं विनश्यद्वस्तुजातं पुरुषांतं विनश्यति पुरुषो विनाशहेत्वभावान्न विनश्यति"। अर्थ यह—या स्थूल प्रपंचतैं आदिलैके अव्याकृतपर्यंत जितनेक नाशवान् वस्तु हैं ते सर्वं वस्तु चैतन्यरूप पुरुषपर्यंत नाशकूं प्राप्त होवैं हैं। और तिस पुरुषके नाश करणेहारा कोई कारण है नहीं यातैं सो पुरुष नाशकूं प्राप्त होवै नहीं इति। इतने कहणेकरिकै क्षणिक विज्ञानवादियोंका मतभी खंडन करा काहेतैं जो कदाचित् आत्मा क्षणिक होवै तौ जो मैं बाल्य अवस्थाविषे अपणे मातापिताकूं अनुभव करता भया सोईही

मैं अबी वृद्ध अवस्थाविषे ता मातापिताकूं स्मरण करता हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान सर्व प्राणियोंकूं होवै है सो नहीं होणा चाहिये। काहेतैं जो पुरुष जिस वस्तुकूं देखै है सोईही पुरुष कालांतरविषे तिस वस्तुकूं स्मरण करै है । अन्य पुरुषकरिकै देखी हुई वस्तुका अन्य पुरुषकूं स्मरण होवै नहीं यातैं सो आत्मा क्षणिक नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सर्वत्र व्यापक तथा एक अद्वितीयरूप जो स्वप्रकाश स्फुरणरूप सत् वस्तु है सो स्फुरणरूप सत् वस्तु पूर्व उक्त देशकालादिक सर्व परिच्छेदतैं रहित है यातैं ता सत् वस्तुका अभाव कदाचित्भी नहीं होवै है। यह जो श्रीभगवान्नैं कह्या है सो यथार्थ कह्या है इति ॥ १७ ॥

पूर्व आपनैं स्फुरणरूप सत् वस्तुकूं अविनाशी कह्या सो संभवता नहीं काहेतैं जैसे पान, काथा, चूना, सुपारी या चारोंका समुदायरूप जो तांबूल है तिस तांबूलविषे रक्तता उत्पन्न होवै है तैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु या चारि भूतोंका समुदायरूप जो यह स्थूल शरीर है ता स्थूल शरीरविषे एक चैतन्यताधर्म उत्पन्न होवै है यातैं सो चैतन्यरूप स्फुरण या स्थूल शरीरकाही धर्म है। और यह स्थूल शरीर तौ क्षणक्षणविषे नाशकूं प्राप्त होवै है यातैं ता शरीररूप धर्मीके नाश हुए ता ज्ञानरूप स्फुरणकाभी अवश्य करिकै नाश होवैगा या प्रकारकी भूतचैतन्यवादियोंकी शंकाके हुए तिन भूतचैतन्यवादियोंके खंडन करणेवासते श्रीभगवान् (नासतो विद्यते भावो) या पूर्व कहे हुए वचनका अर्थ अबी विस्तारतैं निरूपण करैं हैं—

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) अंतवंतः। इमे। देहाः। नित्यस्य। उक्ताः। शरीरिणः। अनाशिनः। अप्रमेयस्य। तस्मात्। युध्यस्व। भारत ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! नित्य तथा शरीररूप उपाधिवाला तथा नाशतैं रहित तथा प्रमेयभावतैं रहित ऐसा जो स्फुरणरूप आत्मा है ता एक आत्माकेही यह नाशवान् सर्व देह कथन करै हैं तिसं कारणतैं तूं युद्ध कर ॥ १८ ॥

भा० टी०—वृद्धिक्षयवाले होणेतैं शरीर नामकरिकै प्रसिद्ध तथा नाशरूप अंतवाले जो यह प्रत्यक्ष देह हैं। इहां (देहाः) या बहुवचनकरिकै स्थूल सूक्ष्म कारणरूप जितनेक विराट् सूत्र अव्याकृत नामा समष्टि व्यष्टि शरीर हैं

तिन सर्व शरीरोंका ग्रहण करणा । और नित्य तथा विनाशतैं रहित तथा आध्यासिकसंबंधकरिकै शरीरवाला ऐसा जो स्वप्रकाश स्फुरणरूप आत्मा है ता एकही आत्माके ते स्थूल सूक्ष्म कारणरूप सर्व शरीर दृश्यरूप हैं तथा भोगरूप हैं यातैं श्रुतिभगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं ते सर्व देह दृश्यत्वरूपकरिकै तथा भोग्यत्वरूपकरिकै ता एकही आत्माके संबंधी कथन करे हैं । तहां तैत्तिरीय श्रुतिविषे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय या पंच कोशोंकी कल्पना करिकै तिन सर्व कोशोंका अधिष्ठानरूप तथा अकल्पित पुच्छप्रतिष्ठारूप ब्रह्म कथन करा है । तहां पंचीकृत पंचमहाभूत जो हैं तथा तिन पंचमहाभूतोंका कार्यरूप जो सर्व मूर्त्त पदार्थोंका समुदायरूप विराट् है सो अन्नमयकोश है । यह स्थूल समष्टि है ।और ता स्थूल समष्टिका कारणरूप जो अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तथा तिन अपंचीकृत भूतोंका कार्यरूप जो सर्व अमूर्त्तपदार्थोंका समुदायरूप सूत्रनामा हिरण्यगर्भ है सो सूक्ष्म समष्टि है । तहां "त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्मेति" या बृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिनैं ता सूक्ष्म समष्टिकूं नाम, रूप, कर्म यह तीन रूप कह्या है । तहां सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थित कर्मरूपताकरिकै जबी क्रियाशक्तिमात्रकूं ग्रहण करै है तबी प्राणमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । और सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थित नामरूपताकरिकै जबी ज्ञानशक्तिमात्रकूं ग्रहण करै है तबी मनोमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है और सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थितरूप स्वरूपताकरिकै तिस क्रियानाम दोनोंका आश्रय होणेतैं जबी कर्तृत्वमात्रकूं ग्रहण करै है तबी विज्ञानमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । या प्रकार सो एकही हिरण्यगर्भनामा लिंगशरीर रूप कोश प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय यह तीन कोशरूप होवै है । और ता हिरण्यगर्भरूप लिंगशरीरकाभी कारणरूप तथा सर्व प्रपंचके वासनारूप संस्कारोंका आश्रयरूप ऐसा जो अव्याकृत नामा मायाउपहितचैतन्य आत्मा है सो आनंदमयकोश है । ते अन्नमयादिक सर्व एकही आत्माके शरीर श्रुतिनैं कहे हैं । तहां श्रुति । "तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्येति"। अर्थ यह—पूर्व अन्नमयकोशका जो सत्यज्ञान अनंतरूप शारीर आत्मा कथन करा है तिस प्राणमयकोशकाभी सोईही शारीरआत्मा है शरीरविषे जो विद्यमान होवै ताका नाम शारीर है इति । या प्रकारका श्रुतिवचन मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय या तीन कोशोंविषेभी जानि लेणा यह पंचकोशोंकी प्रक्रिया

आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं। अथवा (अंतवंत इमे देहाः) या श्लोकके पदोंकी या प्रकारतैं योजना करणी। तीन लोकविषे वर्त्तमान सर्व प्राणियोंके संबंधी जो स्थावरजंगमरूप देह हैं ते सर्व देह एकही स्वयंज्योति आत्माके श्रुतिनैं कथन करे हैं। तहां श्रुति। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" अर्थ यह–एक अद्वितीय आत्मादेव सर्व शरीरोंविषे गूढ होइकै स्थित है तथा सर्वव्यापी है तथा सर्व भूतोंका अंतरआत्मा है तथा पुण्यपापरूप कर्मोंका फलप्रदाता है। तथा सर्व भूतोंका अधिष्ठान है तथा बुद्धि आदिक सर्व संघातका साक्षी है तथा चैतन्यरूप है तथा अद्वितीयरूप है तथा निर्गुण है तथा निष्क्रिय है इति। यह श्रुति स्थावरजंगमरूप सर्व शरीरोंके संबंधवाले एक नित्य विभु आत्माकूं कथन करै है। शंका–हे भगवन्! जितनेपर्यंत यह काल रहै है तितनेपर्यंत स्थायी होणा याका नाम नित्यपणा है। सो यह नित्यपणा कालके साथि आत्माका नाश अंगीकार किये हुएभी अविद्यादिकोंकी न्याईं ता आत्माविषे संभव होइ सकै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (अनाशिनः इति) हे अर्जुन! देशकालवस्तुपरिच्छेदवाले जो अविद्यादिक हैं ते अविद्यादिक अधिष्ठान आत्माविषे कल्पित होणेतैं यद्यपि अनित्य हैं तथापि तिन अविद्यादिकोंविषे सो यावत्काल स्थायित्वरूप गौण नित्यपणा प्रतीत होवै है। तीन कालविषे अबाध्यत्वरूप मुख्य नित्यत्व तिन अविद्यादिकोंविषे है नहीं। और देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित होणेतैं अकल्पित जो आत्मा है ता आत्माके नाशका कोई कारण है नहीं यातैं ता आत्माविषे मुख्यही कूटस्थरूप नित्यत्व है। अविद्यादिकोंकी न्याईं परिणामिरूप नित्यत्व तथा यावत्कालस्थायित्वरूप नित्यत्व ता आत्माविषे है नहीं। शंका–ऐसे सर्व देहोंके संबंधवाले चैतन्य आत्माविषे कोई प्रमाण है अथवा नहीं है तहां ता चैतन्य आत्माविषे कोई प्रमाण नहीं है यह द्वितीयपक्ष तौ संभवै नहीं काहेतैं जो वस्तु किसी प्रमाणजन्य ज्ञानका विषय नहीं होवै है सो वस्तु असत्यही होवै है। जैसे वंध्यापुत्र तथा शशशृंग किसी प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं हैं यातैं असत्यही हैं तैसे प्रमाणजन्य ज्ञानका अविषय होणेतैं सो चैतन्य आत्माभी असत्यही होवैगा। तथा ता आत्माके साक्षात्कारवासतैं जो शा-

स्त्रका आरंभ है सोभी व्यर्थही होवैगा । इत्यादिक सर्व दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै ता देही आत्माविषे कोई प्रमाण है यह प्रथम पक्ष अवश्य करिकै अंगीकार करणा होवैगा। किंवा । 'शास्त्रयोनित्वात्' या सूत्रके व्याख्यानविषे भगवान् भाष्यकारोंनैंभी ता आत्माकी सिद्धिविषे एक उपनिषद्रूप शास्त्रही प्रमाण कह्या है । तथा "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" या श्रुतिनैंभी ता आत्माकी सिद्धिविषे उपनिषद्रूप प्रमाण कथन करा है यातैं प्रमाणका विषय होणेतैं ता चैतन्यरूप आत्माविषे सो भेदरूप वस्तुपरिच्छेद अवश्य करिकै प्राप्त होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (अप्रमेयस्येति) हे अर्जुन ! जैसे घटपटादिक सर्व पदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारा जो सूर्य भगवान् है ता सूर्यभगवान्कूं अपणे प्रकाशवासतै घटादिक पदार्थोंकी अपेक्षा होवै नहीं । तैसे प्रमाणप्रमेयादिक सर्व जगत्कूं प्रकाश करणेहारा जो स्वप्रकाश चैतन्यरूप आत्मा है ता चैतन्य आत्माकूं अपणे प्रकाश करणेवासतै प्रमाणादिकोंकी अपेक्षा होवै नहीं या कारणतैं सो आत्मादेव अप्रमेय है । तहां श्रुति । "एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवमप्रमेयं न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः तमेव भातमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" । अर्थ यह—यह चैतन्यआत्मा एक प्रकारकरिकैही देखणे योग्य है तथा यह आत्मादेव अप्रमेय है तथा कूटस्थ है तथा अप्रमेय है । और ता स्वयंज्योति आत्माविषे सूर्यभी प्रकाश करै नहीं तथा चंद्रमा तारागणभी प्रकाश करैं नहीं तथा विद्युतभी प्रकाश करै नहीं तथा यह अग्निभी प्रकाश करै नहीं और ता स्वयंज्योति आत्माके प्रकाशकूं आश्रयणकरिकैही पश्चात् यह सूर्यचंद्रमादिक सर्व पदार्थ प्रतीत होवैं हैं तथा ता आत्मादेवके स्वयंज्योति प्रकाशकरिकैही यह सूर्यचंद्रमादिक सर्व जगत् प्रकाशमान होवै है । और जिस स्वयंज्योति आत्माकरिकै यह लोक या सर्व पदार्थोंकूं जानै हैं तिस सर्वके द्रष्टा विज्ञाता आत्माकूं यह जीव किस प्रमाणकरिकै जानि सकैगा किंतु किसीभी प्रमाणकरिकै जानि सकै नहीं इति । ऐसे स्वयंज्योति आत्माकूं अपणे प्रकाशवासतै किसीभी प्रमाणकी अपेक्षा है नहीं किंतु अपणेविषे कल्पित जो अज्ञान है तथा ता अज्ञानका कार्य है ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्तिवासतै ता स्वयंज्योति आत्माकूं कल्पित वृत्तिविशेषकी अपेक्षा है काहेतैं जैसा यक्ष होवै तैसाही तिसका बलि

होवै है या शास्त्रके न्यायतैं कल्पित वस्तुका कल्पित वस्तुही विरोधी सिद्ध होवै यातैं कल्पित अंतःकरणकी वृत्तिकरिकै कल्पित कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति संभवै है। और कल्पित सर्व प्रपंचकी निवृत्ति करणेहारी सा अंतःकरणकी वृत्तिविशेष केवल तत्त्वमसि आदिक वाक्यमात्रतैंही उत्पन्न होवै है प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै उत्पन्न होवै नहीं यातैं ता वृत्तिविशेषकी उत्पत्तिवासतै शास्त्रका आरंभभी सफल है। और सो चैतन्यस्वरूप आत्मादेव सर्व कालविषे स्वतःही प्रकाशमान् है तथा सर्व कल्पनाका अधिष्ठान है तथा सर्व दृश्यप्रपंचका प्रकाशक है। ऐसे स्वप्रकाश अधिष्ठान आत्माविषे वंध्यापुत्र शशशृंगादिकोंकी न्याई असत्यरूपता संभवै नहीं। और "एकमेवाद्वितीयं सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादिक शास्त्र अद्वितीयब्रह्मतैं भिन्न सर्व जगतविषे कल्पितपणेकूं कथन करता हुआ अपणेविषेभी कल्पितरूपताकूं बोधन करै है। जो कदाचित् सो शास्त्र अपणेविषे कल्पितपणेकूं नहीं बोधन करैगा तौ सो शास्त्र सद्वितीय ब्रह्मकूं अद्वितीयरूपकारिकै बोधन करता हुआ आपही अप्रमाणरूप होवैगा। और कल्पित वस्तु अकल्पित वस्तुके परिच्छेदकूं करै नहीं यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं यातैं ता स्वप्रकाश आत्माविषे भेदरूप वस्तुपरिच्छेदकीभी प्राप्ति होवै नहीं। किंवा। सर्वकालविषे आत्माकी स्वप्रकाशता केवल श्रुतिप्रमाणकरिकैही सिद्ध नहीं है किंतु भगवान् भाष्यकारोंनैं युक्तितैंभी सा आत्माकी स्वप्रकाशता सिद्ध करी है। सा युक्ति यह है—जिस पुरुषकूं जिस वस्तुविषे संशय, विपर्यय, व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी नहीं होवै है तिस पुरुषकूं तिस वस्तुविषे तिन संशयादिकोंका विरोधी ज्ञान अवश्य करिकै होवै है। या प्रकारका नियम सर्वत्र देखणेविषे आवै है। जैसे जिस पुरुषकूं जिस घटविषे घट है अथवा नहीं है या प्रकारका संशय तथा घट नहीं है या प्रकारका विपर्यय तथा घट नहीं है या प्रकारकी व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी नहीं होवै है तिस पुरुषकूं तहां तिन संशयादिक तीनोंका विरोधी 'घटोऽस्ति' या प्रकारका ज्ञान अवश्यकरिकै होवै है जो कदाचित् सो विरोधी ज्ञान तहां नहीं होवै तौ तिन संशयादिक तीनोंविषे कोई एक अवश्य होणा चाहिये। और आत्माविषे तौ किसीभी पुरुषकूं मैं हूं अथवा नहीं हूं या प्रकारका संशय तथा मैं नहीं हूं या प्रकारका विपर्यय तथा मैं नहीं हूं या प्रकारकी व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी होवै नहीं यातैं तिन सर्व पुरुषोंकूं सर्वकालविषे तिन संशयादि-

कोंका विरोधी आत्माके वास्तवस्वरूपका ज्ञान अवश्य कहणा होवैगा। जो कदाचित् सो आत्माके स्वरूपका ज्ञान नहीं होवै तौ तिन संशयादिक तीनोंविषे कोई एक अवश्य करिकै होणा चाहिये। और आत्माविषे ते संशयादिक होते नहीं यातैं सो आत्मा सर्वकालविषे स्वप्रकाशरूप है इति। किंवा। वेदांतसिद्धांतविषे सो स्वप्रकाशज्ञान आत्माके आश्रित रहै नहीं किंतु ता स्वप्रकाशज्ञानरूपही आत्मा है। जो कदाचित् आत्माकूं ता ज्ञानका आश्रय मानिये तौ जो वस्तु जिस ज्ञानका आश्रयरूप कर्त्ता होवै है सोईही वस्तु तिस ज्ञानका विषयरूप कर्म होवै नहीं किंतु ज्ञानका कर्त्ता तथा कर्म भिन्न भिन्न होवै है यातैं ता ज्ञानकरिकै आत्माकी सिद्धि नहीं होवैगी। किंवा। आत्माकूं जो ज्ञानतैं भिन्न मानिये तौ जो जो पदार्थ ज्ञानतैं भिन्न होवै है सो सो पदार्थ जडही होवै है। जैसे ज्ञानतैं भिन्न होणेतैं घटादिक पदार्थ जडरूप हैं तैसे ज्ञानतैं भिन्न होणेतैं आत्माभी जडरूप होवैगा। और जो जो पदार्थ जड होवैं हैं सो सो पदार्थ कल्पित होवैं हैं। जैसे जड होणेतैं घटादिक पदार्थ कल्पित हैं तैसे जड होणेतैं आत्माभी कल्पित होवैगा। आत्माके कल्पित हुए शून्यवादकी प्राप्ति होवैगी यातैं आत्मा ज्ञानतैं भिन्न नहीं है। किंतु आत्मा स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपही है। ऐसा स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप हुआभी यह आत्मा अविद्यारूप उपाधिके संबंधतैं साक्षी कह्याजावै है। और वृत्तिमत् अंतःकरणरूप उपाधिके संबंधतैं प्रमाता कह्या जावै है। तिसी प्रमाताके यह चक्षुआदिक इंद्रिय करण होवैं हैं। और सोईही प्रमाता तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंद्वारा अंतःकरणके वृत्तिरूप परिणामके साथि बाह्य घटादिक पदार्थोंकूं व्याप्य करिकै तिन घटादिकोंके आकार होवै है। तिस अंतःकरणके एकही वृत्तिरूप परिणामविषे घटावच्छिन्न चैतन्य तथा अंतःकरणावच्छिन्न चैतन्य दोनों एकताभावकूं प्राप्त होवैं हैं। जैसे गृहविषे घटके प्राप्त हुए ता गृहाकाशकी तथा घटाकाशकी एकता होवै है। तैसे वृत्तिरूप उपाधिके तथा घटरूप उपाधिके एकदेशविषे स्थित हुए ता वृत्तिउपहित चेतनकी तथा घटउपहित चेतनकी एकता होवै है। तिसतैं अनंतर सो घटावच्छिन्न चैतन्य प्रमाता चैतन्यके अभेदतैं अपणे अज्ञानकूं नाश करता हुआ अपरोक्ष होवै है। और अपणा उपाधिरूप जो घट है ता घटकूं अपणे तादात्म्य अध्यासतैं सो चैतन्य प्रकाश करै है। और अत्यंत

स्वच्छ जो अंतःकरणकी परिणामरूप वृत्ति है ता वृत्तिकूं ता वृत्तिउपहित चैतन्य प्रकाश करै है। इस प्रकार अंतःकरण, वृत्ति, घट या तीनोंकी अपरोक्षता होवै है। 'अहं जानामि घटम्' यह तीनोंके अपरोक्षताका आकार है। इस प्रकार अंतरबाहिर स्थित सर्व अनात्मपदार्थोंकूं प्रकाशकरणेहारा चैतन्य यद्यपि एकरूप है तथापि घटादिक बाह्य पदार्थोंके प्रकाश करणेविषे ता चैतन्यकूं अंतःकरणके वृत्तिकी अपेक्षा रहै है। या कारणतैंही ता चैतन्यविषे प्रमातापणा है। और अंतःकरणके तथा ता अंतःकरणकी वृत्तियोंके प्रकाश करणेविषे ता चैतन्यकूं किसी वृत्तिकी अपेक्षा है नहीं या कारणतैंही ता चैतन्यविषे साक्षीरूपता है। जो कदाचित् सो चैतन्य अंतःकरणके वृत्तिकूं घटादिकोंकी न्यांई दूसरी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकै प्रकाश करैगा तौ ता दूसरी वृत्तिकूं तीसरी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकै प्रकाश करैगा ता तीसरीवृत्तिकूं चतुर्थ वृत्तिकरिकै प्रकाश करैगा। या प्रकार वृत्तियोंकी धारा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैगी यातैं सो साक्षी आत्मा अपणे स्वरूपतैंही अंतःकरणकूं तथा ताके वृत्तियोंकूं प्रकाश करै है। तिनोंके प्रकाशविषे वृत्तिकी अपेक्षा करै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस कारणतैं पूर्व उक्त श्रुतियुक्तियों-करिकै यह स्वप्रकाश स्फुरणरूप आत्मा सर्वदा नित्य है तथा सर्वत्र व्यापक है तथा जन्ममरणरूप संसारतैं रहित है तथा सर्व पदार्थोंका प्रकाशक है तथा सर्वदा एकरूप है। तिस कारणतैं ऐसे अविनाशी आत्माके नाशकी शंका करिकै अपणे युद्धरूप धर्मविषे पूर्व प्रवृत्त हुए तुम्हारेकूं तिस युद्धतैं उपराम होणा योग्य नहीं है। या प्रकारका वचन श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहै हैं (तस्माद्युद्धयस्व भारत) इति। तात्पर्य यह। स्वप्रकाशज्ञानरूप आत्मा तौ कदाचित्भी नाश होवै नहीं। और यह भीष्मद्रोणादिकशरीर तौ मिथ्यारूप हैं तथा अनित्य हैं। यातैं ते शरीर आपही नष्ट हुए जैसे हैं। ऐसे अनित्य शरीरोंके हननतैं निवृत्त होइकै तूं अपणे स्वधर्मकूं नाश मत कर इति। इहां (युद्धयस्व) या वचनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति युद्धरूप कर्मका विधान नहीं करा। किंतु ता वचन-करिकै भगवान्नैं पूर्व प्राप्त युद्धका अनुवाद मात्र करा है। काहेतैं आत्मज्ञानके उपदेशप्रसंगमैं ता युद्धरूप धर्मकी विधि संभवै नहीं। किंतु, भगवान्के उपदेशतैं विनाही सो अर्जुन पूर्व युद्धविषे प्रवृत्त हुआ था। परंतु शोकमोहके वशतैं सो अर्जुन ता युद्धतैं निवृत्त होता भया। सो शोकमोह भगवान्के उपदेशजन्यज्ञानतैं

निवृत्त होता भया । यातैं 'अपवादाऽपवादे उत्सर्गस्य स्थितिः' या न्यायकरिकै (युद्धयस्व) यह भगवान्‌का वचन अनुवादरूपही है विधिरूप नहीं । इहां पूर्व प्राप्त युद्धका शोक मोह अपवाद है और ता शोकमोहका विचारजन्य ज्ञान अपवाद है । ता शोकमोहरूप अपवादके विचारजन्य ज्ञानरूप अपवादके विद्यमान हुए तहां पूर्वप्राप्त युद्धरूप उत्सर्गकीही स्थिति होवै है । जैसे भोजन करणेविषे प्रवृत्त हुआ क्षुधावान् पुरुष किसी अशुद्धि आदिकोंकी शंकाकरिकै ता भोजनतैं निवृत्त होइ जावै और कोई धर्मात्मा पुरुष ताके शंकाकी निवृत्ति करिकै ता पुरुषके प्रति तूं भोजन कर या प्रकारका वचन कहै । इहां तूं भोजन कर या प्रकारका वचन विधि-रूप नहीं है किंतु पूर्व प्राप्त भोजनका अनुवादरूप है । पूर्व अप्राप्त अर्थके बोधन करणेहारा वचनही विधिरूप होवै है । और कोईक ग्रंथकार तौ (युद्धयस्व) या वचनकूं विधिरूप मानिके मोक्षकी प्राप्तिविषे ज्ञान कर्म दोनोंका समुच्चय अंगी-कार करे हैं सो तिनोंका कहणा असंगत है । काहेतैं (युद्धयस्व) या वचनकूं मोक्षकी प्राप्ति ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयतैं होवै है यह अर्थ प्रतीत होवै नहीं । और ज्ञान कर्मका समुच्चय आगे विस्तारतैं खंडन करैंगे ॥ १८ ॥

हे भगवन् ! (अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै भीष्मद्रोणा-दिक बांधवोंके नाशजन्य शोकके निवृत्त हुएभी तिन भीष्मद्रोणादिकोंके नाशकरणे-तैं उत्पन्न होणेहारा जो पाप है ता पापके निवृत्त करणेका कोई उपाय है नहीं । और जो आप यह कहो जहां शोक नहीं होवै है तहां पापभी नहीं होवै है । सो यह नियम संभवता नहीं । काहेतैं किसी पुरुषनैं अपणे शत्रु ब्राह्मणका हनन करा । तहां ता शत्रु ब्राह्मणके हनन करणेविषे ता पुरुषकूं शोक तो होवै नहीं । यातैं ता पुरुषकूं ता ब्रह्महत्याजन्य पापभी नहीं होणा चाहिये । और शोकके नहीं हुएभी ता पुरुषकूं पाप तौ अवश्यकरिकै होवै है । यातैं भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन कर्त्ता जो मैं अर्जुन हूं तथा तिनोंके हनन करणेविषे हमारेकूं प्रेरणा करणे-हारे जो आप हो तिन हम दोनोंकूंही ता बांधवोंकी हिंसातैं पाप अवश्यकरिकै होवैगा यातैं तूं युद्ध कर, यह जो वचन पूर्व आपनैं कथनकरा है सो असंगत है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कठवल्लीउपनिषद्‌के मंत्रकरिकै ता शंकाकी निवृत्ति करैं हैं–

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥१९॥

(पदच्छेदः) यः। एनम्। वेत्ति। हंतारम्। यः। च। एनम्। मन्यते। हतम्। उभौ। तौ। न। विजानीतः। न। अयम्। हंति। न। हन्यते॥१९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्माकूं हननकर्त्ता जानै है तथा जो पुरुष इस आत्माकूं हनन हुआ मानै है ते दोनों पुरुष आत्माकूं नहीं जानते हैं काहेतैं यह आत्मा किसीकूंभी नहीं हनन करै है तथा आपभी नहीं हननकूं प्राप्त होवै है ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व हमनैं कथन करा जो अविनाशी अप्रमेयरूप देही आत्मा है । ता आत्माकूं जो पुरुष मैं इस वस्तुका हनन करणेहारा हूं या प्रकार हननरूप क्रियाका कर्त्ता जाने है । और जो पुरुष इस आत्मादेवकूं देहके हनन करिकै मैं हनन हुआ हूं या प्रकार हननक्रियाका कर्मरूप जाने है, ते दोनों पुरुष देहाभिमानी होणेतैं कर्त्ताकर्मभावतैं रहित अधिकारी आत्माकूं शास्त्र प्रमाणतैं देहादिकोंतैं भिन्न करिकै जानते नहीं । क्यूं नहीं जानते जिस कारणतैं यह आत्मादेव किसीभी प्राणीकूं हनन करता नहीं । तथा आपभी किसी करिकै हनन होता नहीं ।ऐसे हनन क्रियाके कर्त्ताकर्मभावतैं रहित आत्मादेवकूं जे मूढ पुरुष ता हननक्रियाका कर्तारूप तथा कर्मरूप माने हैं ते मूढ पुरुष आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं । इहां यद्यपि (य एनं वेत्ति हंतारं हतं वा) इतनैं वचनमात्र कहणेकरिकैही ता पूर्व उक्त अर्थकी सिद्धि होइ सकै है । यातैं (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्) यह दोवार पदोंकी आवृत्ति करणी निष्फल है तथापि सा पदोंकी आवृत्ति वाक्यके अलंकारवासते है इति ।अथवा (य एनं वेत्ति हंतारम्) या वचनकरिकै नैयायिकोंका कथन करा है । काहेतैं ते नैयायिक आत्माकूंही हननादिक क्रियावोंका कर्ता माने हैं और (यश्चैनं मन्यते हतं) या वचनकरिकै चार्वाकोंका कथन करा है । काहेतैं ते चार्वाकादिक शरीरादिरूप आत्माकूं नाशवान् माने हैं । ते नैयायिक तथा चार्वाक दोनों आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं । या प्रकार तिन वादियोंके भेद जनावणेवासतै सा दोवार पदोंकी आवृत्ति करी है इति । अथवा जे पुरुष आत्माकूं हननक्रियाका कर्ता जानैहैं

ते पुरुष अत्यंत शूरवीर हैं और जे पुरुष ता आत्माकूं हननक्रियाका कर्म मानै हैं ते पुरुष अत्यंत कायर हैं या प्रकारके भेद जनावणेवासतै सा दोवार पदोंकी आवृत्ति करी है इति। इहां (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्) या श्लोकके पूर्वार्द्धविषे " हंता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् " या कठवल्ली श्रुतिके पूर्वार्द्धका अर्थ निरूपण करा । श्रुतिका तथा श्लोकका उत्तरार्द्ध एकसरीखाही है ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! यह आत्मादेव ता हननरूप क्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप किस कारणतैं नहीं होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यह आत्मादेव जन्मादिक सर्व विकारोंतैं रहित है यातैं ता हननरूप क्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप होवै नहीं । या प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् ता कठवल्ली उपनिषद्के द्वितीय मंत्र करिकै कथन करै हैं-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥ अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ २०॥

(पदच्छेदः) न । जायते । म्रियते । वा । कदाचित् । न । अयम् । भूत्वा । भविता । वा । न । भूयः । अजः । नित्यः । शाश्वतः । अयम् पुराणः । न । हन्यते । हन्यमाने । शरीरे ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव नहीं जन्मे है तथा नहीं मरे है तथा यह आत्मा कदाचित्भी पूर्व नहीं होईकरिकै पुनः उत्पत्तिमान् नहीं होवै है जिस कारणतैं यह आत्मादेव अज है तथा अनित्य है तथा शाश्वत है तथा पुराण है ऐसा आत्मा शरीरके हनने हुएभी नहीं हनने होवै है ॥ २० ॥

भा० टी०-जन्म, अस्ति, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश यह षट् भावविकार शास्त्रविषे कथन करे हैं तिन षट् विकारोंविषे आद्यके जन्मरूप विकारका तथा अंतके नाशरूप विकारका श्रीभगवान् खंडन करे हैं (न जायते म्रियते वेति) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव जन्मकूं प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं यह आत्मादेव किसीभी कालविषे पूर्व नहीं होइकै पश्चात् उत्पतिवाला होता नहीं । जो पदार्थ पूर्व नहीं होइकै पश्चात् होवै है, सो पदार्थही उत्पत्तिरूप विक्रियाकूं प्राप्त

होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ पूर्व नहीं होइके पश्चात् होवै हैं । यातैं ते घटादिक पदार्थ उत्पत्तिरूप विकारवालेभी हैं । और यह आत्मादेव तौ पूर्वकालविषेभी विद्यमान है । यातैं यह आत्मादेव उत्पत्तिरूप विकारकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव अज है और यह आत्मादेव मरणरूप विकारकूंभी प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं यह आत्मादेव पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै कदाचित्भी उत्तरकालविषे अविद्यमान होवै नहीं । जो पदार्थ पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै उत्तरकालविषे नहीं विद्यमान होवै है सो पदार्थही मरणरूप विकारकूं प्राप्त होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै उत्तरकालविषे अविद्यमान होवै हैं । यातैं ते घटादिक पदार्थ नाशरूप विकारकूंभी प्राप्त होवैं हैं । और यह आत्मादेव तौ ता उत्तरकालविषेभी विद्यमान है यातैं यह आत्मादेव मरणरूप विकारकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव नित्य है विनाश होणेके योग्य नहीं है। इहां (न जायते म्रियते वा) या वचनकरिकै आत्माके जन्ममरणके अभावकी प्रतिज्ञा करी । और (कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः) या वचनविषे स्थित पदोंकी दो प्रकारतैं योजना करिकै ता प्रतिज्ञाका उपपादन करा और (अजो नित्यः) या वचनकरिकै ता प्रतिज्ञाका उपसंहार करा । इहां जन्मादिक षट्विकारोंविषे जन्मरूप जो आदिका विकार है तथा मरणरूप जो अंतका विकार है तिन दोनों विकारोंके निषेधकरिकै यद्यपि तिन दोनों विकारोंके मध्यवर्त्ति तथा तिन दोनों विकारोंके व्याप्त जो चारि विकार हैं, तिनोंका निषेध होइ सकै है । तथापि इहां नहीं कथन करे जो गमन आगमनादिक विकार हैं तिन सर्व विकारोंके निषेधके जनावणेवासतै श्रीभगवान् अपक्षय, वृद्धि या दोनों विकारोंका शाश्वत पुराण या दोनों शब्दोंकरिकै निषेध करैं हैं (शाश्वत इति) तहां यह आत्मादेव कूटस्थतारूप नित्यतावाला है । यातैं या आत्मादेवका स्वरूपतैं अपक्षय होवै नहीं । और यह आत्मादेव निर्गुण है । यातैं या आत्मादेवका गुणतैंभी अपक्षय होवै नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव शाश्वत है । जो वस्तु अपक्षय अपचयतैं रहित होके सर्व कालविषे विद्यमान होवै है ता वस्तुका नाम शाश्वत है । ऐसा यह आत्मादेवही है । शंका—हे भगवन् ! यह आत्मादेव अपक्षयकूं तौ मत प्राप्त होवै तौभी वृद्धिकूं किसवासतै नहीं प्राप्त होवै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए भगवान् कहैं हैं (पुराण इति) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव इसतैं पूर्वभी

नवीनही था । कोई इस लोकविषे यह आत्मादेव नवीन अवस्थाकूं प्राप्त भया नहीं । यातैं यह आत्मादेव पुराण है । तात्पर्य यह । सर्व कालविषे यह आत्मादेव एकरूप है इति । और या लोकविषे जो पदार्थ किसी उपचयरूप नवीन अवस्थाकूं प्राप्त होवै है । सो पदार्थही वृद्धिकूं प्राप्त होवै है । जैसे शरीरादिक पदार्थ हैं और यह आत्मादेव तौ सर्व कालविषे एकरूपही है यातैं यह आत्मादेव अपचयकूं तथा उपचयकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव वृद्धिकूं प्राप्त होवै नहीं । इहां ज्वरादिक रोगोंकरिकै जो शरीरके अवयवोंकी क्षीणता है ताका नाम अपचय है । और अन्नादिकोंके भक्षणकरिकै जो शरीरके अवयवोंकी वृद्धि है ताका नाम उपचय है । इहां अस्ति, विपरिणाम यह दोनों विकार जन्म, नाश या दोनों विकारोंके अंतर्भूत हैं । यातैं तिन दोनों विकारोंका पृथक् निषेध करा नहीं । ता जन्ममरणके निषेधकरिकै अस्ति, विपरिणाम या दोनोंका निषेधभी जानि लेणा । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह आत्मादेव जन्मादिक सर्व विकारोंतैं रहित है । तिस कारणतैं शस्त्रादिक उपायोंकरिकै या शरीरके हनन हुएभी ता शरीरके कल्पित संबंधवाला हुआभी यह आत्मादेव किसीभी उपाय करिकै हननकूं प्राप्त होवै नहीं । जैसे घटरूप उपाधिके नाश हुएभी आकाशका नाश होवै नहीं । तैसे देहादिक उपाधियोंके नाश हुएभी आत्माका नाश होवै नहीं । तहां श्रुति "अविनाशी वाऽरेऽयमात्मा" । अर्थ यह—हे मैत्रेयी ! यह आत्मादेव विनाशतैं रहित है ॥ २० ॥

पूर्व (य एनं वेत्ति हंतारं) या श्लोकविषे (नायं हंति न हन्यते) या वचनकरिकै आत्मा नहीं तौ किसीकूं हनन करता है और नहीं किसीकरिकै हत होता है या प्रकारकी प्रतिज्ञा करी थी । तहां आत्मा किसीकरिकैभी हनन नहीं होता है । या प्रतिज्ञाका तौ पूर्व श्लोकविषे विस्तारतैं उपपादन करा । अब आत्मा किसीकूंभी हनन नहीं करता है या प्रतिज्ञाका उपपादन करता हुआ श्रीभगवान् पूर्व प्रसंगका उपसंहार करै हैं—

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) वेद । अविनाशिनम् । नित्यम् । यः । एनम् । अजम् । अव्ययम् । कथम् । सः । पुरुषः । पार्थ । कम् । घातयति । हंति कम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! जो पुरुष इस आत्मादेवकूं अविनाशीरूप नित्यरूप अजरूप अव्ययरूप जाने है सो पुरुष किसकूं हनन करै है तथा किसं प्रकारकरिकै हनन करे है और सो पुरुष किसकूं हनन करावै है तथा किस प्रकारकरिकै हनन करावै है किंतु सो पुरुष न किसीकूं हनन करे है तथा न किसीका हनन करावै हैं ॥२१॥

भा० टी०–विनाश होणेका नहीं है स्वभाव जिसका ताकूं अविनाशी कहै हैं। ऐसा विनाशरूप अंतविकारतैं रहित जो आत्मा है ताके अविनाशीपणेविषे हेतु कहै हैं (अव्ययम् इति) नहीं विद्यमान है अवयवोंका अपचयरूप तथा गुणोंका अपचयरूप व्यय जिसविषे ताका नाम अव्यय है । या लोकविषे पटादिक पदार्थोंका तंतु आदिक अवयवोंके अपचयकरिकै तथा रूपादिक गुणोंके अपचयकरिकै विनाश देखणेविषे आवै है । और यह आत्मादेव तौ निरवयव होणेतैं अवयवोंके अपचयतैं रहित है तथा निर्गुण होणेतैं गुणोंके अपचयतैं रहित है। यातैं या आत्मादेवका कदाचित्भी विनाश संभवै नहीं। या कहणेतैं यह अनुमान सिद्ध भया। आत्मा अविनाशी होणेकूं योग्य है । अव्यय होणेतैं जो पदार्थ अविनाशी नहीं होवै है सो पदार्थ अव्ययभी नहीं होवै है जैसे पटादिक पदार्थ हैं इति । शंका–हे भगवन् ! आत्मा विनाशी होणेकूं योग्य है जन्य होणेतैं घटादिकोंकी न्याईं या प्रकार जन्यत्व हेतुकरिकै आत्माविषे विनाशीपणेका अनुमानभी होइ सकै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् आत्माविषे ता जन्यत्वहेतुकी असिद्धि कथन करैं हैं। (अजम् इति) जो कदाचित्भी जन्मकूं नहीं प्राप्त होवै ताका नाम अज है । ऐसा जन्मरूप आद्यविकारतैं रहित आत्मा है । ता अजपणेविषे हेतु कहैं हैं । (नित्यम् इति) जो सर्वकालविषे विद्यमान होवै ताका नाम नित्य है । और या लोकविषे जो पदार्थ पूर्व नहीं विद्यमान होवै है ता पदार्थकाही जन्म देखणेविषे आवै है । जैसे घटपटादिक पदार्थ अपणी उत्पत्तितैं पूर्व नहीं विद्यमान हुएही पश्चात् जन्मकूं प्राप्त होवै हैं । और यह आत्मादेव तौ सर्व कालविषे विद्यमान है । यातैं या आत्मादेवका कदाचित्भी जन्म संभवै नहीं । या कहणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया । आत्मा जन्मतैं रहित होणेकूं योग्य है । नित्य होणेतैं जो पदार्थ जन्मतैं रहित नहीं होवै है सो पदार्थ नित्यभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । अथवा । अविनाशी या पदकरिकै बाधतैं रहित सत्यवस्तुका ग्रहण करणा । और नित्य या शब्दकरिकै सर्वत्र व्यापक वस्तुका

ग्रहण करणा । ताकेविषे हेतु कहैं हैं । (अजं अव्ययम् इति) इहां जन्मतैं रहित वस्तुका नाम अज है । और नाशतैं रहित वस्तुका नाम अव्यय है । और या लोकविषे जो पदार्थ उत्पत्तिमान् होवै है तथा नाशवान् होवै है सो पदार्थ सत्यरूप तथा सर्वत्र व्यापक होवै नहीं । जैसे उत्पत्तिनाशवान् घटादिक पदार्थ सत्यरूप नहीं हैं तथा सर्वत्र व्यापकभी नहीं हैं । और यह आत्मादेव तौ उत्पत्तिनाशतैं रहित है । यातैं यह आत्मादेव सत्यरूप है तथा सर्वत्र व्यापक है । या कहणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया । आत्मा अविनाशी तथा नित्य होणेकूं योग्य है अज तथा अव्यय होणेतैं जो पदार्थ अविनाशी तथा नित्य नहीं होवै है सो पदार्थ अज तथा अव्ययभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । इस प्रकार अविनाशीरूप तथा नित्यरूप तथा अजरूप तथा अव्ययरूप जो यह आत्मादेव है ता आत्मादेवकूं जो पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतैं मैं जन्मादिक सर्व विकारोंतैं रहित हूं तथा बुद्धि आदिक सर्व पदार्थोंका प्रकाशक हूं तथा सर्व द्वैतप्रपंचतैं रहित हूं तथा परमानंदबोधरूप हूं या प्रकार साक्षात्कार करै है, सो विद्वान् पुरुष किसकूं हनन करै है तथा किस प्रकारकरिकै हनन करै है । किंतु सो विद्वान् पुरुष किसीकूंभी हनन करता नहीं । तथा किसी प्रकारकरिकैभी हनन करता नहीं । और सो विद्वान् पुरुष किसकूं हनन करावै है । तथा किस प्रकारकरिकै हनन करावै है । किंतु सो विद्वान् पुरुष किसकूंभी हनन करावता नहीं । तथा किसी प्रकारकरिकैभी हनन करावता नहीं । काहेतैं जन्मादिक सर्व विकारोंतैं रहित तथा कर्त्तापणेतैं रहित जो विद्वान् पुरुष है ता विद्वान् पुरुषकूं ता हननरूप क्रियाविषे साक्षात्कर्त्तापणा तथा प्रयोजककर्त्तापणा संभवै नहीं । तहां श्रुति । "आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्" । अर्थ यह–यह विद्वान् पुरुष जभी परिपूर्ण अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं या प्रकार आत्माकूं जानै है तभी यह विद्वान् पुरुष किस वस्तुकी इच्छा करता हुआ किसके प्रयोजनवासतै या शरीरकूं संताप करैगा । किंतु नहीं करैगा इति । यह श्रुति शुद्ध आत्माके जानणेहारे विद्वान् पुरुषविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक संसारके अभावकूं बोधन करै है । तात्पर्य यह । शुद्ध आत्माके ज्ञानकरिकै या विद्वान् पुरुषके अज्ञानकी निवृत्ति होवै है । ता अज्ञानके निवृत्त हुए अहं मम अध्यासकी निवृत्ति होवै है । ता अध्यासके निवृत्त हुए रागद्वेषादिकोंकी निवृत्ति होवै है । ता

रागद्वेषादिकोंके निवृत्त हुए कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिकोंकी निवृत्ति होवै है । इस प्रकार आत्माका ज्ञानही सर्व अनर्थोंके निवृत्तिका कारण है । यहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्‌का यह अभिप्राय है । वास्तवतैं विचारकरिकै देखिये तौ यह आत्मादेव सर्व विकारोंतैं रहित है यातैं कोईभी किसी कार्यकूं करता नहीं तथा करावता नहीं । तथापि यह मूढ पुरुष अज्ञानके वशतैं स्वप्नकी न्याईं अपणे आत्माविषे कर्तृत्वादिक धर्म मानै है । यह वार्ता (उभौ तौ न विजानीतः) या गीताके वचनकरिकै पूर्व कथन करि आये हैं । तहां श्रुतिभी । "ध्यायतीव लेलायतीव" । अर्थ यह—वास्तवतैं सर्व विकारोंतैं रहित यह आत्मादेव बुद्धिरूप उपाधि जभी ध्यान करै है तभी ध्यान करताकी न्याईं प्रतीत होवै है और बुद्धिरूप उपाधि जभी चलायमान होवै है तभी चलायमान हुएकी न्याईं प्रतीत होवै है इति । इसी कारणतैं सर्व शास्त्र अविद्वान् अधिकारीके वासतैही कथन करैं हैं विद्वान् पुरुषके वासतै कोईभी शास्त्र है नहीं । काहेतैं सो विद्वान् पुरुष तौ आत्मज्ञानकरिकै अज्ञानरूप मूलसहित अध्यासकै निवृत्त हुए आत्माविषे कर्तृत्वादिक मानता नहीं । जैसे स्थाणुके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा पुरुष ता स्थाणुविषे चोरपणा मानता नहीं । तैसे आत्माके अकर्तृत्वादिक वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा सो विद्वान् पुरुष ता आत्माविषे कर्त्तापणा मानता नहीं । यातैं यह सिद्ध भया । सर्व विकारोंतैं रहित होणेतैं तथा अद्वितीयरूप होणेतैं सो विद्वान् पुरुष हननादिक क्रियाकूं न करता है न करावता है । तहां श्रुति " आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति " । अर्थ यह—ब्रह्मके स्वरूपभूत आनंदकूं जानणेहारा विद्वान् पुरुष किसीतैंभी भयकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इहां भयका निषेध सर्व विकारोंके निषेधका उपलक्षक है । इस प्रकार वास्तवतैं आत्माविषे कर्तृत्वादिकोंके अभाव हुएभी सो अर्जुन अपणेविषे ता हननरूप क्रियाका कर्त्तापणा आरोपण करिकै तथा श्रीभगवान्‌विषे ता हननरूप क्रियाका प्रयोजककर्त्तापणा आरोपण करिकै अपणेविषे तथा भगवान्‌विषे ता हिंसाजन्य दोषकी शंका करता भया । और श्रीभगवान्‌भी ता अर्जुनके अभिप्रायकूं जानि करिकै ता अर्जुनविषे हननरूप क्रियाके कर्त्तापणेका निषेध करता भया और अपणेविषे ता हननरूप क्रियाके प्रयोजककर्त्तापणेका निषेध करता भया । तहां जो पुरुष आप तौ तिस क्रियाकूं करै नहीं और तिस क्रियाविषे

दूसरेकूं प्रेरणा करै है ता पुरुषकूं प्रयोजककर्त्ता कहैं हैं। तात्पर्य यह—यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्व विकारोंतैं रहित है । यातैं अपणेविषे ता हननरूप क्रियाका कर्त्तापणा आरोपण करिकै तथा हमारेविषे ता हननरूप क्रियाका प्रयोजककर्त्तापणा आरोपण करिकै तुमनैं पापके प्राप्तिकी शंका कदाचित्भी नहीं करणी इति । इहां श्रीभगवान्नैं आत्माविषे अविक्रियता दिखाइकै कर्तृत्वका निषेध करा । तिसतैं यह जान्या जावै है । श्रीभगवान्का सर्व कर्मोंके निषेधविषे तात्पर्य है । केवल हननरूप क्रियाके निषेधविषे तात्पर्य नहीं है। यातैं मूल-श्लोकविषे जो केवल हननक्रियाका निषेध करा है सो निषेध सर्व कर्मोंके निषे-धका उपलक्षक है। पूर्व प्रसंगविषे हननरूप क्रियाही प्राप्त है। या कारणतैं भगवान्नैं ता हननरूप क्रियाका निषेध करा है। परंतु ता हननरूप क्रियाके निषेध करिकै सर्व कर्मोंका निषेधही भगवान्कूं संमत है । काहेतैं अविक्रियत्वरूप हेतु आत्माविषे जैसे हननरूप क्रियाका निषेध करै है तैसे दूसरे सर्व कर्मोंकाभी निषेध करै है । केवल हननरूप क्रियाका निषेध करै नहीं। या कारणतैंही (तस्य कार्यं न विद्यते) या वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही सर्व कर्मोंका विषेध आगे कथन करैगा । या कहणेकरिकै या प्रकारकी मूढ जनोंकी शंकाकाभी खंडन हुआ जानणा । सा शंका यह है—(कं घातयति हंति कं) या वचन करिकै भगवान्नैं केवल हननरूप क्रियाका निषेध करा है दूसरे कर्मोंका निषेध करा नहीं । यातैं ता हननरूप कर्मतैं भिन्न दूसरे कर्म तौ भगवान्कूंभी कर्त्तव्यता-रूपकरिकै अंगीकार हैं इति । सो यह वादीकी शंका संभवै नहीं । काहेतैं (तस्माद्युद्धयस्व भारत) या वचनकरिकै हननरूप कर्मका तौ भगवान्नैं आपही विधान करा है । यातैं (कं घातयति हंति कं) या वचनका आत्मा वास्तवतैं हननक्रियाका कर्त्ता नहीं है यह अर्थही अंगीकार करणा होवेगा । सो आत्मा-विषे वास्तवतैं कर्त्तापणेका अभाव जैसे हननरूप क्रियाविषे है तैसे दूसरे कर्मोंवि-षेभी समान है इति ॥ २१ ॥

हे भगवन् ! पूर्व उक्त श्रुतियुक्तियोंकरिकै यद्यपि आत्माविषे तौ अविनाशी-पणाही सिद्ध होवै है, तथापि या स्थूल शरीरोंविषे सो अविनाशीपणा है नहीं । किंतु यह शरीर नाशवान् है और तिन शरीरोंके नाश करणेका साधन यह युद्ध है । यातैं अनेक पुण्यकर्मोंके साधनरूप जो यह भीष्मद्रोणादिकोंके शरीर

हैं तिन शरीरोंका युद्ध करिकै नाश करणा हमारेकूं कैसे उचित होवैगा। किंतु तिन भीष्मद्रोणादिकोंके शरीरका नाश करणा हमारेकूं उचित नहीं है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-न्यानि संयाति नवानि देही॥ २२॥

(पदच्छेदः) वासांसि। जीर्णानि। यथा। विहाय। नवानि। गृह्णाति। नरः। अपराणि। तथा। शरीराणि। विहाय। जीर्णानि। अन्यानि। संयाति। नवानि। देही॥ २२॥

(पादर्थः) हे अर्जुन! जैसे यह पुरुष जीर्ण वस्त्रोंकूं परित्याग करिकै दूसरे नवीन वस्त्रोंकूं ग्रहण करे है तैसे यह देहीभी इन जीर्ण शरीरोंकूं परित्याग करिकै दूसरे नवीन शरीरोंकूं प्राप्त होवै है॥ २२॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन! जैसे विक्रियातैं रहित हुआही यह पुरुष पूर्वले निकृष्ट जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग करिकै दूसरे उत्कृष्ट नवीन वस्त्रोंका ग्रहण करे है, तैसे उत्तम धर्मोंकूं करणेहारे यह भीष्मद्रोणादिक देहीभी अवस्थाकरिकै तथा तपकरिकै कृश हुए या भीष्मादिक नामोंवाले शरीरोंका परित्याग करिकै पूर्व संपादन करे हुए पुण्यकर्मोंके फल भोगणेवासतै सर्वतैं उत्कृष्ट देवतादिक शरीरोंकूं प्राप्त होवै हैं। तहां श्रुति। "अन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गांधर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वा इति"। अर्थ यह–यह जीवात्मा पूर्वले शरीरका परित्याग करिकै पुण्यकर्मोंके वशतैं पितृलोकविषे अथवा गंधर्वलोकविषे अथवा देवलोकविषे अथवा प्रजापतिलोकविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे दूसरे उत्कृष्ट देवताशरीरकूं प्राप्त होवै हैं इति। इतनै कहणे-करिकै यह अर्थ सिद्ध भया। जीवत्कालपर्यंत करा जो धर्मका अनुष्ठान ता अनुष्ठानजन्य क्लेशकरिकै अत्यंत कृश शरीरवाले हुए जो यह भीष्मद्रोणादिक हैं ते भीष्मद्रोणादिक इस वर्त्तमान शरीरके नाशतैं विना ता धर्मानुष्ठानके फल भोगणेविषे समर्थ होइ सकैं नहीं। किंतु तिन स्वर्गादिक सुखोंकी प्राप्तिविषे प्रति-बंधक जो यह वर्त्तमान शरीर हैं तिन वर्तमान शरीरोंके नाशतैं अनंतरही ते भीष्म-

द्रोणादिक तिन स्वर्गादिक सुखोंके भोगणेविषे समर्थ होवैंगे । यातैं धर्मयुद्धकरिकै जबी तूं इन भीष्मद्रोणादिकोंके वर्त्तमान शरीरोंकूं नाश करैगा, तबी यह भीष्मद्रोणादिक या जीर्ण शरीररूप प्रतिबंधतैं रहित होइकै स्वर्गादिक लोकोंविषे दिव्य शरीरकूं प्राप्त होहकै नानाप्रकारके सुखोंकूं प्राप्त होवैंगे । सो यह तिन भीष्मद्रोणादिकोंऊपरि तुम्हारा महान् उपकार है। यातैं तिन भीष्मद्रोणादिकोंका महान् उपकार करणेहारा जो यह युद्ध है ता युद्धविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंका अपकारत्वबुद्धिरूप भ्रमकूं तूं मत कर इति । या प्रकारका भगवान्का अभिप्राय (अपराणि अन्यानि संयाति) या तीन पदोंके कहणेतैं जान्या जावै है। और किसी टीकाविषे तौ या श्लोकका यह अभिप्राय वर्णन करा है । जैसे यह देवदत्तादि नामवाला पुरुष पूर्वले जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग करिकै दूसरे नवीन वस्त्रोंका ग्रहण करैहै । तैसे यह देही आत्माभी पूर्वले जीर्ण शरीरोंका परित्याग करिकै दूसरे नवीन शरीरोंकूं प्राप्त होवै है । तहां जैसे आगमन तथा निर्गमन तथा नामरूपादिकोंकी विचित्रता तथा शिथिलता इत्यादिक सर्व विकार तिन वस्त्रोंविषेही होवैं हैं । ता पुरुषविषे ते विकार होवैं नहीं । तैसे उत्पत्तिनाशादिक सर्व विकार या शरीरोंविषेही होवै हैं। निरवय आत्माविषे ते उत्पत्तिनाशादिक विकार होवैं नहीं । इतने कहणेकारिकै आत्माविषे देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्नपणा तथा सर्व विकारोंतैं रहितपणा तथा नित्यपणा सूचन करा इति ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! जैसे अग्निकरिकै गृहके दाह हुए ता गृहविषे स्थित पुरुषकाभी दाह होइ जावै है । तैसे या स्थूल देहके नाश हुए ता देहके भीतर स्थित आत्माकाभी नाश होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) न । एनम् । छिंदंति । शस्त्राणि । न । एनम् । दहति । पावकः । न । च । एनम् । क्लेदयंति । आपः । न । शोषयति । मारुतः ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस आत्माकूं खड्गादिक शस्त्रभी नहीं छेदन करैं हैं तथा इस आत्माकूं अग्निभी नहीं दाह करे है. तथा इस आत्माकूं जलभी नहीं गालै सकै है तथा इस आत्माकूं वायुभी नहीं शोषण करै है ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे खड्गादिक तीक्ष्ण शस्त्र या स्थूल शरीरकूं छेदन करे हैं। तैसे इस आत्माकूं ते तीक्ष्ण शस्त्रभी छेदन करि सकते नहीं। और जैसे अत्यंत प्रज्वलित अग्नि या शरीरकूं भस्म करे है तैसे सो प्रज्वलित अग्नि या आत्माकूं भस्म करि सकै नहीं। और जैसे अत्यंत वेगवाला जल या शरीरकूं गीला करिकै ताके अवयवोंकी शिथिलतारूप क्लेदन करै है। तैसे सो अत्यंत वेगवाला जलभी या आत्माकूं क्लेदन करि सकै नहीं। और जैसे अत्यंत प्रबल वायु या शरीरादिकोंका नीरसतारूप शोषण करे है। तैसे सो अत्यंत प्रबल वायुभी या आत्माकूं शोषण करि सकै नहीं। यहां यद्यपि जितनेक नाश करणेहारे पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंका आत्मविषे निषेध वांछित है। यातैं केवल शस्त्रादिकोंकाही निषेध करणा उचितन हीं है। तथापि युद्धके समयविषे ते शस्त्रादिकही प्राप्त हैं, यातैं भगवान्नैं तिन शस्त्रादिकोंकाही निषेध करा है। सो शस्त्रादिकोंका निषेध नाश करणेहारे सर्व पदार्थोंके निषेधका उपलक्षक है। अथवा या लोकविषे पृथिवी, जल, अग्नि वायु या चारोंविषेही नाशकी कारणता देखनेमें आवै है। आकाशविषे किसीभी पदार्थके नाशकी कारणता देखणेविषे आवती नहीं। यातैं इहां पृथिवी, जल, तेज, वायु, या चारी भूतोंकाही कथन करा है। आकाशका कथन करा नहीं। और या लोकविषे जितनेक नाशके कारण हैं ते सर्व पृथिवी आदिक चारि भूतोंके अंतरभूतही हैं। यातैं पृथिवी आदिक चारि भूतोंके हैं निषेध करिकै नाश करणेहारे सर्व पदार्थोंका निषेध सिद्ध होइ सकै। तहां खड्गादिक शस्त्र पृथिवीविशेषका विकाररूप होणेतैं पृथिवीरूपही हैं ॥२३॥

हे भगवन् ! आत्माकूं शस्त्रादिक नाश नहीं करि सकते या प्रकारकी प्रतिज्ञामात्रकरिकै अर्थकी सिद्धि होवै नहीं। किंतु किसी हेतुतैंही अर्थकी सिद्धि होवै है। यातैं आत्माकूं ते शस्त्रादिक नाश नहीं करि सकते या प्रतिज्ञाविषे कौन हेतु है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन शस्त्रादिकोंकूं आत्माके नाश करणेकी असामर्थ्यताविषे तथा आत्माकूं तिन शस्त्रादिजन्य नाशकी अयोग्यताविषे हेतु कहै हैं—

अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) अच्छेद्यः । अयम् । अदाह्यः । अयम् । अक्लेद्यः । अशोष्यः । एव च । नित्यः । सर्वगतः । स्थाणुः । अचलः । अयम् । सनातनः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मा अच्छेद्य है तथा यह आत्मा अदाह्य है तथा अक्लेद्य है तथा अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य है तथा सर्वगत है तथा स्थाणु है तथा अचल है तथा सनातन है ॥ २४ ॥

भा॰ टी॰ –हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह आत्मा छेदन करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं खड्गादिक शस्त्र छेदन करि सकते नहीं । और जिस कारणतैं यह आत्मा दाह करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं अग्नि दाह करि सकता नहीं । और जिस कारणतैं यह आत्मा क्लेदन करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं जल क्लेदन करि सकता नहीं । और जिस कारणतैं यह आत्मा शोषण करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं वायु शोषण करि सकता नहीं । इस प्रकार यथाक्रमतैं अच्छेद्यादिक चारि हेतुवोंकी पूर्व श्लोकउक्त प्रतिज्ञाविषे योजना करणी । इहां (एव च) या वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है । सो एवशब्द अच्छेद्यत्वादिक चारोंके साथि संबंधकूं प्राप्त हुआ आत्माविषे छेद्यत्वादिक धर्मोंकी व्यावृत्ति करे है । क्या आत्मा अच्छेद्यही है नतु छेद्य है इस प्रकार अदाह्यत्वादिक धर्मोंविषेभी जानिलेणा । और च यह शब्द तिन अच्छेद्यत्वादिक चारोंके समुच्चय करावणेवासतै है । शंका–हे भगवन् ! जिन अच्छेद्यत्वादिक हेतुवोंके बलतैं आत्माविषे शस्त्रादिकृत छेदनादिकोंका अभाव सिद्ध करते हो तो अच्छेद्यत्वादिक हेतु आत्माविषे रहते नहीं । यातैं तिन अच्छेद्यत्वादिक हेतुवोंकरिकै आत्माविषे छेदनादिकोंका अभाव किस प्रकार सिद्ध होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन अच्छेद्यत्वादिक हेतुवोंकी सिद्धि करणेवासतै श्लोकके उत्तरार्धकरिकै हेतुका कथन करैहैं । (नित्यः इति) हे अर्जुन ! जो पदार्थ पूर्व अपरभाववाला होवै है सो पदार्थ अनित्य होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ पूर्व अपरभाववाले हैं यातैं अनित्य हैं और यह आत्मादेव तौ पूर्व अपरभावतैं रहित है यातैं नित्य है । नित्य होणेतैंही यह आत्मादेव उत्पत्तितैं रहित है और जो पदार्थ सर्वत्र व्यापक नहीं होवै है सो पदार्थ अनित्यही होवै है जैसे घटादिक पदार्थ सर्वत्र

व्यापक नहीं हैं यातैं अनित्यही हैं तैसे यह आत्मादेवभी जो कदाचित् सर्वत्र व्यापक नहीं होवैगा तौ अनित्यही होवैगा। यद्यपि नैयायिकोंनैं पृथिवी आदिकोंके परमाणुवोंकूं अव्यापक मानिकैभी नित्यही मान्या है यातैं जो अव्यापक होवै है सो अनित्यही होवै है या प्रकारका नियम संभवै नहीं। तथापि वेदांतसिद्धांतविषे ते नित्य परमाणु अंगीकार नहीं हैं यातैं ता नियमका भंग होवै नहीं और यह आत्मादेव तौ अस्तिभातिप्रिय रूपकरिकै सर्वत्र व्यापक है या कारणतैं यह आत्मादेव नित्य है। या कहणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया। यह आत्मा नित्य होणेकूं योग्य है। सर्वत्र व्यापक होणेतैं जो पदार्थ नित्य नहीं होवै है सो पदार्थ सर्वत्र व्यापकभी नहीं होवै है। जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति। सर्वत्र व्यापक होणेतैं यह आत्मादेव प्राप्तिका विषयभी नहीं है। और या लोकविषे जो जो पदार्थ विकारी होवै हैं सो सो पदार्थ सर्वत्र व्यापक होवैं नहीं। जैसे घटादिक पदार्थ विकारी हैं यातैं सर्वत्र व्यापकभी नहीं हैं। तैसे यह आत्मादेवभी जो कदाचित् विकारी होवैगा तौ सर्वत्र व्यापक नहीं होवैगा। और यह आत्मादेव तौ स्थाणु है क्या अधिकारी है। या कारणतैं यह आत्मादेव सर्वत्र व्यापक है या कहणेतैं यह अनुमान सिद्ध भया यह आत्मा सर्वत्र व्यापक होणेकूं योग्य है। अधिकारी होणेतैं जो जो पदार्थ सर्वत्र व्यापक नहीं होवै है सो सो पदार्थ अविकारीभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति। इतनेकरिकै आत्माविषे विकार्यत्वका निषेध करा और या लोकविषे जो जो पदार्थ चलनरूप क्रियावाला होवै है सो सो पदार्थ विकारीही होवै है। जैसे घटादिक पदार्थ चलनरूप क्रियावाले हैं यातैं विकारी हैं, तैसे यह आत्मादेवभी जो कदाचित् चलनरूप क्रियावाला होवैगा तौ विकारीही होवैगा और यह आत्मादेव तौ ता चलनरूप क्रियातैं रहित अचल है। या कारणतैं यह आत्मादेव विकारीभी नहीं है या करणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया यह आत्मा अविकारी होणेकूं योग्य है। अचल होणेतैं जो जो पदार्थ अविकारी नहीं होवै है सो सो पदार्थ अचलभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति। इतने कहणे करिकै आत्माविषे संस्कार्यत्वका निषेध करा। इहां पूर्व अवस्थाका परित्याग करिकै जो दूसरी अवस्थाकी प्राप्ति है ताका नाम विक्रिया है। और अवस्थाके एक हुएभी जो चलनमात्र है ताका नाम क्रिया है। यातैं अविक्रियत्वरूप साध्यकी तथा अचलत्वरूप हेतुकी एकता सिद्ध होवै नहीं।

जिस कारणतैं यह आत्मादेव नित्य सर्वगत स्थाणु अचलरूप है। तिस कारणतैं यह आत्मादेव सनातन है क्या सर्वदा एकरूप है किसीभी क्रियाका कर्मरूप नहीं है। तात्पर्य यह—जो पदार्थ क्रियाजन्य फलवाला होवै है ता पदार्थका नाम कर्म है। सो क्रियाजन्य फल उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति, संस्कृति या भेदकरिकै चारि प्रकारका होवै है तो चारि प्रकारके फलके योगतैं यथाक्रमतैं सो कर्मभी उत्पाद्य, प्राप्य विकार्य, संस्कार्य या भेदतैं चारि प्रकारका होवै है। तहां यह आत्मादेव नित्य है यातैं उत्पाद्यरूप कर्मभी नहीं है। अनित्य घटादिकही उत्पाद्यरूप होवैं। और यह आत्मादेव सर्वत्र व्यापक है यातैं प्राप्यरूप कर्मभी नहीं है परिच्छिन्न ामादिकही प्राप्यरूप होवैं हैं। और यह आत्मादेव स्थाणुरूप है यातैं विकार्यरूप कर्मभी नहीं है। स्थाणुभावतैंरहित विक्रियावाले क्षीरादिकही विकार्यरूप होवैं हैं। और यह आत्मादेव चलनरूप क्रियातैं रहित अचल है यातैं संस्कार्यरूप कर्मभी नहीं है। क्रियावाले दर्पणादिक पदार्थही संस्कार्यरूप होवैंहैं इति। तहां श्रुति—"आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः निष्कलं निष्क्रियं शांतम् इति" अर्थ यह—यह आत्मादेव आकाशकी न्याँई सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है तथा महान् वृक्षकी न्याई अचल हुआ स्थित है तथा अपणे स्वप्रकाशस्वरूपविषे स्थित है तथा एक अद्वितीयरूप है तथा निरवयव है तथा क्रियातैं रहित है तथा शांतस्वरूप है इति। इत्यादिक श्रुतियां या आत्मादेवकूं नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचलरूपकरिकै कथन करैं हैं। तथा " यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अंतरो योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योंतरो यस्तेजसि तिष्ठंस्तेजसोंतरो यो वायौ तिष्ठन्वायोरंतरः इति"। अर्थ यह—जो आत्मादेव पृथिवीविषे स्थित हुआ ता पृथिवीतैंभी अंतर है। तथा जो आत्मादेव जलोंविषे स्थित हुआ तिन जलोंतैंभी अंतर है। तथा जो आत्मादेव अग्निरूप तेजविषे स्थित हुआ ता तेजतैंभी अंतर है। तथा जो आत्मादेव वायुविषे स्थित हुआ ता वायुतैंभी अंतर है इति। इत्यादिक श्रुतियां सर्वत्र व्यापकआत्माकूं सर्वका अंतर्यामिरूपकरिकै कथन करती हुई ता आत्माविषे शस्त्रादिकृत छेदनादिकोंकी अविषयता कथन करैं हैं। तात्पर्य यह—जो पदार्थ तिन शस्त्रादिकोंके अंतर नहीं स्थित होवै है, तिस पदार्थकूंही ते शस्त्रादिक छेदनादिक करैं हैं। और यह आत्मादेव तौ तिन शस्त्रादिक जड पदार्थोंकूं सत्तास्फूर्ति देणेहारा होणेतैं तिन शस्त्रादिकोंकाभी प्रेरक अंतर्यामि है। यातैं इस आत्मादेवकूं ते शस्त्रादिक किस प्रकार छेदनादिक करैंगे

किंतु नहीं करैंगे इति । इस अर्थविषे " येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः " इत्यादिक श्रुतियांभी प्रमाणरूप जानि लेणी । इस अर्थकूं या गीताके सप्तम अध्यायविषे श्रीभगवान् आपही प्रगट करैंगे ॥ २४ ॥

किंवा । इस आत्माविषे छेद्यत्व दाह्यत्व आदिकोंकूं विषय करणेहारा कोई प्रमाणभी है नहीं । या कारणतैंभी इस आत्माविषे तिन छेद्यत्व दाह्यत्व आदिकोंका अभाव है । या प्रकारके अर्थकूं अव्यक्तोयं इत्यादिक अर्ध श्लोककरिकै श्रीभगवान् कथन करै हैं–

अव्यक्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तः[2]। अयम्[1]। अचिंत्यः[5]। अयम्[4]। अविकार्यः[7]। अयम्[6]। उच्यते[3]। तस्मात्[8]। एवम्[10]। विदित्वा[11]। एनम्[9]। न[13]। अनुशोचितुम्[12]। अर्हसि[14] ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदभगवान्नैं यह[1] आत्मा अव्यक्त[2] कह्या[3] है तथा यह[4] आत्मा अचिंत्य[5] कह्या है तथा यह[6] आत्मा अविकार्य[7] कह्या है तिस[8] कारणतैं तूं इस आत्माकूं[9] इस प्रकारका[10] जानिकरिकै[11] शोक[12] करणेकूं नहीं[13] योग्य[14] है ॥२५॥

भा० टी०–जो पदार्थ नेत्रादिक इंद्रियजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो पदार्थ प्रत्यक्ष कह्या जावै है । प्रत्यक्ष होणेतैं सो पदार्थ व्यक्त कह्या जावै है। जैसे रूपादिक गुणोंवाले घटादिक पदार्थ हैं । और यह आत्मादेव तौ रूपादिकगुणोंतैं रहित होणेतैं नेत्रादिक इंद्रियजन्य ज्ञानका विषय है नहीं। या कारणतैं यह आत्मादेव अप्रत्यक्ष है । अप्रत्यक्ष होणेतैं यह आत्मादेव अव्यक्त कह्या जावै है । या कारणतैं प्रत्यक्षप्रमाण ता आत्माके छेद्यत्वादिकोंकूं ग्रहण करिसकै नहीं । शंका–हे भगवन् ! आत्माविषे प्रत्यक्षप्रमाणके अप्रवृत्त हुएभी अनुमानप्रमाण प्रवृत्त होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं (अचिंत्योयम् इति) जो पदार्थ अनुमानप्रमाणजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो पदार्थ चिंत्य कह्याजावै है । जैसे पर्वतादिकोंविषे स्थित अग्नि आदिक पदार्थ अनुमानजन्य ज्ञानके विषय होणेतैं चिंत्य कहे जावैं हैं । और यह आत्मादेव तौ तिन अग्नि आदिक अनुमेय पदार्थोंतैं विलक्षण है क्या अनुमानजन्य ज्ञानका विषय नहीं है । यातैं यह आत्मादेव

आचिंत्य कह्या जावै है । तात्पर्य यह । जो पदार्थ किसीभी स्थानविषे प्रत्यक्ष होवै है तिस पदार्थकाही अन्य स्थानविषे अनुमान होवै है । सर्वथा अप्रत्यक्ष पदार्थका अनुमान होवै नहीं । जैसे गृहादिक स्थानोंविषे प्रत्यक्ष जो अग्नि है ता अग्निकी धूमविषे व्याप्ति निश्चयकरिकै यह पुरुष पर्वतविषे धूमकूं देखिकरिकै यह पर्वत अग्निवाला है या प्रकारका अनुमान करै है । और जो पदार्थ किसीभी स्थानविषे प्रत्यक्ष नहीं होवै है ता पदार्थके व्याप्तिका ज्ञानही संभवता नहीं । यातैं ता पदार्थका अनुमानभी होवै नहीं । और या आत्माका तौ नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै प्रत्यक्ष होवै नहीं । यातैं अनुमान प्रमाणकरिकैभी ता आत्माके छेद्यत्वादिकोंका ग्रहण होइ सकै नहीं इति । शंका—हे भगवन् ! जो पदार्थ किसीभी स्थलविषे प्रत्यक्ष होवै है ता पदार्थकाही अन्य स्थलविषे अनुमान होवै है सर्वथा अप्रत्यक्ष पदार्थका अनुमान होवै नहीं । यह जो आपने नियम कह्या सो संभवता नहीं काहेतैं नेत्रादिक इंद्रियोंका तथा धर्म अधर्मका किसीभी स्थलविषे प्रत्यक्ष होता नहीं । परंतु तिनोंविषेभी अनुमानकी विषयता तौ देखणेमें आवती है ता अनुमानका यह प्रकार है रूपादिकोंकी प्रतीति करणकरिकै साध्य होणेकूं योग्य है क्रिया होणेतैं जा जा क्रिया होवै है सा सा करणकरिकै साध्य होवै है । जैसे छेदनरूप क्रिया कुठाररूप करणकरिकै साध्य है इति । या प्रकारके अनुमानतैं रूपादिकोंकी प्रतीतियोंका करणरूपकरिकै नेत्रादिक इंद्रियोंकी सिद्धि होवै है । तथा यह पुरुष धर्मवान् है सुखी होणेतैं । तथा यह पुरुष अधर्मवान् है दुःखी होणेतैं इति । या अनुमानतैं धर्मअधर्मकी सिद्धि होवै है । तैसे सर्वथा अप्रत्यक्ष आत्माविषेभी अनुमानकी विषयता बनि सकै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं (अविकार्योयम् इति) हे अर्जुन ! नानाप्रकारकी विक्रियावाले जो इंद्रियादिक पदार्थ हैं ते इंद्रियादिक पदार्थही अपणे कार्यकी अन्यथा अनुपपत्तिकरिकै कल्प्यमान हुए अर्थापत्ति प्रमाणका तथा अनुमानप्रमाणका विषय होवैं हैं। और यह आत्मादेव तौ सर्व विक्रियातैं रहित है या कारणतैं यह आत्मादेव अर्थापत्तिप्रमाणका तथा अनुमानप्रमाणका विषय होवै नहीं और अनुमानकी न्याईं लौकिक शब्दभी प्रत्यक्षादि प्रमाण पूर्वकही होवै है । यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाणके निषेध हुए ता लौकिक शब्दका भी अर्थतैंही निषेध सिद्ध होवै है इति । शंका—हे भगवन् ! प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, लौकिकशब्द यह चारों प्रमाण ता आत्माविषे छेद्यत्व दाह्यत्व आदिकोंकूं मत ग्रहण

करैं तथापि वेदप्रमाण तिन छेद्यत्वादिकोंकूं ग्रहण करैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं (उच्यते इति) हे अर्जुन ! वेद भगवान्नैं तौ यह आत्मादेव अच्छेद्य अव्यक्तरूपकरिकै प्रतिपादन करीवा है । यातैं लक्षणावृत्तिकरिकै निर्विकार आत्माकूं प्रतिपादन करणेहारा सो वेदभगवान् ता आत्माके छेद्यत्वादिक धर्मोंकूं कैसे प्रतिपादन करैगा किंतु नहीं प्रतिपादन करैगा । यातैं आत्माविषे छेद्यत्व दाह्यत्व आदिक धर्मोंकूं विषय करणेहारा कोईभी प्रमाण है नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव अच्छेद्य अदाह्यरूप है इति । इहां (नैनं छिंदंति शस्त्राणि) इस श्लोककरिकै शस्त्र आदिकोंकेविषे आत्माके नाश करणेका असामर्थ्य कथन करा । और (अच्छेद्योयमदाह्योयं) इस श्लोककरिकै ता आत्माविषे छेदन दाहादिरूप क्रियाके कर्मपणेकी अयोग्यता निरूपण करी । और (अव्यक्तोयमचिंत्योयम्) या अर्ध श्लोककरिकै ता आत्माविषे छेद्यत्वादिकोंकूं ग्रहण करणेहारे प्रमाणोंका अभाव कथन करा । या कारणतैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । और (वेदाविनाशिनं नित्यं) इत्यादिक श्लोकोंविषे भगवान् भाष्यकारोंनैं अर्थतैं तथा शब्दतैं पुनरुक्तिदोषकी निवृत्ति करी नहीं ताकेविषे भाष्यकारोंका यह अभिप्राय है यह आत्मादेव अत्यंत दुर्बोध है । यातैं श्रीकृष्णभगवान् वारंवार प्रसंगकूं पाइकै तिसी आत्मादेवकूं शब्दांतरकरिकै निरूपण करैं हैं । काहेतैं या अधिकारी पुरुषोंके संसारकी निवृत्ति करणेवासतै यह आत्मवस्तु किसी प्रकारकरिकैभी जो इन अधिकारी पुरुषोंके बुद्धिविषे आरूढ होवै तौ श्रेष्ठ है इति । यातैं दुर्विज्ञेय आत्मवस्तुके पुनःपुनः कथन करणेविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । लोकप्रसिद्ध वस्तुके पुनःपुनः कथन करणेविषेही पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै है इति । इहां किसी टीकाविषे अव्यक्त, अचिंत्य, अविकार्य या तीनों पदोंका या प्रकारका अर्थ कथन करा है प्रत्यक्षप्रमाणका विषय जो यह स्थूल शरीर है ताका नाम व्यक्त है ता स्थूल शरीरतैं यह प्रत्यक् आत्मा भिन्न है यातैं यह प्रत्यक् आत्मा अव्यक्त कह्या जावै है । और रूपादिकोंके प्रकाशरूप कार्यकरिकै अनुमान करणेयोग्य जो चक्षु आदिकोंका समुदाय लिंगशरीर है ता लिंगशरीरका नाम चिंत्य है ता लिंगशरीरतैंभी यह आत्मादेव भिन्न है यातैं यह आत्मादेव अचिंत्य कह्या जावै है । और स्थूलसूक्ष्मरूप कार्यभावकरिकै स्थित होणेयोग्य जो त्रिगुणात्मक मूलाज्ञानरूप कारणशरीर है जो अज्ञानरूप कारणशरीर केवल

साक्षीकरिकैही गम्य है ता कारणशरीरका नाम विकार्य है ता कारणशरीरतैंभी यह आत्मा भिन्न है यातैं यह आत्मादेव अविकार्य कह्या जावै है । इस प्रकार गुरुशास्त्रनैं अधिकारी पुरुषके प्रति स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरके निषेधमुखकारिके यह आत्मादेव उपदेश करीता है । कोई गोशृंगग्राहिका न्याय करिकै इस प्रकारका यह आत्मा है या प्रकार विधिमुखकारिकै कथन करीता नहीं तहां किसीने पूछा हमारी गौ कौन है आगेतैं किसी पुरुषनैं ता गौकूं शृंगतैं पकड़िकारिकै यह तुम्हारी गौ है या प्रकार गौ दिखाई याका नाम गोशृंगग्राहिका न्याय है इति । इस प्रकार पूर्व उक्त अनेक प्रकारकी युक्तियोंकरिकै आत्माकी नित्यता तथा निर्विकारताके सिद्ध हुए तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं है या प्रकारका उपसंहार श्रीभगवान् करैं हैं (तस्मादेवं) इत्यादिक अर्ध श्लोककरिकै हे अर्जुन ! यह जो पूर्व हमनैं तुम्हारेप्रति नित्य निर्विकार आत्माका स्वरूप कथन करा है ता आत्माके स्वरूपका साक्षात्कारही शोकके कारणरूप अज्ञानका निवर्त्तक है । ऐसे आत्मसाक्षात्कारके प्राप्त हुए तुम्हारेकूं सो शोक करणा उचित नहीं है । कारणके निवृत्त हुए ताके कार्यकीभी अवश्यकरिकै निवृत्ति होवै है । तात्पर्य यह—ऐसे निर्विकार नित्य आत्माकूं न जाणिकरिकै जो तूं पूर्व शोक करता भया है सो तुम्हारेकूं युक्त था परंतु अबी हमारे उपदेशतैं आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानिकरिकै तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं है । तहां श्रुति । "तरति शोकमात्मवित्"। अर्थ यह—आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा विद्वान् पुरुष सर्व शोकोंतैं रहित होवै है ॥ २५ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे आत्मा जन्ममरणादिक विकारोंतैं रहित है या कारणतैं तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है । यह वार्त्ता भगवान्नैं अर्जुनकेप्रति कथन करी । अब ता आत्माविषे जन्ममरणादिक विकारोंकूं अंगीकार करिकैभी तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है या अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै प्रतिपादन करे हैं । तहां आत्मा विज्ञानस्वरूप है तथा क्षणक्षणविषे विनाशकूं प्राप्त होवै है या प्रकारका आत्मा सौगत मानैं हैं इति । और यह स्थूल देहही आत्मा है सो स्थूल देहरूप आत्मा स्थिर हुआभी क्षणक्षणविषे परिणामकूं प्राप्त होवै है तथा जन्मकूं प्राप्त होवै है तथा नाशकूं प्राप्त होवै है तथा प्रत्यक्षप्रमाणकरिकै सिद्ध है । या प्रकारका आत्मा लोकायतिक मानैं हैं इति । और आत्मा देहतैं भिन्न हुआभी देहके साथिही जन्मै है तथा देहके साथही नाश होवै है । या प्रकारका आत्मा

कोईक दूसरे मानैं हैं इति । और सृष्टिके आदिकालविषे जैसे आकाशकी उत्पत्ति होवै है । तैसे आत्माकीभी उत्पत्ति होवैहै और देहोंके भेद हुएभी सो आत्मा कल्पपर्यंत स्थिर रहै है। इस कल्पके अंतविषे सो आत्मा नाशकूं प्राप्त होवै है या प्रकारका आत्मा कोई दूसरे मानैं हैं इति। और आत्मा नित्य है सो नित्यही आत्मा जन्मकूं तथा मरणकूं प्राप्त होवै है या प्रकारका आत्मा तार्किक मानैं हैं। तिन तार्किकोंका यह अभिप्राय है । अपूर्व देहइंद्रियादिकोंके संबंधका नाम जन्म है । और पूर्व देहइंद्रियादिकोंके संबंधकी निवृत्तिका नाम मरण है यह जन्ममरण दोनों धर्मअधर्मकरिकै जन्य हैं यातैं ता धर्मअधर्मका आधाररूप जो नित्य वस्तु है ता नित्य वस्तुकेही यह जन्ममरण मुख्य हैं । और शरीरादिक अनित्यवस्तुविषे जो धर्म अधर्मकी आधारता मानिये तौ ता आश्रयके नाशतैं ता धर्मअधर्मकाभी नाश होवैगा यातैं करे हुए कर्मोंकी फलके भोगतैं विनाही निवृत्तिरूप कृतहानिदोष तथा नकरे हुए कर्मोंका फलभोगरूप अकृताभ्यागमदोष या दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैगी यातैं अनित्यवस्तुविषे ता धर्मअधर्मकी आधारता संभवै नहीं यातैं शरीरादिक अनित्य वस्तुके ते जन्ममरण मुख्य नहीं हैं किंतु गौण हैं। याप्रकारका आत्मा तार्किक मानैं हैं । और कोईक शास्त्रवाले तौ यह मानैं हैं जैसे श्रोत्ररूप नित्य आकाशका कर्णशष्कुलीरूप उपाधिके जन्मतैं जन्म होवै । और ता कर्णशष्कुलीरूप उपाधिके नाशतैं नाश होवै है। ते जन्ममरण दोनों औपाधिक होणेतैं अमुख्य हैं । तैसे नित्य आत्माकाभी देहरूप उपाधिके जन्मतैं जन्म होवै है । तथा देहरूप उपाधिके मरणतैं मरण होवै है। ते जन्ममरणरूप दोनों औपाधिक होणेतैं अमुख्य हैं मुख्य नहीं इति । इस प्रकार कोईक वादी आत्माकूं अनित्य मानैं हैं । और कोईक वादी ता आत्माकूं नित्य मानैं हैं। तहां आत्मा अनित्य है या पक्षविषेभी श्रीभगवान् आत्माके शोकका निषेध करैं हैं–

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) अथ[१]। च[२]। एनम्[३]। नित्यजातम्[४]। नित्यम्[६]। वा[५]। मन्यसे[८]। मृतम्[७]। तथापि[९]। त्वम्[११]। महाबाहो[१०]। न[१४]। एवम्[१२]। शोचितुम्[१३]। अर्हसि[१५] ॥ २६ ॥

(पदार्थः) अनित्य[१]पक्षविषे [२]भी जो तूं इस[३] आत्माकूं नित्य[५]ही जन्म्या हुआ तथा[५] नित्य[६]ही मरा[७] हुआ मानता[८] होवै[९] तथापि[१०] हे महाबाहो अर्जुन! [११]तूं इस[१२] प्रकारका शोक[१३] करणेकूं नहीं[१४] योग्य[१५] हैं ॥ २६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! यह आत्मादेव अत्यंत दुर्बोध है यातैं वारंवार ता आत्माके श्रवण हुएभी ता आत्माके निश्चय करणेकी असामर्थ्यतातैं पूर्व कथन करे हुए हमारे पक्षका नहीं अंगीकार करिकै जो तूं किसी दूसरे पक्षका अंगीकार करता होवै ता दूसरे पक्षविषेभी आत्मा अनित्यहै या अनित्य पक्षकूं आश्रयण करिकै जो तूं इस आत्मादेवकूं नित्यही जन्म्या हुआ तथा नित्यही मरा हुआ मानता होवै तहां विज्ञानरूप आत्मा क्षणिक है या क्षणिक पक्षविषे तौ नित्य या शब्दका प्रतिक्षण यह अर्थ करणा । क्या आत्माकूं क्षणक्षणविषे जो तूं जन्म्या हुआ तथा मरा हुआ मानता होवै इति । और ता क्षणिक पक्षतैं भिन्न दूसरे पक्षों-विषे तौ ता नित्यशब्दका आवश्यक होणेतैं नियत यह अर्थ करणा । क्या यह देवदत्त नामा पुरुष जन्म्या है तथा यह देवदत्तनामा पुरुष मरा है या प्रकारकी लौकिक प्रतीतिके पक्षतैं नियमकरिकै जो तूं आत्माका जन्ममरण कल्पना करता होवै तथापि हे महाबाहो अर्जुन ! (अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्) या प्रकारके शोक करणेकूं तूं योग्य नहीं है काहेतैं जैसे भीष्मद्रोणादिक आत्मा नित्यही जन्म मरणवाले हैं तैसे तूं आपभी नित्यही जन्ममरणवाला है । इहां (हे महाबाहो !) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनका उपहास सूचन करा । जैसे या लोकविषे जो कोई पुरुष किसी निकृष्ट कर्मकूं करै है तिस काल-विषे ता पुरुषके मातापितादिक वृद्ध पुरुष ता पुरुषके प्रति तूं हमारे कुलविषे बहुत सुपुत्र उत्पन्न हुआ है या प्रकारका वचन कहैं हैं सो वचन ता पुरुषके उपहासकूंही सूचन करै है । तैसे अत्यंत बहिर्मुख पुरुषोंनैं अंगीकार करा जो आत्माका अनित्यपणा है ता अनित्यपणेकूं सो अर्जुन अंगीकार करता भया । ता कालविषे श्रीभगवान्नैं (हे महाबाहो) यह अर्जुनका संबोधन दिया है । यातैं (हे महाबाहो) या संबोधनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनका उपहास सूचन करा है इति । अथवा (हे महाबाहो) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवा-ननैं अर्जुन ऊपरि अपणी कृपा सूचन करी क्या सर्व पुरुषोंविषे श्रेष्ठ जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेविषे आत्मा अनित्य है या प्रकारकी कुदृष्टि संभवती नहीं

इति । तहां विज्ञानरूप आत्मा क्षणिक है इस पक्षविषे तथा यह स्थूल देहही आत्मा है या पक्षविषे तथा देहके साथही आत्मा जन्ममरणकूं प्राप्त होवै है या पक्षविषे दूसरे जन्मका तौ अभावही है यातैं इन तीनों पक्षोंविषे पापका भय संभवता नहीं और पापके भय करिकै तूं शोककूं करता है । इन तीनों पक्षोंविषेभी आत्मा क्षणिक है या पक्षविषे तौ दृष्टदुःखभी संभवै नहीं काहेतैं जिस बांधवोंके नाशके दर्शनतैं सो दृष्टदुःख होवै है सो बांधवोंके नाशका दर्शन ता क्षणिक आत्माविषे संभवताही नहीं । यह क्षणिकपक्षविषे दूसरे पक्षोंतैं अधिकता है । और ता क्षणिक पक्षतैं भिन्न दूसरे पक्षोंविषे तौ दृष्टदुःख तथा ता दृष्टदुःखजन्य शोक संभव होइ सकै है। या अर्थके जनावणे वासतैही श्रीभगवान्नैं (एवं) यह शब्द कथन करा है । क्या ता पक्षविषे दृष्टदुःखजन्य शोकके संभव हुएभी अदृष्टदुःखजन्य शोक करणा सर्व प्रकारतैं तुम्हारेकूं उचित नहीं है इति ॥ २६ ॥

हे भगवन् ! पूर्व उक्त तीन पक्षोंविषे यद्यपि शोक करणा उचित नहीं है तथापि जिस पक्षविषे सृष्टिके आदिकालतैं लैके प्रलयपर्यंत आत्मा स्थिर रहै है तथा जिस तार्किकके पक्षविषे आत्मा सर्वदा नित्य है तिन दोनों पक्षोंविषे दृष्टदुःख तथा अदृष्टदुःख यह दोनों प्रकारका दुःख संभवै है यातैं ता दृष्टअदृष्टदुःखके भयकरिकै मैं शोक करता हूं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् द्वितीय श्लोककरिकै ताका उत्तर कहैं हैं—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) जातस्य । हि । ध्रुवः । मृत्युः । ध्रुवम् । जन्म । मृतस्य । च । तस्मात् । अपरिहार्ये । अर्थे । न । त्वम् । शाचतुम् । अर्हसि ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं जन्मकूं प्राप्त हुए आत्माका अवश्यकरिकै मृत्यु होवै है तथा मरणेकूं प्राप्त हुएका अवश्य करिकै जन्म होवै है तिस कारणतैं निवृत्त करणेकूं अशक्य जन्ममरणरूप अर्थविषे तूं शोक करणेकूं नहीं योग्य है ॥ २७ ॥

भा० टी०—पूर्वजन्मोंविषे करे जो पुण्यपापरूप कर्म हैं तिन कर्मोंके वशतैं प्राप्त भया है शरीरइंद्रियादिकोंका संबंधरूप जन्म जिसकूं ऐसा जो स्थिर

स्वभाववाला यह आत्मा है, ता आत्माका तिन प्रारब्धकर्मोंके नाशतैं अनंतर तिन देहइंद्रियादिकोंके संबंधका निवृत्तिरूप मरण अवश्यकरिकै होवै है काहेतैं या लोकविषे जिन जिन पदार्थोंका कर्मके वशतैं संयोग होवै है तिन तिन पदार्थोंका अंतविषे अवश्यकरिकै वियोग होवै है । और जिस आत्माका सो मरण होवै है तिस आत्माका पूर्व शरीरविषे करे हुए पुण्यपापकर्मोंके फल भोगणेवासतै अवश्यकरिकै जन्म होवै है । इहां यद्यपि मृत्युकूं प्राप्त हुएका अवश्यकरिकै जन्म होवै है या प्रकारके नियमका जीवन्मुक्त पुरुषविषे व्यभिचार होवै है काहेतैं जीवन्मुक्त पुरुषका मृत्यु तौ होवै है परंतु ता जीवन्मुक्त पुरुषका पुनः जन्म होवै नहीं तथापि संचितकर्मवाले पुरुषका मरणतैं अनंतर अवश्यकरिकै जन्म होवै है या अर्थविषे श्रीभगवान्‌का तात्पर्य है—जीवन्मुक्त पुरुषके ज्ञानरूप अग्निकरिकै सर्व संचित कर्म भस्म होइ जावैं हैं यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं मरणतैं अनंतर पुनः जन्मकी प्राप्ति होवै नहीं इति । तिस कारणतैं निवृत्त करणेकूं अशक्य ऐसा जो यह जन्ममरणरूप अर्थ है ता अर्थविषे तूं विद्वान् शोक करणेकूं योग्य नहीं है । यह वार्त्ता श्रीभगवान् (ऋतेपि त्वान्न भविष्यंति सर्वे) या वचनकरिकै आगे कथन करैंगे । तात्पर्य यह—जो कदाचित् तुमनैं युद्ध करिकै नहीं हनन करे हुए यह भीष्मद्रोणादिक जीवतेही रहैं तौ तिन भीष्मद्रोणादिकोंके साथि युद्ध करणेविषे तुम्हारेकूं शोक करणा उचित होवै परंतु यह भीष्मद्रोणादिक तौ तुम्हारे युद्धतैं विना आपही कर्मके क्षयतैं मृत्युकूं प्राप्त होवैंगे तिन भीष्मद्रोणादिकोंके मृत्युके निवृत्त करणेविषे तुम्हारा सामर्थ्य है नहीं यातैं तुम्हारेकूं दृष्टदुःखजन्य शोक करणा उचित नहीं है इति । इस प्रकार अदृष्टदुःखजन्य शोककी शंकाविषेभी (तस्मादपरिहार्येर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि) यहही उत्तर जानि लेणा । इहां इस लोकविषे बांधवोंके मरणजन्य जो दुःख है ताका नाम दृष्टदुःख है और परलोकविषे पापकर्मजन्य जो दुःख है ताका नाम अदृष्टदुःख है तहां अदृष्टदुःखजन्य शोकपक्षविषे (अपरिहार्येर्थे) या वचनका यह अर्थ करणा । जैसे ब्राह्मणकूं अग्निहोत्रादिक कर्म नियमतैं करणे योग्य हैं तैसे क्षत्रिय राजाकूं युद्धरूप कर्मभी नियमतैं करणे योग्य हैं । और जैसे ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंविषे पशुवोंकी हिंसा करणेतैं दोष होवै नहीं तैसे युद्धविषेभी बांधवादिकोंकी हिंसा करणेतैं दोष होवै नहीं । तहां गौतमस्मृति । "न दोषो हिंसायामाहवे इति" । अर्थ

यह—युद्धविषे हिंसाके करणेतैं दोष होवै नहीं इति । यह सर्व वार्त्ता (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इस श्लोकविषे आगे स्पष्ट होवैगी यातैं जैसे वेदनैं विधान करे जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिन विहित कर्मोंके न करणेतैं ब्राह्मणकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति होवै है या कारणतैं ते अग्निहोत्रादिक कर्म परित्याग करणेकूं अशक्य हैं तैसे वेदविहित होणेतैं परित्याग करणेकूं अशक्य जो यह युद्धरूप अर्थ है ता युद्धरूप अर्थविषे तूं अदृष्टदुःखके भयकरिकै शोक करणेकूं योग्य नहीं है इति । किंवा । अग्निहोत्रादिक नित्यकर्मोंकी न्यांई जो कदाचित् युद्धकूं नित्यकर्मरूप नहीं अंगीकार करिये किंतु ता युद्धकूं केवल काम्यकर्मरूपही अंगीकार करिये । तहां याज्ञवल्क्यस्मृति–"य आहवेषु युध्यंते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः । अकूटैरायुधैर्यांति ते स्वर्गं योगिनो यथा" । अर्थ यह—जे योद्धा पुरुष भूमिके राजकी प्राप्तिवास्तै युद्धविषे कपटतैं रहित शस्त्रोंकरिकै युद्ध करैं हैं तथा ता युद्धतैं विमुख होते नहीं ते योद्धा पुरुष योगी पुरुषोंकी न्यांई स्वर्गकूं प्राप्त होवैं हैं इति । या वचनकरिकै युद्धविषे काम्यकर्मरूपता प्रतीत होवै है । तथा (हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्) या भगवान्‌के वचनतैंभी ता युद्धविषे काम्यकर्मरूपताही प्रतीत होवै है तथापि प्रारंभ करा हुआ काम्यकर्मभी अवश्यकरिकै समाप्त करणेयोग्य होवै है यातैं सो प्रारंभ करा हुआ काम्यकर्मभी नित्यकर्मके तुल्यही होवै है और यह युद्धरूप कर्मभी पूर्व तुमनैं प्रारंभ करा है यातैं इस युद्धविषे काम्यकर्मरूपताके अंगीकार किये हुएभी नित्यकर्मकी न्याईं यह युद्धरूप कर्म तुम्हारेकूं परित्याग करणेकूं अशक्य है इति । अथवा । (अथ चैनं नित्यजातं) यह श्लोक तथा (जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः) यह श्लोक यह दोनों श्लोक आत्माके नित्यत्वपक्षविषेही हैं । आत्माके अनित्यत्वपक्षविषे ते दोनों श्लोक नहीं हैं काहेतैं परम आस्तिक जो अर्जुन है ता अर्जुनविषे वेदबाह्य नास्तिकोंके मतका अंगीकार करणा संभवता नहीं या पक्षविषे ता श्लोकके अक्षरोंकी या प्रकारतैं योजना करणी । जो वस्तु वास्तवतैं नित्य हुआही देहइंद्रियादिकोंके संबंधके वशतैं जन्मे हुएकी न्यांई प्रतीत होवै ताका नाम नित्यजात है । ऐसे वास्तवतैं नित्य हुए आत्माकूंभी जो तूं जन्म्या हुआ मानै तथा वास्तवतैं नित्य हुए आत्माकूंभी जो तूं मरा हुआ मानै तौभी तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है इति । इस प्रकारकी प्रतिज्ञा प्रथम श्लोकविषे करिकै ता प्रतिज्ञाकी सिद्धि करणेवास्तै

द्वितीय श्लोककरिकै हेतु कहैं हैं । (जातस्य हि इति) यद्यपि नित्यवस्तुका जन्ममरण संभवै नहीं तथापि उपाधिके जन्ममरणतैं ता नित्यवस्तुविषेभी जन्ममरणका व्यवहार पूर्व कथन करि आये हैं । दूसरा सर्व अर्थ स्पष्टही है ॥ २७ ॥

तहां पूर्व प्रसंगविषे सर्व प्रकारतैं आत्माके अशोच्यत्वका निरूपण करा। अब आत्माकूं शोकका अविषय हुएभी भूतोंका समुदायरूप इन भीष्मद्रोणादिक शरीरोंका उद्देश करिकै मैं शोक करता हूं या प्रकारकी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता शंकाकी निवृत्ति करैं हैं-

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तादीनि । भूतानि । व्यक्तमध्यानि । भारत । अव्यक्तनिधनानि । एव । तत्र । का । परिदेवना ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! यह शरीर आदिकालविषे अव्यक्त हैं तथा मध्यकालविषे व्यक्त हैं तथा मरणकालविषेभी अव्यक्तही हैं ऐसे शरीरोंविषे दुःखजन्य प्रलाप क्या करणा है ॥ २८ ॥

भा० टी०-हे भारत ! पृथिवी आदिक पंच भूतोंका समुदायरूप जो यह भीष्मद्रोणादिक नामवाले स्थूलशरीर हैं ते यह शरीर अपणी उत्पत्तितैं पूर्व प्रतीत होवैं नहीं । और यह शरीर जन्मतैं अनंतर तथा मरणतैं पूर्व मध्यकालविषे प्रतीत होवैं हैं । और मरणतैं अनंतरभी यह शरीर प्रतीत होवैं नहीं । यातैं यह शरीर आदिकालविषे तथा अंतकालविषे तौ अव्यक्त हैं तथा मध्यकालविषे व्यक्त हैं । नहीं प्रतीत होणेका नाम अव्यक्त है और प्रतीत होणेका नाम व्यक्त है । जैसे स्वप्नके पदार्थ तथा इंद्रजालके पदार्थ तथा रज्जुसर्पादिक अपणी प्रतीतिके समानकालविषेही स्थित होवैं हैं अपणी प्रतीतितैं पूर्वउत्तरकालविषे स्थित होवैं नहीं तैसे यह शरीरभी केवळ मध्यकालविषेही प्रतीत होवैं हैं पूर्व उत्तर कालविषे प्रतीत होवैं नहीं । और "आदावंते च यन्नास्ति वर्त्तमानेपि तत्तथा" । अर्थ यह-जो पदार्थ आदिकालविषे तथा अंतकालविषे नहीं होवै है सो पदार्थ मध्यकालविषेभी नहीं होवै है जैसे स्वप्नादिकोंके पदार्थ आदिअंत कालविषे नहीं हैं यातैं मध्यकालविषेभी नहीं हैं । तैसे यह शरीरभी आदि-

कालविषे तथा अंतकालविषे है नहीं यातैं मध्यकालविषेभी नहीं हैं । ऐसे मिथ्यारूप अत्यंत तुच्छ शरीरोंविषे दुःखजन्य प्रलाप करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है जैसे स्वप्नविषे अपणे बांधवोंकूं तथा धनकूं प्राप्त होइकै जाग्रत् अवस्थाविषे तिन बांधव धनादिकोंके नाशकरिकै कोई मूढ पुरुषभी शोक करता नहीं। तैसे या अनित्य भीष्मद्रोणादिक शरीरोंका उद्देश करिकै तुम्हारेकूं शोक करणा योग्य नहीं है इति। अथवा। भूतशब्दकरिकै आकाशादिक पंचमहाभूतोंका ग्रहणकरणा ता पक्षविषे या श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करणी। अव्याकृतनामा जो अविद्याउपहित चैतन्य है ताका नाम अव्यक्त है सो अव्यक्त है पूर्व अवस्था जिन आकाशादिक भूतोंकी तिन आकाशादिक भूतोंका नाम अव्यक्तादि है। तथा नामरूपकरिकै प्रगटरूप है स्थिति अवस्था जिन आकाशादिक भूतोंकी तिन आकाशादिक भूतोंका नाम व्यक्तमध्य है । और जैसे घटशरावादिक कार्योंका मृत्तिकारूप उपादानकारणविषे लय होवै है तैसे अव्यक्तरूप अपणे कारणविषे निधन क्या प्रलय है जिन आकाशादिक भूतोंका तिन आकाशादिक भूतोंका, तिन आकाशादिक भूतोंका नाम अव्यक्तनिधन है। तहां श्रुति "तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत इति"। अर्थ यह—यह आकाशादिक प्रपंच अपणी उत्पत्तितैं पूर्व अव्याकृतरूप होता भया सो अव्याकृतरूप प्रपंच सृष्टिकालविषे नामरूपकरिकै प्रगट होता भया इति। इत्यादिक श्रुति मायाउपहित चैतन्यरूप अव्यक्तकूंही आकाशादिक सर्व प्रपंचका उपादानरूप तथा आधाररूप कथन करैं हैं। और ता उपादानरूप अव्यक्तकूं या आकाशादिक प्रपंचके लयकी स्थानरूपता तौ अर्थतैंही सिद्ध होवै है काहेतैं कार्यका अपणे उपादानकारणविषेही लय देखणेमें आवै है । उपादानकारणकूं छोडिकै किसी अन्य पदार्थविषे कार्यका लय होवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया अज्ञानकरिकै कल्पित होणेतैं अत्यंत तुच्छ जो यह आकाशादिक पंचभूत हैं तिन भूतोंका उद्देश करिकैभी जबी तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं भया तबी तिन आकाशादिक भूतोंका कार्यरूप जो यह भीष्मद्रोणादिक शरीर हैं तिन शरीरोंका उद्देशकरिकै शोक करणा उचित नहीं है याकेविषे क्या कहणा है इति। अथवा आकाशादिक पंचभूत तथा तिन्होंके कार्य शरीरादिक अपणे अव्यक्तरूपकरिकै सर्वदा विद्यमान हैं किसीभी कालविषे तिन्होंका नाश होवै

नहीं यातैं तिन्होंके उद्देशकरिकै प्रलाप करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । इहां (हे भारत) या संबोधनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा तूं शुद्धवंशविषे उत्पन्न हुआ है यातैं तूं शास्त्रके अर्थकूं निश्चय करणे योग्य है ता शास्त्रके अर्थकूं तूं क्यूं नहीं निश्चय करता इति ॥ २८ ॥

हे भगवन् ! या लोकविषे शास्त्रके अर्थकूं जाननेहारे बहुत विद्वान् पुरुषभी शोक करते हुए देखणेविषे आवते हैं यातैं तूं विद्वान् होइकै शोक किसवासतै करता है या प्रकारका उपालंभ वारंवार हमारेकूं आप किसवासतै देते हो। किंवा शास्त्रविषे कह्या है । " वक्तुरेव हि तज्जाड्यं श्रोता यत्र न बुद्ध्यते " अर्थ यह–जहां श्रोता बोधकूं नहीं प्राप्त होवै तहां वक्ताकीही जडता जानणी इति । यातैं तुम्हारे वचनके अर्थका नहीं बोध होणाभी हमारेकूं दोष नहीं है। समाधान–हे अर्जुन ! जैसे तुम्हारेकूं आत्माके अज्ञानतैंही शोक हुआ है तैसे अन्यभी विद्वानोंकूं जो शोक होवै है सोभी आत्माके अज्ञानतैंही होवै है । और जैसे अन्य पुरुषोंकूं आत्माके प्रतिपादक शास्त्रोंके अर्थका जो नहीं बोध हुआ है सो अपणे अंतःकरणके दोषतैं नहीं हुआ है कोई वक्ता पुरुषके दोषतैं नहीं । तैसे तुम्हारेकूं जो हमारे वचनके अर्थका बोध नहीं भया है सोभी अपणे अंतःकरणके दोषतैं नहीं भया है याकेविषे कोई हमारा दोष नहीं है यातैं तुम्हारे पूर्व उक्त दोनों दोष संभवते नहीं । या प्रकारके अभिप्राय करिकै श्रीभगवान् आत्माके दुर्विज्ञेयताकूं निरूपण करैं हैं–

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) आश्चर्यवत्[3] । पश्यति[4] । कश्चित्[1] । एनम्[2] । आश्चर्यवत्[6] । वदति । तथा । एव । च । अन्यः । आश्चर्यवत्[13] । च[10] । एनम्[12] । अन्यः[11] । शृणोति[14] । श्रुत्वा[16] । अपि[15] । एनम्[17] । वेद[21] । न[20] । च[18] । एव । कश्चित्[19] ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कोईक[1] पुरुष इस[2] आत्माकूं आश्चर्यवत्[3] देखता[4] है तथा[5] अन्य कोई पुरुष इस आत्माकूं आश्चर्यवत् ही कथन करै है तथा[10] अन्य[11] कोई

पुरुष [12]ईस आत्माकूं [13]आश्चर्यवत् [14]श्रवण करै है [15]तथा कोई[16]क पुरुष [17]ईस आत्माकूं [18]श्रवणकरिकै भी[19] [20]नहीं [21]जानै है ॥ २९ ॥

भा० टी०-(एनम्) या पदकरिकै कथन करा जो आत्मारूप कर्म है। तथा (पश्यति) या पदकरिकै कथन करी जो दर्शनरूप क्रिया है। तथा (कश्चित्) या पदकरिकै कथन करा जो अधिकारी पुरुषरूप कर्ता है। या तीनोंकाही (आश्चर्यवत्) यह विशेषण है। तहां प्रथम आत्मारूप कर्मविषे आश्चर्यवत्‌रूपता निरूपण करैं हैं। हे अर्जुन ! यह आत्मादेव आश्चर्यवत् है क्या अद्भुत पदार्थके समान है। तथा अविद्याकरिकै कल्पित नानाप्रकारके विरुद्धकर्मवाला हुआ प्रतीत होवै है। या कारणतैं यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्वदा विद्यमान हुआभी अविद्यमान हुएकी न्याई प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं स्वप्रकाशचैतन्यरूप हुआभी जडकी न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं आनंदरूप हुआभी दुःखी हुएकी न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्व विकारोंतैं रहित हुआभी विकारवान्‌की न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं नित्य हुआभी अनित्यकी न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं प्रकाशमान् हुआभी अप्रकाशमान्‌की न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं ब्रह्मतैं अभिन्न हुआभी भिन्न हुएकी न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्वदा मुक्त हुआभी बद्ध हुएकी न्याईं प्रतीत होवै है। तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं अद्वितीयरूप हुआभी सद्वितीयकी न्याईं प्रतीत होवै है। इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत् रूपता आत्माविषे है। ऐसे आश्चर्यवत् आत्माकूं शमदमादिक साधनसंपन्न तथा अंत्यशरीरवाला कोईक पुरुषही गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अविद्यारचित सर्व द्वैतप्रपंचका निषेध करिकै परमात्माके स्वरूपमात्रकूं विषय करणेहारी तथा महावाक्यरूप वेदांतकरिकै जन्य तथा सर्व पुण्यकर्मोंकी फलरूप ऐसी अंतःकरणकी वृत्तिविषे साक्षात्कार करै है। अब दर्शनरूप क्रियाविषे आश्चर्यवत्‌रूपता निरूपण करै हैं। (पश्यति) या शब्दका अर्थरूप जो आत्माकी दर्शनरूप क्रिया है। सा दर्शनरूप क्रियाभी आश्चर्यवत् है। काहेतैं जो अंतःकरणका वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूपतैं मिथ्यारूप हुआभी सत्य आत्माका अभिव्यंजक है। तथा जो ज्ञान अविद्याका कार्यरूप हुआभी ता अविद्याकूं नाश करै है। तथा जो ज्ञान अविद्यारूप कारणकूं

नाश करता हुआ ता अविद्याका कार्य होणेतैं अपणेकूंभी नाश करै है । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत्‌रूपता ता ज्ञानरूप दर्शनविषे है इति । अब ता दर्शनरूप क्रियाके विद्वान्‌रूप कर्त्ताविषे आश्चर्यवत्‌रूपता निरूपण करे हैं। (कश्चित्) या शब्दकरिकै कथन करा जो आत्मसाक्षात्कारवान् पुरुष है सो विद्वान् पुरुषभी आश्चर्यवत है । काहेतैं यह विद्वान् पुरुष आत्मसाक्षात्कारकरिकै अविद्यातैं तथा अविद्याके कार्यतैं रहित हुआभी प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं अज्ञानी पुरुषकी न्यांई व्यवहार करे है । तथा यह विद्वान् पुरुष सर्वदा समाधिविषे स्थित हुआभी व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है । तथा यह विद्वान् पुरुष व्युत्थानकूं प्राप्त हुआभी पुनः समाधिकूं अनुभव करै है । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत्‌रूपता ता विद्वान् पुरुषविषे है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जो आत्मा तथा जिस आत्माका ज्ञान तथा जिस आत्माके जानणेहारा पुरुष यह तीनों आश्चर्यरूप हैं, तिस परम दुर्विज्ञेय आत्माकूं तूं विनाही प्रयत्नतैं किसप्रकार जानि सकैगा । किंतु प्रयत्नतैं विना ता आत्माका जानणा अत्यंत कठिन है इति । इस प्रकार उपदेश करणेहारे ब्रह्मवेत्ता पुरुषके अभावतैंभी आत्मा दुर्विज्ञेय है । काहेतैं जो विद्वान् पुरुष आप आत्माकूं अपरोक्ष जाने है । सो विद्वान् पुरुषही दूसरे अधिकारी पुरुषके प्रति तिस आत्माका उपदेश करि सकै है । और जो पुरुष आपही आत्माकूं नहीं जानता, सो अज्ञानी पुरुष दूसरे किसीके प्रति आत्माका उपदेश करि सकै नहीं । और जो विद्वान् पुरुष आत्माकूं अपरोक्ष जाने है, सो विद्वान् पुरुष विशेषकरिकै तौ समाधि युक्तही होवै है यातैं सो समाधिविषे जुड्या हुआ ब्रह्मवेत्ता पुरुष दूसरे अधिकारी पुरुषोंके प्रति किस प्रकार आत्माका उपदेश करैगा । किंतु नहीं करैगा । जिस कारणतैं चित्तकी बाह्यवृत्तितैं विना उपदेश करणा संभवता नहीं । और जिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषका चित्त ता समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त हुआ है, सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष यद्यपि अधिकारीजनोंके प्रति आत्माके उपदेश करणेविषे समर्थ है तथापि सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष दूसरे अधिकारी पुरुषोंकूं जानणा कठिन है। और जो कदाचित् यह अधिकारी पुरुष जिस किसी प्रकारकरिकै ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं जानैभी तौभी सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष लाभ पूजा ख्याति आदिक प्रयोजनकी अपेक्षा करै नहीं । यातैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ता अधिकारी पुरुषके प्रति आत्माका उपदेश नहीं करैगा । और सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष

जो कदाचित् जिस प्रकारतैं कृपामात्रकारिकै ता अधिकारी पुरुषके प्रति आत्माका उपदेश करैभी तौभी ऐसा कृपालु ब्रह्मवेत्ता पुरुष ईश्वरकी न्यांई अत्यंत दुर्लभ है। या प्रकारके अभिप्रायकारिकै श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहे हैं। (आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः इति) हे अर्जुन ! इस आत्मादेवकूं अन्य पुरुष आश्चर्यवत् कथन करे है। इहां (अन्यः) या शब्दकारिकै सर्व अज्ञानी जनोंतैं विलक्षण पुरुषका ग्रहण करणा। कोई आत्माके देखणेहारे पुरुषतैं भिन्न पुरुषका ग्रहण नहीं करणा। काहेतैं जो पुरुष जिस वस्तुकूं जाने है सो पुरुषही तिस वस्तुका कथन करै है। तिस वस्तुके ज्ञानतैं विना तिस वस्तुका कथन संभवै नहीं। यातैं आत्माके जानणेहारे पुरुषतैं भिन्न पुरुषका जो अन्य शब्दकारिकै ग्रहण करिये तौ वदतोव्याघात दोषकी प्राप्ति होवैगी इति। इहांभी (एनम्) या शब्दकारिकै कथन करा जो आत्मारूप कर्म है तथा (वदति) या शब्दकारिकै कथन करी जो वदनरूप क्रिया है तथा (अन्यः) या शब्दकारिकै कथन करा जो ता वदनरूप क्रियाका कर्त्ता है या तीनोंकाही आश्चर्यवत् यह विशेषण जानणा। तहां आत्मारूप कर्मविषे तथा विद्वान् पुरुषरूप कर्त्ताविषे आश्चर्यवत्रूपता इसी श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं सो इहांभी जानि लेणा। अब वदनरूप क्रियाविषे आश्चर्यवत्रूपता निरूपण करे हैं। हे अर्जुन ! सर्व शब्दोंका अवाच्य जो आत्मादेव है ता आत्मादेवका जो कथन है सो कथनभी आश्चर्यवत है। तहां श्रुति— "यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह"। अर्थ यह—मनसहित वाणीभी जिस आत्माकूं न प्राप्त होइकै जिस आत्मातैं निवृत्त होइ आवै हैं इति। तात्पर्य यह—अविद्या अंतःकरणादिके विशिष्ट अर्थविषे है शक्ति जिनोंकी तथा भागत्यागलक्षणाकारिकै कल्पित है संबंध जिनोंका ऐसे जो तत् त्वं आदिक शब्द हैं तिन शब्दोंकारिकै सर्व धर्मोंतैं रहित शुद्ध आत्माका जो निर्विकल्पक साक्षात्काररूप प्रतिपादन है सो अत्यंत आश्चर्यरूप है। जिस कारणतैं लोकविषे किसी जातिगुणादिक धर्मोंकूं अंगीकार करिकैही शब्द अपणे अर्थकूं बोधन करै है। जातिगुणादिक धर्मोंतैं विना किसीभी अर्थकूं शब्द बोधन करता नहीं इति। अथवा। सुषुप्त पुरुषके उठावणेहारे वचनकी न्यांई इन तत्त्वमसि आदिक वाक्योंनैं शक्तिरूप संबंधतैं विनाही तथा लक्षणारूप संबंधतैं विनाही तथा अन्य किसी संबंधतैं विनाही जो शुद्ध आत्माका प्रतिपादन करीता है सो अत्यंत आश्चर्यवत्

है। जिस कारणतैं शब्दका सामर्थ्य किसी पुरुषतैंभी चिंतन करा जावै नहीं। शंका—शक्तिलक्षणादिक संबंधतैं विनाही सो शब्द जो कदाचित् अपणे अर्थका बोधन करता होवै तौ तिस शब्दतैं किसी दूसरे पदार्थकाभी बोध होणा चाहिये। ता शब्दके संबंधका अभाव सर्व पदार्थोंविषे तुल्यही है। समाधान—यह दोष लक्षणाअंगीकारपक्षविषेभी तुल्यही है। काहेतैं शक्यअर्थके संबंधका नाम लक्षणा है। सा शक्यसंबंधरूप लक्षणाभी अनेक पदार्थोंविषे रहे है। यातैं तिन सर्व पदार्थोंका बोध होणा चाहिये। जैसे गंगाविषे ग्राम है या वचनविषे स्थित जो गंगापद है ता गंगापदकी तीरविषे लक्षणा होवै है। तहां गंगापदका शक्य अर्थ जो जलका प्रवाह है ता जलके प्रवाहका जैसे तीरके साथि संयोगसंबंध है तैसे ता जलविषे रहणेहारे मत्स्य नौकादिक अनेक पदार्थोंके साथि संयोगसंबंध है। शंका—यद्यपि शक्य अर्थका संबंध अनेक पदार्थोंके साथि होवै है तथापि जिस अर्थके बोध करावणेविषे वक्ता पुरुषका तात्पर्य होवै है, तिसीही अर्थका ता शब्दतैं बोध होवै है। तिसतैं अन्य अन्य अर्थका बोध होवै नहीं। समाधान—सो वक्ता पुरुषका तात्पर्यभी सर्व श्रोतापुरुषोंके प्रति तुल्यही है। यातैं तिन सर्व श्रोता पुरुषोंकूं ता वक्ताके तात्पर्यतैं तिसी अर्थका बोध होणा चाहिये। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं। शंका—तिन सर्व श्रोता पुरुषोंविषे कोई एक श्रोताही ता वक्ता पुरुषके तात्पर्यविशेषकूं निश्चय करे है। ते सर्व श्रोता पुरुष तिस तात्पर्यकूं निश्चय करिसकै नहीं। समाधान—या तुम्हारे कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध होवै है। ता श्रोता पुरुषविषे स्थित जो कोई निर्दोषत्वरूप विशेष धर्म है सो धर्मही ता वक्ता पुरुषके तात्पर्यका निश्चय करावणेहारा है इति। सो तात्पर्यका निश्चायक निर्दोषत्वरूप विशेष धर्म हमारे मतविषेभी किसीतैं निवृत्त करा जावै नहीं। यातैं जिस शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषकूं वक्ताके तात्पर्य निश्चयपूर्वक भागत्यागलक्षणाकरिकै तत्त्वमसि आदिक महावाक्यके अर्थका बोध तुमोनैं अंगीकार करीता है तिसी शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषकूंही 'तत्त्वमसि' आदिक शब्दविशेष शक्तिलक्षणादिरूप संबंधतैं विनाही अखंड चैतन्यवस्तुका साक्षात्कार उत्पन्न करे हैं। यातैं इस हमारे शक्तिलक्षणादिक संबंधके अनंगीकारपक्षविषे किंचित्मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवै नहीं। उलटा इस हमारे पक्षविषे "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" या श्रुतिका अर्थभी संकोचतैं विनाही सिद्ध होवै है। और लक्षणाअंगीकारपक्षविषे तौ या श्रुतिका जिस

आत्माकूं शक्तिवृत्तिकरिकै वचन बोधन नहीं करे हैं या प्रकारका संकोच करणा होवै है इति। यहही भगवान्का अभिप्राय वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यनैंभी "अगृहीत्वैव संबंधमभिधानाभिधेययोः । हित्वा निद्रां प्रबुध्यंते सुषुप्तेर्बोधिताः परैः" इत्यादिक श्लोकोंकरिकै वर्णन करा है । तिन श्लोकोंका यह अभिप्राय है—शब्दकी अचिंत्यशक्ति होवै है । यातैं जैसे सुषुप्तिकूं प्राप्तहुए पुरुषोंकूं ता कालविषे शब्द अर्थ या दोनोंके शक्तिलक्षणादिक संबंधोंका ज्ञान है नहीं । तथापि ते सुषुप्त पुरुष अन्य पुरुषोंनैं हे देवदत्त ! इत्यादिक शब्दोंकरिकै बोधन करे हुए ता सुषुप्तितैं जाग्रतकूं प्राप्त होवै हैं । तैसे यह शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषभी शक्तिलक्षणादिक संबंधके ज्ञानतैं विनाही तत्त्वमसि आदिक वाक्योंतैं अद्वितीयब्रह्मकूं साक्षात्कार करै हैं । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत्‌रूपता ता वदनरूप क्रियाविषे है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । वचनका विषय आत्मा तथा ता वचनका वक्ता विद्वान् पुरुष तथा सा वचनरूप क्रिया यह तीनों अत्यंत आश्चर्यरूप हैं । या कारणतैं सो आत्मादेव अत्यंत दुर्विज्ञेय है इति । अब श्रोता पुरुषकी दुर्लभताकूं कथन करिकैभी ता आत्माकी दुर्विज्ञेयता निरूपण करै हैं । (आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद इति) हे अर्जुन ! आत्माकूं साक्षात्कार करणेहारा तथा आत्माका कथन करणेहारा जो मुक्त पुरुष है, ता मुक्त पुरुषतैं भिन्न जो मुमुक्षु जन है, सो मुमुक्षु जन समित्पाणि होइकै विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै जो इस आत्माकूं श्रवण करे है क्या सर्व वेदांतवाक्योंके तात्पर्यका विषयरूपकरिकै निश्चय करै है सोभी अत्यंत आश्चर्यवत् है । और ता ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं आत्माका श्रवण करिकैभी मनन—निदिध्यासनकी परिपक्वताकरिकै जो आत्माका साक्षात्कार करणा है सोभी आश्चर्यवत् है । सो साक्षात्कारकी आश्चर्यरूपता (आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं) या वचनकरिकै पूर्व कथन करि आये हैं । और पूर्वकी न्यांई इहांभी श्रवणका विषय आत्मा तथा श्रवणरूप क्रिया तथा श्रवणकर्त्ता पुरुष या तीनोंकाही आश्चर्यवत् यह विशेषण जानना । तहां आत्माविषे तथा श्रवणरूप क्रियाविषे तौ पूर्व उक्त आश्चर्यवत्‌रूपताही जानि लेणी । और श्रवणकर्त्ता पुरुषविषे तौ यह आश्चर्यरूपता है । पूर्व अनेक जन्मोंविषे अनुष्ठान करे जो पुण्यकर्म हैं । तिन पुण्यकर्मोंकरिकै निवृत्त होइ गया है पापरूप मल जिसके मनका

तथा गुरुशास्त्रके वचनोंविषे अत्यंत है श्रद्धा जिसकी ऐसे उत्तम अधिकारी पुरुषों-की जो इस लोकविषे दुर्लभता है सा दुर्लभताही ता श्रोता पुरुविषे आश्चर्यरूपता है। यह वार्त्ता श्रीभगवान् आपही "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" इति । या श्लोकविषे आगे कथन करैंगे । तहां श्रुतिभी-" श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वंतोपि बहवो यं न विदुः आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः" इति । अर्थ यह-यह आत्मादेव बहुत पुरुषोंकूं तौ श्रवणवासतैंभी नहीं प्राप्त होता । और बहुत पुरुष तौ श्रवण करते हुएभी इस आत्माकूं जानि सकते नहीं । और इस आत्मादेवका वक्ता पुरुषभी बहुत आश्चर्यरूप है । और इस आत्मादेवकूं प्राप्त होणेहारा पुरुषभी बहुत कुशल है । और ब्रह्मवेत्ता कुशल गुरुकरिकै उपदेश करा हुआ इस आत्माके जानणेहारा विद्वान् पुरुषभी आश्चर्यरूप है इति। शंका-हे भगवन् ! जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण मनन निदिध्यासन करैगा सो अधिकारी पुरुष ता आत्माकूं अवश्यकरिकै साक्षात्कार करैगा । याके विषे क्या आश्चर्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं (न चैव कश्चित् इति) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्ववचनविषे स्थित (एनं वेद) या दोनोंके अनुषंगवासतै है। पूर्ववचनविषे स्थित पदका उत्तरवचनविषे संबंध करणेका नाम अनुषंग है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । कोईक पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी किसी प्रतिबंधके वशतैं इस आत्माकूं जानि सकता नहीं। जबी श्रवणा-दिकोंकूं करता हुआभी कोईक पुरुष इस आत्माकूं नहीं जानि सकै है तबी श्रवणादिकोंकूं नहीं करणेहारे पुरुष इस आत्माकूं नहीं जानैं हैं याके विषे क्या कहणा है। यह वार्त्ता वार्त्तिककार भगवान्नैंभी कथन करी है। तहां श्लोक। "कुतस्तज्ज्ञानमिति चेत्तद्धि बंधपरिक्षयात् । असावपि च भूतो वा भावी वा वर्त्ततेऽथवा" इति। अर्थ यह-सो आत्माका ज्ञान किसतैं प्राप्त होवै है ऐसी शिष्यकी शंकाके हुए सो आत्माका ज्ञान प्रतिबंधके नाशतैं प्राप्त होवै है सो प्रतिबंधभी भूतप्रतिबंध, भावीप्रतिबंध, वर्त्तमानप्रतिबंध यह तीन प्रकारका होवै है। तहां श्रवणादिकालविषे पूर्वदृष्ट अनात्मपदार्थोंका वारंवार स्मरण होणा याका नाम भूतप्रतिबंध है । और जन्मादिकोंकी प्राप्ति करणेहारा जो कोई प्रबल

अदृष्टविशेष है ताका नाम भाविप्रतिबंध है और विषयासक्ति, मंदबुद्धि, कुतर्क विपरीत अर्थविषे दुराग्रह यह चारि प्रकारका वर्त्तमानप्रतिबंध है इति। या तीनों प्रतिबंधोंविषे एक प्रतिबंधभी जिस अधिकारी पुरुषविषे है सो अधिकारी पुरुा श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी आत्माकूं जानि सके नहीं। जैसे वामदेवकूं भावी प्रतिबंधके वशतें श्रवणादिकोंकरिकै तिस जन्मविषे ज्ञान हुआ नहीं किंतु दूसरे जन्मविषे माताके उदरमें ता प्रतिबंधके नाश हुएतें ता वामदेवकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई है। यह वार्त्ता आत्मपुराणके प्रथम अध्यायविषे हम विस्तारतें कथन करि आये हैं। और "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः" या स्मृतिनें पापकर्मरूप प्रतिबंधके नाशतें अनंतरही या अधिकारी पुरुषोंकूं ज्ञानकी प्राप्ति कथन करी है। और तिन सर्वप्रतिबंधोंका नाश होणा अत्यंत दुर्लभ है। यष कारणतें यह आत्मादेव दुर्विज्ञेय है इति। इहां (श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्) या वचनका जो यह पूर्व उक्त अर्थ नहीं करिये किंतु इस आत्मादेवकूं श्रवणकरिकैभी कोईभी पुरुष जानि सकता नहीं या प्रकारका जो अर्थ करिये तौ "आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः"। या श्रुतिके साथि या गीताके वचनकी एकवाक्यता सिद्ध नहीं होवैगी। तथा "यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" या भगवान्‌के वचनकाभी विरोध होवैगा इति। अथवा। (न चैव कश्चित्) या अंत्यके वचनका "कश्चित् एनं न पश्यति कश्चित् एनं न वदति कश्चित् एनं न शृणोति कश्चित् श्रुत्वापि एनं न वेद" या प्रकार सर्वत्र संबंध करणा ताकरिकै यह पंच प्रकार सिद्ध होवैं हैं। कोईक पुरुष इस आत्मादेवकूं केवल जानेही है कथन करि सकै नहीं ॥ १ ॥ और कोईक पुरुष तौ इस आत्मादेवकूं जानैभी है तथा कथनभी करै है ॥ २ ॥ और कोईक पुरुष तौ वचनकूं श्रवणभी करै है तथा ता वचनके अर्थकूंभी जानै है ॥ ३ ॥ और कोईक पुरुष वचनकूं श्रवणकरिकैभी ताके अर्थकूं जानता नहीं ॥ ४ ॥ और कोई पुरुष तौ दर्शन कथन श्रवण इन सर्वतें बहिर्भूत होवै हैं ॥ ५ ॥ तहां अविद्वान्‌पक्षविषे असंभावना विपरीतभावनाकरिकै प्रतिबद्ध होणतैंही ता दर्शन, वेदन, श्रवणविषे आश्चर्यरूपता है। दूसरा सर्व अर्थ स्पष्ट है इति। और किसी टीकाविषे तौ (आश्चर्यवत्पश्यति) या श्लोकका यह अर्थ करा है। पूर्व श्लोकविषे कथन करा जो भूतभौतिक प्रपंच है ता प्रपंचकूं कोईक ब्रह्मवेत्ता पुरुष आश्चर्यवत् देखैं हैं।

तात्पर्य यह । स्वप्नऐंद्रजालिक पदार्थोंके तुल्य देखै है इति । और अन्य विद्वान् पुरुष इस प्रपंचकूं आश्चर्यवत् कथन करै है । तात्पर्य यह । सत् असततैं विलक्षण या प्रपंचकूं लोक अप्रसिद्ध अनिर्वचनीयरूपकारिकै कथन करै है इति । और अन्य पुरुष इस प्रपंचकूं आश्चर्यवत् श्रवण करै है । तात्पर्य यह । अनात्मरूपकारिकै प्रसिद्ध जो यह प्रपंच है ता प्रपंचविषे 'इमे लोका इमे देवा इमे वेदा इदं सर्वं यदयमात्मा' इत्यादिक श्रुतिकारिकै जो प्रत्यक्आत्मरूपताका श्रवण है सोभी आश्चर्यरूप है इति । और कोईक पुरुष तौ इस प्रपंचका श्रवणकारिकै तथा स्वप्नादिक दृष्टांतोंतैं कथन करिकै तथा साक्षात्कारकारिकैभी वास्तवतैं जानता नहीं ॥ २९ ॥

पूर्वश्लोकोंविषे कथन करा जो सर्व प्राणियोंके प्रति साधारण भ्रमकी निवृत्तिका साधनरूप विचार ता विचारकी अबी समाप्ति करैं हैं-

देही नित्यमवध्योयं देहे सर्वस्य भारत ॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) देही । नित्यम् । अवध्यः । अयम् । देहे । सर्वस्य । भारत । तस्मात् । सर्वाणि । भूतानि । न । त्वम् । शोचितुम् । अर्हसि ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे भारत ! सर्व प्राणियोंके देहके नाश हुएभी यह देही आत्मा नाश होवै नहीं यह वार्त्ता जिस कारणतैं नियत है तिस कारणतैं तूं अर्जुन इन सर्व भूतोंका शोक करणेकूं नहीं योग्य है ॥ ३० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! ब्रह्मातैं आदिलैके चींटीपर्यंत जितनेक प्राणी हैं तिन सर्व प्राणियोंके देहके नाश हुएभी यह लिंगदेहरूप उपाधिवाला आत्मा नाशकूं प्राप्त होवै नहीं । जैसे घटरूप उपाधियोंके नाश हुएभी तिन घटोंविषे स्थित आकाश नाश होवै नहीं तैसे तिन देहोंके नाश हुएभी यह आत्मादेव नाश होवै नहीं । जिस कारणतैं यह वार्त्ता नियमपूर्वक है तिस कारणतैं भीष्मद्रोणादिक भावकूं प्राप्त हुए जो यह स्थूलसूक्ष्मरूप आकाशादिक सर्व भूत हैं तिन भूतोंके उद्देशकरिकै तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है । तात्पर्य यह । इस स्थूल शरीरका तौ अवश्यकरिकै नाश होवैगा । ता नाशके निवृत्त करणेविषे कोईभी समर्थ नहीं है । या कारणतैं इस स्थूल शरीरका शोक करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । और सूक्ष्म लिंगदेह तौ आत्माकी न्यांई शस्त्रादिकोंकारिकै नाश होता नहीं यातैं

ता लिंगदेहकाभी शोक करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । यातैं स्थूलदेह, लिंगदेह तथा आत्मा या तीनोंका शोक करणा संभवता नहीं ॥ ३० ॥

इस प्रकार स्थूलशरीर तथा सूक्ष्मशरीर तथा तिन दोनों शरीरोंका कारण-रूप अविद्या या तीन उपाधियोंके अविवेककरिकै मिथ्यारूप संसारविषे सत्यत्व तथा आत्मधर्मत्व आदिकोंकी प्रतीतिरूप तथा सर्वप्राणियोंका साधारण जो अर्जुनका भ्रम है ता अर्जुनके भ्रमकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन उपाधियोंतैं भिन्नकरिकै आत्माका स्वरूप कथन करता भया। अबी युद्धरूप स्वधर्मविषे हिंसादिकोंकी बाहुल्यताकरिकै अधर्मत्वबुद्धिरूप तथा करुणादिक दोषोंकरिकै जन्य ऐसा जो अर्जुनका असाधारण भ्रम है ता असाधारण भ्रमके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता अर्जुनकेप्रति ता हिंसाप्रधान युद्धविषेभी स्वधर्मताकरिकै अधर्मपणेका अभाव कथन करैं हैं–

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) स्वधर्मम्[1] । अपि[2] । च । अवेक्ष्य[3] । न[4] । विकंपितुम्[5] । अर्हसि[6] । धर्म्यात्[7] । हि[8] । युद्धात्[9] । श्रेयः[12] । अन्यत्[11] । क्षत्रियस्य[10] । न[13] । विद्यते[14] ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अपणे[1] क्षत्रियके धर्म देखिकरिकै भी तूं युद्धतैं चलाय-मान होणेकूं नहीं[4] योग्य[6] है जिसैं[8] कारणतैं क्षत्रिय राजाकूं धर्मरूप[7] युद्धतैं[9] दूसरा[11] श्रेयका[12] साधन नहीं[13] विद्यमान[14] है ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व उक्त रीतिसैं केवल परमार्थतत्त्वका विचार करि-कैही तूं युद्धतैं निवृत्त होणेकूं योग्य नहीं है किंतु क्षत्रिय राजावोंका जो युद्धतैं पीछे नहीं हटणा या प्रकारका अपराङ्मुखत्व धर्म है ता अपराङ्मुखत्व-रूप स्वधर्मकूं शास्त्रतैं विचार करिकैभी तूं ता स्वधर्मरूप युद्धतैं अधर्मत्वकी भ्रांति-करिकै निवृत्त होणेकूं योग्य नहीं है। यातैं (यद्यप्येते न पश्यंति) इस वचनतैं आदिलैके (नरके नियतं वासो भवति) इस वचनपर्यंत तिन सर्व वचनोंकरिकै जो तुमनैं युद्धविषे पापकी कारणता कथन करी थी तथा (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकरिकै जो तुमनैं युद्धविषे गुरुवोंके वध करणेका तथा ब्राह्मणोंके

वध करणेका निषेध करा था सो यह सर्व वार्त्ता तुमनैं धर्मशास्त्रके अविचारतैं कथन करी थी। काहेतैं जिस कारणतैं अपराङ्मुखत्वरूप धर्मसहित जो युद्ध है ता युद्धतैं क्षत्रिय राजाकूं दूसरा कोई श्रेयका साधन है नहीं। किंतु यह युद्धही पृथिवीके जयद्वारा प्रजाका रक्षण तथा ब्राह्मणोंकी शुश्रूषा इत्यादिक क्षत्रियोंके धर्मका निर्वाह करणेहारा है यातैं क्षत्रिय राजावोंकूं सर्व धर्मों तैं सो युद्धही श्रेष्ठ धर्म है इति। यह वार्त्ता पाराशरऋषिनैंभी कही है। तहां श्लोक। "क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदंडवान्। निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्"। अर्थ यह—क्षत्रिय राजा अपणे प्रजाका रक्षण करै तथा शस्त्रोंकूं हस्तविषे धारण करै। तथा दुष्ट जनोंकूं दंड देवै। तथा अन्य शत्रुवोंके सैन्योंकूं जीतिकरिकै धर्मकरिकै पृथिवीका पालन करै इति। यह वार्त्ता मनुभगवान्नैंभी कही है। तहां श्लोकद्वय। "समोत्तमाधमै राजा चाहूतः पालयन् प्रजाः। न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ १ ॥ संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्। शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञः श्रेयस्करं परम्" ॥२॥ अर्थ यह—अपणे प्रजावोंका पालन करता हुआ यह क्षत्रिय राजा अपणे समान जातिवाले क्षत्रियोंनैं तथा उत्तम जातिवाले ब्राह्मणोंनैं तथा अधम जातिवाले वैश्यादिकोंनैं संग्राम करणेवासतै बुलाया हुआ अपणे क्षत्रियके धर्मकूं स्मरण करता हुआ ता संग्रामतैं निवृत्त नहीं होवै ॥ १ ॥ और संग्रामतैं निवृत्त नहीं होणा तथा प्रजाका पालन करणा तथा ब्राह्मणोंकी शुश्रूषा करणी यह तीनों धर्म राजाके परम श्रेयके करणेहारे हैं ॥ २ ॥ इत्यादिक स्मृतिवचनोंतैं क्षत्रिय राजाका युद्धही श्रेष्ठ धर्म सिद्ध होवै है। इहां यद्यपि युद्धतैं भिन्न दूसरेभी अनेक धर्म क्षत्रियके श्रेयके साधनरूप हैं यातैं युद्धतैं भिन्न दूसरा कोई धर्म क्षत्रियके श्रेयका साधन नहीं है। या प्रकारका कहणा संभवता नहीं। तथापि क्षत्रिय राजाके सर्व धर्मोंविषे ता युद्धरूप धर्मकी श्रेष्ठता कहणेवासतै श्रीभगवान्नैं सो वचन कथन करा है। कोई दूसरे धर्मोंके निषेध करणेवासतै सो वचन भगवान्नैं नहीं कह्या। इतने कहणेकरिकै युद्धतैंभी अत्यंत श्रेष्ठ कोई दूसरा धर्म है यातैं ता धर्मके करणेवासतै युद्धतैं निवृत्ति संभव होइसकै है या प्रकारके शंकाकीभी निवृत्ति करी। तथा (न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे) या प्रकारके अर्जुनके वचनकाभी खंडन करा इति ॥ ३१ ॥

हे भगवन् ! यद्यपि क्षत्रिय राजाका धर्म होणेतैं सो युद्ध अवश्यकरिकै हमारेकूं करणे योग्य है । तथापि भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके साथि सो युद्ध करणा हमारेकूं उचित नहीं है । जिस कारणतैं अपणे गुरुवोंके साथि युद्ध करणा अत्यंत निंदित कर्म है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) यदृच्छया । च । उपपन्नम् । स्वर्गद्वारम् । अपावृतम् । सुखिनः । क्षत्रियाः । पार्थ । लभंते । युद्धम् । ईदृशम् ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! प्रयत्नतैं विना ही प्राप्त हुआ तथा प्रतिबंधतैं रहित स्वर्गका साधनरूप इस प्रकारके युद्धकूं जे क्षत्रिय राजे प्राप्त होवैं हैं ते क्षत्रिय सुखकूंही प्राप्त होवैं हैं ॥ ३२ ॥

भा० टी०–हे पृथाके पुत्र अर्जुन ! तुम हमारेसाथि युद्ध करो या प्रकारकी प्रार्थनारूप प्रयत्नतैं विनाही प्राप्त भया जो यह युद्ध है कैसा है यह युद्ध भीष्म-द्रोणादिक वीरपुरुष प्रतिपक्षी होइकै जिस युद्धके करणेहारे हैं तथा जो युद्ध कीर्ति, राज्यकी प्राप्ति इत्यादिक दृष्टफलोंका साधन है, ऐसे युद्धकूं जे क्षत्रिय राजे प्राप्त होवै हैं ते क्षत्रिय राजे परम सुखकूंही प्राप्त होवैं हैं । काहेतैं ता युद्ध-करिकै जो कदाचित् जय होवै है तौ विनाही प्रयत्नतैं इस लोकविषे यशकी तथा राज्यकी प्राप्ति होवै है । और जो कदाचित् ता युद्धतैं पराजय होवै है । तौ अत्यंत शीघ्रही स्वर्गकी प्राप्ति होवै है । याही अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (स्वर्गद्वारमपावृतं इति) । कैसा है यह युद्ध प्रतिबंधतैं रहित स्वर्गकी प्राप्तिका साधनरूप है क्या व्यवधानतैं विनाही स्वर्गकी प्राप्ति करणेहारा है । यद्यपि ज्योतिष्टोमादिक यज्ञभी स्वर्गकी प्राप्ति करणेहारे हैं तथापि ते ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ स्वर्गरूपफलकी प्राप्तिविषे इस वर्त्तमान शरीरके नाशकी तथा प्रतिबंधके अभावकी अपेक्षा करे हैं यातैं ते ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ चिरकालके पीछेही ता स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति करे हैं । युद्धकी न्याई शीघ्रही स्वर्गकी प्राप्ति करैं नहीं । इहां (स्वर्गद्वारमपावृतं) इस वचनकरिकै भगवाननैं जैसे श्येनयज्ञके करणेतैं प्रत्यवाय होवै है तैसे युद्धके करणेतैंभी प्रत्यवाय होवैगा या प्रकारकी

अर्जुनकी शंका निवृत्त करी । तहां 'श्येनेनाभिचरन् यजेत' इत्यादिक वचनों-करिकै यद्यपि ते श्येनयज्ञादिक विधान करे हैं तथापि ते श्येनयज्ञादिक अपणे फलके दोषकरिकै दुष्ट हैं । काहेतैं तिन श्येनयज्ञादिकोंका फलरूप जो शत्रुका मरण है, सो शत्रुका मरणरूप फल ' न हिंस्यात्सर्वाभूतानि ब्राह्मणं न हन्यात ' इत्यादिक शास्त्रकरिकै निषिद्ध है यातैं सो शत्रुका हननरूप फल प्रत्यवायका जनक है । और ता श्येनयज्ञके फलविषे कोई विधिवचनभी है नहीं यातैं विधियुक्त अर्थविषे निषेधका अवकाश होवै नहीं । या प्रकारके न्यायकीभी तहां प्राप्ति होवै नहीं । और युद्धका फल जो स्वर्ग है सो स्वर्ग किसी शास्त्रकरिकै निषिद्ध है नहीं । किंतु सो स्वर्ग शास्त्रकरिकै विहित है । यह वार्ता मनुभगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक । " आहवेषु मिथोन्योन्यं जिघांसंतो महीक्षितः । युद्धमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यांत्यपराङ्मुखाः " अर्थ यह—युद्धविषे परस्पर हनन करणेकी इच्छावाले जे क्षत्रिय राजे हैं ते क्षत्रिय राजे यथाशक्ति परिमाण परस्पर युद्ध करते हुए तथा ता युद्धतैं पीछे मुख नहीं करते हुये स्वर्गकूं प्राप्त होवै हैं इति । किंवा जैसे 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' या वचनतैं विधान करी जो यज्ञविषे पशुकी हिंसा ता हिंसाकूं 'न हिंस्यात्सर्वाभूतानि' यह निषेध स्पर्श करि सकै नहीं । तैसे यह युद्धभी शास्त्रकरिकै विधान करा है यातैं ता युद्धकूंभी सो निषेध स्पर्श करि सकै नहीं । तात्पर्य यह । ' न हिंस्यात्सर्वाभूतानि' यह तौ सामान्यशास्त्र है । और 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' यह विशेषशास्त्र है । तहां सामान्यशास्त्रकी अपेक्षा करिकै विशेषशास्त्र बलवान् होवै है यातैं ता विशेषशास्त्रकरिकै सामान्यशास्त्रका संकोच करा जावै है । यातैं शास्त्रविहित युद्ध यज्ञादिकोंतैं भिन्नस्थलविषे किसीभी प्राणीकी हिंसा करणी नहीं । या प्रकार ता सामान्यशास्त्रका संकोच करणा संभवै है । जो कदाचित् 'न हिंस्यात्सर्वाभूतानि' या सामान्यशास्त्रके अर्थका इस प्रकारका संकोच नहीं करिये तौ 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इत्यादिक सर्व वचन व्यर्थ होवैंगे यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे अग्निषोमीय पशुकी हिंसा शास्त्रविहित होणेतैं प्रत्यवायका जनक होवै नहीं तैसे युद्धविषे स्थित हिंसाभी शास्त्रविहित होणेतैं प्रत्यवायका जनक होवै नहीं इति । और युद्धविषे भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके हननकरिकै जो दोष कथन करा था सोभी संभवै नहीं । काहेतैं यह भीष्मद्रोणादिक यद्यपि तुम्हारे गुरु हैं तथापि ते भीष्मद्रोणादिक आततायि हैं यातैं तिन्होंके हनन करणेतैं दोष होवै

नहीं। यह वार्त्ता मनु भगवान्नैंभी कथन करीहै। तहां श्लोक। "गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिनमायांतं हन्यादेवाविचारयन्। नाततायिवधे दोषो हंतुर्भवति कश्चन"। अर्थ यह–अपणा गुरु होवै अथवा बालक होवै अथवा वृद्ध होवै अथवा शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण होवै परंतु आततायि होवै सो आततायि पुरुष जिस कालविषे अपणे सन्मुख प्राप्त होवै तिसी कालविषे यह बुद्धिमान् पुरुष विचारतैं विनाही ता आततायि पुरुषकूं हनन करै ता आततायिके हनन करणेतैं इस पुरुषकूं दोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति। आततायिका लक्षण प्रथम अध्यायविषे कथन करि आये हैं यातैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके हननकरिकै तुम्हारेकूं किंचित्मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवैगी नहीं। इहां (सुखिनः क्षत्रियाः) या वचनकरिकै युद्धकर्त्ता पुरुषकूं सुखकी प्राप्ति कथन करी। ताकरिकै (स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव) अर्थ यह–अपणे बांधवोंकूं मारिकै मैं सुखकूं नहीं प्राप्त होवौंगा या अर्जुनके वचनका खंडन करा इति ॥ ३२ ॥

हे भगवन्! जिस पुरुषकूं जिस कर्मके फलकी इच्छा होवै है सो पुरुषही तिस फलकी प्राप्तिवास्तै तिस कर्मविषे प्रवृत्त होवै है। फलकी इच्छातैं विना किसीकीभी प्रवृत्ति होवै नहीं यह वार्त्ता सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है। और हमारेकूं ता युद्धके फलकी इच्छा है नहीं। या कारणतैंही (न कांक्षे विजयं कृष्ण अपि त्रैलोक्यराज्यस्य) या प्रकारका वचन पूर्व हम कथन करि आये हैं। यातैं फलकी इच्छातैं रहित हमारेकूं सो युद्ध करणा उचित नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति ता युद्धके नहीं करणेकरिकै दोषकी प्राप्तिका कथन करे हैं–

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ॥
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

(पदच्छेदः) अथ। चेत्। त्वम्। इमम्। धर्म्यम्। संग्रामम्। न। करिष्यसि। ततः। स्वधर्मम्। कीर्तिम्। च। हित्वा। पापम्। अवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो कदाचित् तूं इस धर्मरूप संग्रामकूं नहीं करैगा तौ तिस संग्रामके नहीं करणेतैं तूं अपणे धर्मकूं तथा कीर्तिकूं परित्याग करिकै पापकूं प्राप्त होवैगा ॥ ३३ ॥

भा० टी०–पूर्व युद्धकी कर्त्तव्यता कथन करी ता युद्धकी कर्त्तव्यतारूप प्रथम पक्षकी अपेक्षा करिकै युद्धकूं नहीं करणा यह दूसरा पक्ष है। ता दूसरे पक्षके बोधन करणेवासतै इस श्लोकके आदिविषे (अथ) यह शब्द कथन करा है। तहां भीष्मद्रोणादिक वीर पुरुष हैं प्रतियोगी जिसके ऐसा जो यह संग्राम है सो युद्धरूप संग्राम हिंसादिक दोषोंतैं रहित है यातैं धर्म्यरूप है। अथवा श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्मतैं अविरुद्ध है यातैं धर्म्यरूप है। ते श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्म मनुभगवान्‌नैं यह कहैं हैं। यह क्षत्रिय राजा रणभूमिविषे युद्ध करता हुआ कपटतैं रहित आयुधोंकरिकै शत्रुवोंकूं हनन करै। तथा रथतैं विना समान पृथिवीविषे स्थित शत्रुकूंभी नहीं हनन करै। तथा नपुंसक शत्रुकूंभी नहीं हनन करै। तथा जो शत्रु मैं तुम्हारा हूं या प्रकारका वचन कहै तिसकूंभी नहीं हनन करै। तथा जो शत्रु निद्राविषे सोया होवै। तथा जो शत्रु वस्त्रोंतैं रहित नग्न होवै। तथा जो शत्रु आयुधोंतैं रहित होवै। तथा जो दूसरेके साथि केवल युद्ध देखणेवासतै आया होवै। तथा जो परीक्षा करणेहारा होवै। तथा जो रोगी होवै तथा जो पुरुष भययुक्त होवै। तथा जो पुरुष युद्धतैं पीछे भागा होवै। इत्यादिक शत्रुपुरुषोंकूं यह योद्धा पुरुष हनन करै नहीं। इत्यादिक श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्मोंका उल्लंघन करिकै जो पुरुष युद्ध करै है सो पुरुष ता युद्धके स्वर्गादिक फलकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु सो पुरुष केवल पापकूंही प्राप्त होवै है। और तूं अर्जुन तौ दुर्योधनादिक शत्रुवोंनैं युद्ध करणेवासतै बुलाया हुआभी जो सद्धर्मकरिकै युक्त इस युद्धरूप संग्रामकूं नहीं करैगा क्या धर्मतैं अथवा लोकतैं भयभीत हुआ जो तूं इस युद्धतैं पीछे फिरैगा तौ " निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्" इत्यादिक शास्त्रकरिकै विधान करे हुए युद्धके नहीं करणेतैं अपणे धर्मका त्याग करिकै क्या अपणे धर्मका नहीं अनुष्ठान करिकै तथा यह अर्जुन साक्षात् महादेवादिक ईश्वरोंके साथभी युद्ध करता भया है, यातैं यह अर्जुन महान् पराक्रमवाला है। या प्रकारकी अपणी कीर्त्तिका परित्याग करिकै " न निवर्तेत संग्रामात् " इत्यादिक शास्त्रकरिकै निषिद्ध जो संग्रामतैं निवृत्तिरूप आचरण है ता निषिद्ध आचरणजन्य पापकूं ही तूं केवल प्राप्त होवैगा। किसी धर्मकूं अथवा किसी कीर्त्तिकूं तूं प्राप्त होवैगा नहीं इति। अथवा (स्वधर्मं हित्वा पापमवाप्स्यसि) या वचनका यह दूसरा अर्थ करणा–पूर्व अनेक जन्मोंविषे तुमनैं इकट्ठे करे जो पुण्यरूप धर्म हैं तिन धर्मोंका परित्याग करिकै तूं केवल

राजकृत पापकूंही प्राप्त होवैगा । तात्पर्य यह । जो कदाचित् तूं इस युद्धतैं पीछे फिरेगा तौभी यह दुर्योधनादिक दुष्ट अवश्यकरिकै तुम्हारा हनन करैंगे । और इस युद्धतैं पीछे हठिकरिकै जो तूं इन दुर्योधनादिकोंके हस्ततैं मरैगा तौ बहुत जन्मोंविषे इकट्ठे करे हुए अपणे पुण्यकर्मोंका परित्याग करिकै इन दुर्योधनादिकोंनैं करे हुए पापकर्मोंकूं ही तूं प्राप्त होवैगा सो ऐसा करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । यह वार्त्ता मनुभगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक । " यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः । भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित् तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १ ॥ यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् । भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु " ॥ २ ॥ अर्थ यह–संग्रामविषे भयभीत होइकै पीछे हट्या-हुआ जो पुरुष शत्रुपुरुषोंनैं हनन करता है सो पुरुष हनन करणेहारे पुरुषके सर्व पापोंकूं प्राप्त होवै है ॥ १ ॥ और युद्धतैं पीछै फिरिकै हननकूं प्राप्त हुए तिस पुरुषनैं स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिवासतै जितनैंकी पुण्यकर्म करे थे ते सर्व पुण्यकर्म सो हनन करणेहारा पुरुष लै जावै है ॥ २ ॥ यह वार्त्ता याज्ञवल्क्यमुनिनैंभी कही है । " राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् " । अर्थ यह–युद्धतैं पीछे फिरिकै हननकूं प्राप्त हुए जो योद्धा हैं तिन योद्धा पुरुषोंके सर्व पुण्यकर्मोंकूं सो हनन करणेहारा राजा लै जावै है इति । इतनै कहणेकरिकै पूर्व अर्जुननैं (पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः । एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोपि मधुसूदन) या प्रकारके वचन कहे थे । तिन सर्व वचनोंका खंडन करा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार पूर्व श्लोकविषे युद्धके परित्याग करणेकरिकै अर्जुनकूं कीर्तिरूप इष्टकी तथा धर्मरूप इष्टकी अप्राप्ति कथन करी । तथा पापरूप अनिष्टकी प्राप्ति कथन करी । तहां पापरूप अनिष्ट तौ बहुत कालतैं पीछे परलोकविषे दुःखरूप फलकी प्राप्ति करै है । और शिष्टपुरुषोंनैं करी जो निंदा है सो निंदारूप अनिष्ट तौ अबीही दुःखरूप फलकी प्राप्ति करै है । तथा बुद्धिमान् पुरुषोंनैं सो निंदाजन्य दुःख सहन करणेकूंभी अशक्य है । यह वार्त्ता श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै हैं–

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) अकीर्तिम् । च । अपि । भूतानि । कथयिष्यंति । ते । अव्ययाम् । संभावितस्य । च । अकीर्तिः । मरणात् । अतिरिच्यते॥३४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा देवे ऋषि मनुष्य तुम्हारी दीर्घकालपर्यंत अकीर्तिकूं भी कथन करैंगे और गुणवान् पुरुषकी अकीर्ति मरणतैंभी अधिक है ॥३४॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो तूं इस युद्धतैं निवृत्त होवैगा तौ देवता ऋषि मनुष्य इसतैं आदिलेके जितनेक भूतप्राणी हैं ते सर्व प्राणी परस्पर कथाप्रसंगविषे यह अर्जुन धर्मात्मा नहीं है तथा शूरवीरभी नहीं है या प्रकारकी तुम्हारी अकीर्त्तिकूं दीर्घकालपर्यंत कथन करैंगे । इहां (च अपि) यह दोनों पद पूर्व कथन करे हुए कीर्त्तिके नाशका तथा धर्मके नाशका समुच्चय करावणेवासतै हैं । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है इस युद्धतैं निवृत्त होणेकरिकै तूं कीर्त्ति धर्म दोनोंका परित्याग करिकै केवल पापकूंही प्राप्त नहीं होवैगा । किंतु अकीर्त्तिकूंभी तूं प्राप्त होवैगा । तथा केवल तूंही ता अकीर्त्तिकूं प्राप्त नहीं होवैगा । किंतु दूसरे देव ऋषि मनुष्यादिक प्राणीभी तुम्हारी अकीर्त्तिकूं कथन करैंगे इति । शंका—हे भगवन् ! युद्धविषे अपणे मरणेका संदेह रहे है । यातैं ता मरणके निवृत्त करणेवासतै अपणी अकीर्त्तिभी सहारणेकूं योग्य है । जिस कारणतैं अपणे आत्माकी रक्षा करणी अत्यंत अपेक्षित है । यह वार्त्ता महाभारतके शांतिपर्वविषेभी कथन करी है तहां श्लोक । "साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरुत वा पृथक् । विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेत कदाचन ॥ १ ॥ अनित्यो विजयो यस्मात् दृश्यते युद्धयमानयोः । पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ २ ॥ त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे । तथा युद्धेत संयत्तो विजयेत रिपून्यथा " ॥ ३ ॥ अर्थ यह—साम, दान, भेद या तीन उपायोंकरिकै अथवा एक एक उपायकरिकै यह बुद्धिमान् पुरुष अपणे शत्रुवोंके जय करणेवासतै प्रयत्न करै ॥ १ ॥ जिस कारणतैं युद्ध करणेहारे पुरुषोंका संग्रामविषे नियमतैं जय देखणेविषे आवता नहीं । किंतु बहुत स्थलविषे पराजयही देखणेमें आवता है । तिस कारणतैं यह बुद्धिमान् पुरुष युद्धकूं नहीं करै ॥ २ ॥ और पूर्व कथन करे जो साम, दान, भेद यह तीन उपाय तिन तीनों उपायोंका जहां असंभव होवै तहां यह पुरुष ऐसा सावधान होइकै युद्ध करै जिसकरिकै अपणे शत्रुवोंकूं जयकरि

लेवै ॥ ३ ॥ यातैं मरणतैं भयकूं प्राप्त हुए पुरुषकूं अकीर्तिजन्य दुःख क्या करैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता शंकाकी निवृत्ति करै हैं । (संभावितस्य इति) हे अर्जुन ! यह पुरुष अत्यंत धर्मात्मा है तथा अत्यंत शूरवीर है इत्यादिक अनेक गुणोंकरिकै जिस पुरुषकूं लोकोंनैं श्रेष्ठ मान्या है, तिस पुरुषका नाम संभावित है । ऐसे संभावित पुरुषकी जो लोकविषे अकीर्ति है सा अकीर्ति मरणतैंभी अधिक है । यातैं तिस अकीर्तितैं ता संभावित पुरुषका मरणही श्रेष्ठ है । और तूं अर्जुनभी धर्मनिष्ठाकरिकै तथा महादेवादिक ईश्वरोंके साथि युद्ध करिकै लोकविषे बहुत संभावित है । यातैं तूं अकीर्तिजन्य दुःखकूं नहीं सहन करि सकैगा और पूर्व कथन करा जो शांतिपर्वका वचन है, सो वचन तौ अर्थ-शास्त्ररूप है । यातैं 'न निवर्तेत संग्रामात्' इत्यादिक धर्मशास्त्रतैं सो वचन दुर्बल है ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! या लोकविषे शत्रुमित्रभावतैं रहित जे उदासीन पुरुष हैं ते उदासीन पुरुष हमारेकूं युद्धतैं विमुख हुआ देखिकै हमारी निंदा करैंगे सो करते रहैं । परंतु यह भीष्मद्रोणादिक जो महारथी पुरुष हैं ते भीष्मद्रोणादिक पुरुष हमारेकूं युद्धतैं निवृत्त हुआ देखिकै यह अर्जुन बहुत करुणायुक्त है या प्रकार हमारी स्तुतिही करैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं–

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ॥
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) भयात्[3] । रणात्[4] । उपरतम्[5] । मंस्यंते[6] । त्वाम्[2] । महारथाः[1] । येषाम्[8] । च[7] । त्वम्[9] । बहुमतः[10] । भूत्वा[11] । यास्यसि[13] । लाघवम्[12] ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह[1] भीष्मद्रोणादिक महारथी तुम्हारेकूं[2] भयतैं[3] रणतैं[4] उपराम[5] हुआ मानैंगे[6] तथा[7] जिन[8] भीष्मादिकोंकूं तूं[9] बहुत[10] गुणयुक्त होता भया ऐसा[11] होइके तिन भीष्मद्रोणादिकोंकेही लाघवताकूं[12] प्राप्त[13] होवैगा ॥ ३५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो तूं युद्धकूं नहीं करैगा । तौ यह भीष्मद्रोणादिक महारथी यह अर्जुन कर्णादिक शूरवीरोंकी भयतैं इस युद्धतैं निवृत्त हुआ है कोई दयाकारिकै युद्धतैं निवृत्त नहीं भया है या प्रकार तुम्हारेकूं मानैंगे । शंका–हे भगवन् ! ते भीष्मद्रोणादिक पूर्व हमारेकूं धर्म, पराक्रम, धैर्य इत्यादिक गुणोंकारिकै श्रेष्ठ

मानते हैं। यातैं अबी ते भीष्मद्रोणादिक हमारेकूं कर्णादिक शूरवीरोंकी भयकरिकै युद्धते निवृत्त हुआ कैसे मानैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं (येषां त्वं बहुमतः) इति। हे अर्जुन! जिन भीष्मद्रोणादिकोंनैं पूर्व तुम्हारेकूं यह अर्जुन धर्म, पराक्रम, धैर्य इत्यादि अनेक गुणोंकरिकै युक्त है या प्रकार मान्या है ते भीष्मद्रोणादिक महारथीही अबी तुम्हारेकूं कर्णादिकोंके भयकरिकै युद्धतैं उपराम हुआ मानैंगे। यातैं जिन भीष्मद्रोणादिकोंनैं पूर्व तुम्हारेकूं श्रेष्ठकरिकै मान्या था। अभी इस युद्धतैं निवृत्त होइकै तूं तिन भीष्मद्रोणादिकोंकेही अनादररूप लाघवकूं प्राप्त होवैगा ॥ ३५ ॥

हे भगवन् ! हमारेकूं युद्धतैं निवृत्त हुआ देखिकै यह भीष्मद्रोणादिक महारथी हमारेकूं श्रेष्ठ मत मानैं। परंतु हमारी युद्धतैं निवृत्ति होणी हमारे दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं बहुत अनुकूल है। यातैं ते दुर्योधनादिक शत्रु तौ हमारेकूं युद्धतैं निवृत्त हुआ देखिकै श्रेष्ठ करिकै मानैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं–

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ॥
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) अवाच्यवादान् । च । बहून् । वदिष्यंति । तव । अहिताः । निंदंतः । तव । सामर्थ्यम् । ततः । दुःखतरं । नु किम् ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तुम्हारे दुर्योधनादिक शत्रुभी तुम्हारे सामर्थ्यकूं निंदते हुए नहीं कहणेयोग्य अनेक प्रकारके वचनोंकूं कथन करैंगे तिसतैं परे अधिक दुख क्या है ॥ ३६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जभी तूं इस युद्धतैं निवृत्त होवैगा तभी सर्व लोकविषे प्रसिद्ध जो तुम्हारा सामर्थ्य है ता सामर्थ्यकी निंदा करते हुए यह दुर्योधन कर्ण विकर्णादिक तुम्हारे शत्रुभी नहीं कथन करणेकूं योग्य जो अनेक प्रकारके धिक्कारशब्द हैं तिन शब्दोंकूं कथन करैंगे। शंका–हे भगवन् ! भीष्मद्रोणादिकोंके नाश होणेकरिकै उत्पन्न होणेहारा जो अत्यंत कष्टरूप दुःख है ता दुःखकूं नहीं सहन करता हुआ इस युद्धतैं निवृत्त हुआ मैं अर्जुन तिन शत्रुवोंनैं करी हुई जो हमारे सामर्थ्यकी निंदा है ता निंदाजन्य दुःखकूं सहारि सकौंगा ऐसी

अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं (ततो दुःखतरं नु किं) इति हे अर्जुन ! लोकनिंदातैं प्राप्त भया जो दुःख है ता दुःखतैं कौन अधिक दुःख है ? किंतु ता निंदाजन्य दुःखतैं अधिक कोईभी दुःख नहीं है। यातैं ता निंदाजन्य दुःखकूं तूं नहीं सहारि सकैगा ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! जो मैं इस युद्धविषे भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं हनन करौंगा तौ मध्यस्थ पुरुष हमारी निंदा करैंगे। और जो मैं इस युद्धतैं निवृत्त होवौंगा तौ यह दुर्योधनादिक शत्रु हमारी निंदा करेंगे। यातैं इस युद्धके करणेपक्षविषे तथा इस युद्धके नहीं करणेपक्षविषे ता निंदाजन्य दुःखकी प्राप्ति तुल्यही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् जयपक्षविषे तथा पराजयपक्षविषे तुम्हारेकूं निश्चयकरिकैही लाभकीही प्राप्ति है यातैं युद्ध करणेवासतैही तुम्हारेकूं उठ्या चाहिये या प्रकारका वचन अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ॥
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) हतः[३]। वा[२]। प्राप्स्यसि[४]। स्वर्गम्[५]। जित्वा[७]। वा[६]। भोक्ष्यसे[९]। महीम्[८]। तस्मात्[१०]। उत्तिष्ठ[१३]। कौंतेय[१]। युद्धाय[१२]। कृतनिश्चयः[११] ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे कुंतीके[१] पुत्र अर्जुन ! जो कदाचित्[२] तूं युद्धविषे मृत[३] होवैगा तौ स्वर्गकूं[५] प्राप्त[४] होवैगा अथवा[६] इन[७] शत्रुवोंकूं जीतिकै तूं इस[८] पृथिवीकूं भोगेगा[९] तिस[१०] कारणतैं निश्चययुक्त[११] होइकै तूं इस[१२] युद्धवासतै उठि[१३] खडा होउ ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस युद्धविषे जो कदाचित् तूं इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंतैं मृत्युकूं प्राप्त होवैगा तौ तूं अवश्यकरिकै स्वर्गकूं प्राप्त होवैगा और जो कदाचित् तूं इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं जीतैगा तौ तूं शत्रुरूप कंटकोंतैं रहित इस पृथिवीके राज्यकूं भोगैगा। जिस कारणतैं पराजयपक्षविषे तथा जयपक्षविषे या दोनों पक्षविषे तुम्हारेकूं लाभकीही प्राप्तिहै। तिस कारणतैं कै तौ मैं इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं जीतौंगा कै तौ मैं मृत्युकूं प्राप्त होवौंगा या प्रकारका दृढ निश्चय करिकै तूं इस युद्धकरणेवासतैं उठि खडा होउ। इतनै कहणेकरिकै अर्जुनके " न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयः" इत्यादिक सर्व वचनोंका खंडन करा इति ॥ ३७ ॥

हे भगवन् ! जो कदाचित् मैं स्वर्गकी प्राप्तिवासतैं इस युद्धकूं करौंगा तौ ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंकी न्याईं इस युद्धकूं नित्य कर्मरूपता नहीं संभवैगी। किंतु काम्यकर्मरूपता होवैगी। और जो कदाचित् मैं इस पृथिवीके राज्यकी प्राप्ति-वासतै इस युद्धकूं करौंगा तौ ता युद्धके विधान करणेहारे शास्त्रकूं अर्थशास्त्ररूपता प्राप्त होवैगी । ताकरिकै तिस शास्त्रविषे धर्मशास्त्रकी अपेक्षाकरिकै दुर्बलता सिद्ध होवैगी। यातैं काम्यकर्मरूप युद्धके न करणेकारिकै हमारेकूं कैसे पाप होवैगा किंतु नहीं होवैगा । तथा राज्यरूप दृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे तिन गुरुब्राह्मणोंके हननरूप युद्धविषे कैसे धर्मरूपता होवैगी किंतु नहीं होवैगी। यातैं (अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यम्) या पूर्व श्लोकका अर्थ असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) सुखदुःखे । समे । कृत्वा । लाभालाभौ । जयाजयौ । ततः । युद्धाय । युज्यस्व । न । एवम् । पापम् । अवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सुखदुःख दोनोंकूं तथा लाभअलाभ दोनोंकूं तथा जय अजय दोनोंकूं समान करिकै तिसतैं अनंतर तूं युद्ध करणेवासतै तयार होउ इस प्रकार युद्ध करता हुआ तूं पापकूं नहीं प्राप्त होवैगा ॥ ३८ ॥

भा० टी०–इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिविषे जो रागद्वेषतैं रहित होणा है याका नाम समताभाव है। तहां सुखविषे तथा ता सुखके कारणरूप लाभविषे तथा ता लाभके कारणरूप जयविषे रागकूं न करिकै इस प्रकार दुःखविषे तथा ता दुःखके कारणरूप अलाभविषे तथा ता अलाभके कारणरूप अजयविषे द्वेषकूं न करिकै तूं इस युद्ध करणेवासतै तयार होउ। इस प्रकार सुखकी कामनाका परित्याग करिकै तथा दुःखके निवृत्तिकी कामनाका परित्याग करिकै केवल स्वधर्मबुद्धिकरिकै जो तूं इस युद्धकूं करैगा तौ इन गुरुब्राह्मणोंके हननजन्य पापकूं तथा नित्यकर्मके नहीं करणेजन्य पापकूं तूं प्राप्त होवैगा नहीं। और जो पुरुष इस लोकके फलकी अथवा परलोकके फलकी कामनाकरिकै युद्धकूं करै है सो पुरुष गुरुब्राह्मणादिकोंके नाशजन्य पापकूं अवश्य प्राप्त होवै है। और

जो पुरुष ता युद्धकूं नहीं करै है सो पुरुष ता नित्यकर्मके न करणेजन्य पापकूं होवै है। यातैं फलकी इच्छातैं विना केवल स्वधर्म जानिकै युद्धके करणेतैं यह पुरुष ता दोनों प्रकारके पापकूं प्राप्त होवै नहीं। और " हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् " या वचनकारिकै जो हमनैं पूर्व युद्धके फलका कथन कराहै सो आनुषंगिक फलका कथन कराहै। यातैं ता पूर्व वचनकाभी विरोध होवै नहीं। यह वार्त्ता आपस्तंबऋषिनैंभी कथन करीहै। "तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गंध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यंते नोचेदनूत्पद्यंते न धर्म-हानिर्भवतीति" । अर्थ यह—जैसे इस लोकविषे आम्रफलोंकी प्राप्तिवासतै लगाया हुआ जो आम्रका वृक्ष है ता वृक्षकी छाया तथा सुगंध अवश्य करिकै प्राप्त होवै है। तहां छाया सुगंधकी प्राप्ति ता वृक्षका आनुषंगिक फल है। तैसे यह धर्म हमारेकूं अवश्य करणेयोग्य है या प्रकार स्वधर्मबुद्धिकरिकै करा हुआ जो धर्म है ता धर्मकरिकै राज्यस्वर्गादिक अर्थभी अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं परंतु ते राज्य स्वर्गादिक पदार्थ ता धर्मका आनुषंगिक फलरूप हैं। जो कदाचित् ते राज्यस्वर्गादिक अर्थ नहींभी प्राप्त होवैं तौभी ता करे हुए धर्मकी हानि होवै नहीं इति। यातैं युद्धकूं विधान करणेहारा शास्त्र अर्थशास्त्ररूप नहीं है। किंतु धर्मशास्त्र-रूप है। इतनैं कहणेकरिकै श्रीभगवानूनै (पापमेवाश्रयेदस्मान्) इत्यादिक अर्जुनके वचनोंका खंडन करा ॥ ३८ ॥

हे भगवन् ! स्वधर्मबुद्धिकरिकै युद्ध करणेहारे पुरुषकूं जो आपनैं पापका अभाव कह्या सो सत्य है। तथापि हमारेप्रति युद्ध करणेका उपदेश करणा आपकूं उचित नहीं है। काहेतैं पूर्व आपनैं (य एनं वेत्ति हंतारं कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम्) इत्यादिक वचनोंकारिकै विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंका निषेध कथन करा है। और अकर्त्ता अभोक्ता शुद्धस्वरूप मैं हूं तथा इस युद्धकूं करिकै मैं ताके फलकूं भोगौंगा या प्रकारका ज्ञानभी संभवता नहीं। जिस कारणतैं अकर्तृत्वबुद्धिका तथा कर्तृत्वबुद्धिका परस्पर विरोध है। एक अधिकरणविषे एक कालमैं ते दोनों बुद्धि होवैं नहीं और जैसे प्रकाश तथा अंधकार या दोनोंका समुच्चय होवै नहीं, तैसें ज्ञान तथा कर्म या दोनोंकाभी समुच्चय होवै नहीं। यह अर्जुनका अभिप्राय (ज्यायसीचेत्) या श्लोकविषे आगे स्पष्ट होवैगा। यातैं एकही मैं अर्जुनके प्रति ज्ञानका उपदेश तथा

कर्मका उपदेश संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् विद्वत् अवस्थाके तथा अविद्वत् अवस्थाके भेदकरिकै एकही पुरुषके ज्ञानका उपदेश तथा कर्मका उपदेश संभव होइ सकै है या प्रकारका उत्तर कहै हैं—

एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु॥
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) एषा । ते । अभिहिता । सांख्ये । बुद्धिः । योगे । तु । इमाम् । शृणु । बुद्ध्या । युक्तः । यया । पार्थ । कर्मबंधम् । प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमनैं तुम्हारे तांई यह पूर्व उक्त बुद्धि ब्रह्मविषे कथन करी अभी कर्मयोगविषे इस वक्ष्यमाण बुद्धिकूं तूं श्रवण कर जिस बुद्धिकारिकै युक्त हुआ तूं कर्मबंधकूं परित्याग करैगा ॥ ३९ ॥

भा० टी०—देहादिक सर्व उपाधियोंतैं भिन्न कारिकै परमात्माका वास्तव स्वरूप प्रतिपादन करिये जिसकारिकै ताका नाम संख्य है ऐसा उपनिषद्रूप शास्त्र है । ता उपनिषद्कारिकै जो वस्तु प्रतिपादन करिये ता वस्तुका नाम सांख्य है ऐसा जीवका वास्तव स्वरूप परमात्मा देव है । ऐसे सांख्य नामा परमात्मादेवविषे (नत्वेवाहं जातु नासम्) इस श्लोकतैं आदिलैके (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इस श्लोकतैं पूर्व एकविंशति (२१) श्लोकोंकारिकै ज्ञानरूप बुद्धि हमनैं तुम्हारेप्रति कथन करी । कैसी है सा बुद्धि जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंके निवृत्तिका कारण है । ऐसी आत्मज्ञानरूप बुद्धि जिस अधिकारी पुरुषकूं प्राप्त भई है । तिन विद्वान् पुरुषके प्रति कदाचित्भी हमनैं कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करी नहीं । काहेतैं (तस्य कार्यं न विद्यते) या वचनकारिकै तिस विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंके कर्तव्य ताका अभाव आगे हमनैं कथन करणा है । जो कदाचित् अभी तौ मैं ता विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंकी कर्त्तव्यताका कथन करौं और आगे ता विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंकी कर्त्तव्यताका अभाव कथन करौं तौ हमारे पूर्व उत्तर वचनोंका विरोध होवैगा यातैं विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंकी कर्त्तव्यतामें हमारा तात्पर्य नहीं है किंतु हमारा यह तात्पर्यहै । इस प्रकार आत्माके उपदेश किये हुएभी जो कदाचित् अपणे चित्तके दोषतैं तुम्हारेकूं सा ब्रह्मात्माकारबुद्धि नहीं उत्पन्न होवै तौ ता चित्तके दोषकी निवृत्ति कारिकै

आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै तुम्हारेकूं निष्कामकर्मयोगही अनुष्ठान करणे योग्यहै। तिस कर्मयोगविषे करणे योग्य जो(सुखदुःखे समे कृत्वा)या श्लोकविषे कथन करी हुई फलकी इच्छाका त्यागरूप बुद्धिहै ता बुद्धिकूं अभी मैं विस्तारकरिकै कथन करता हूं। तूं तिस बुद्धिकूं श्रवणकर। इहां (योगे तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्व कथन करी हुई ज्ञानरूप बुद्धिविषे कर्मयोगविषयत्वके अभावकूं सूचन करे है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस अधिकारी पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ है ता अधिकारी पुरुषके प्रति तौ आत्मज्ञानकाही उपदेश करणा योग्य है। और जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं भया है ता पुरुषके प्रति तौ कर्मकाही उपदेश करणा योग्य है। यातैं ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके समुच्चयकी शंकाकारिकै विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं इति। अब फलका कथन करिकै ता कर्मयोगविषयक बुद्धिकी स्तुति करे हैं (बुद्ध्या यया इति) जिस व्यवसायात्मक बुद्धिकरिकै तिन निष्काम कर्मोंविषे जुड्या हुआ तूं कर्मजन्य अंतःकरणकी अशुद्धिरूप बंधकूं परित्याग करैगा इहां यह तात्पर्य है। पापकर्मजन्य जो अंतःकरणकी अशुद्धिरूप ज्ञानका प्रतिबंध है सो प्रतिबंध तौ धर्मरूप कर्मकरिकैही निवृत्त होवै है। दूसरे किसी उपायकरिकै सो प्रतिबंध निवृत्त होवै नहीं। तहां श्रुति। "धर्मेण पापमपनुदति"। अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष निष्कामकर्मरूप धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करे है इति। और श्रवण मननादिरूप जो विचार है सो विचार तौ पापकर्मरूप प्रतिबंधतैं रहित पुरुषके असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधकूं निवृत्त करै है। यातैं पापकर्मरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति करणेवासतै सो श्रवणादिरूप विचार उपदेश करा जावै नहीं। और इदानीं कालविषे तुम्हारा अंतःकरण अत्यंत मलिन है यातैं अभी तुमनैं बहिरंगसाधनरूप कर्मही करणे योग्य है। इस कालविषे तुम्हारेमें श्रवणादिकोंकी योग्यताभी उत्पन्न भई नहीं तौ ज्ञानकी योग्यता तुम्हारेविषे किस प्रकार होवैगी? किंतु इस कालविषे ज्ञानकी योग्यता तुम्हारे में है नहीं। यहही वार्त्ता (कर्मण्येवाधिकारस्ते) या श्लोकविषे आगे कथन करैंगे। इतने कहणेकरिकै सांख्यबुद्धिके श्रवणादिरूप अंतरंगसाधनोंकूं छोडिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति कर्मरूप बहिरंगसाधन किसवासतै उपदेश करीते हैं या प्रकारकी शंकाकाभी खंडन करा॥ ३९॥

हे भगवन्! "तमेतं वेदानुवचने ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन" इति। या श्रुतिनैं विविदिषाकी प्राप्तिवासतै तथा ज्ञानकी प्राप्तिवासतै यज्ञ

दान तपादिक कर्मोंका विधान करा है। तहां यज्ञदानादिक कर्मोंकरिकै साक्षात तौ विविदिषाकी तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं। किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता विविविषाकी तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवै है। या कारणतैं आपनैं हमारे प्रति कर्मोंका अनुष्ठान विधान करया है। और श्रुतिनैं तौ कर्मके फलकूं नाशवान् कह्या है। तहां श्रुति। "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते"। अर्थ यह—जैसे इस लोकविषे कर्मकरिकै जन्य होणेतैं यह गृहादिक पदार्थ नाशकूं प्राप्त होवै हैं। तैसे परलोकविषे पुण्यकर्म करिकै जन्य होणेतैं स्वर्गादिक पदार्थभी नाशकूं प्राप्त होवै हैं इति। किंवा जैसे स्वर्गकी प्राप्तिवासतै करे हुए ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं ते यज्ञ काम्यकर्मरूपही होवै हैं। तैसे ज्ञानकी प्राप्तिवासतै अथवा ज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाकी प्राप्तिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं ते कर्मभी काम्यकर्मरूपही होवैंगे। और जो जो काम्यकर्म होवै हैं सो सो सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक अनुष्ठान करा हुआही फलका हेतु होवै है। किंचित् अंगकी वैगुण्यताकरिकै सो काम्यकर्म फलकी प्राप्ति करै नहीं। यातैं यत्किंचित् अंगोंकी न्यूनअधिकताकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंविषे वैगुण्यदोषकी प्राप्तिभी संभवै है। और "यज्ञेन दानेन" या श्रुतिनैं विधान करे जो यज्ञदानादिक कर्म हैं ते सर्व कर्म एक पुरुषनैं अपणे शत वर्ष आयुषकी समाप्तिपर्यंतभी करणेकूं अशक्य हैं। यातैं (कर्मबंधं प्रहास्यसि) या वचनकरिकै आपनैं कथन करा जो कर्मयोगका फल है ता फलके प्राप्तिकी आशा हमारेकूं होती नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान उत्तर कहै हैं—

नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) न। इह। अभिक्रमनाशः। अस्ति। प्रत्यवायः। न। विद्यते। स्वल्पम्। अपि। अस्य। धर्मस्य। त्रायते। महतः। भयात् ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! इस निष्कामकर्मयोगविषे कर्मके फलका नाश नहीं होवै है तथा प्रत्यवायभी नहीं होवै है तथा इस निष्कामधर्मका यत्किंचित् धर्मभी इस पुरुषकूं महान् भयतैं रक्षा करै है ॥ ४० ॥

भा॰ टी॰—यज्ञदानादिक कर्मोंनैं जिस फलका प्रारंभ करीता है ता फलका नाम अभिक्रम है । तहां 'तद्यथेह' या श्रुतिवचनकरिकै कथनकरा जो ता फलका नाश है सो फलका नाश इस निष्काम कर्मरूप योगविषे कदाचित्भी होवै नहीं । काहेतैं 'तद्यथेह कर्मचितः' या श्रुतिनैं तौ कर्मकरिकै प्राप्त लोकका नाश कथन करा है । तहां लोकशब्द केवल भोग्यपदार्थोंकाही वाचक है । और निष्कामकर्मरूप योगका फलरूप जो चित्तकी शुद्धि है सा चित्तकी शुद्धि पापोंका क्षयरूप है यातैं ता चित्तकी शुद्धिरूप फलविषे ता लोकशब्दकी अर्थरूपता है नहीं । या कारणतैं ता चित्तशुद्धिरूप फलका स्वर्गादिकोंकी न्याईं क्षय संभवै नहीं । किंवा तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंत रहणेहारी जो विविदिषा है सा विविदिषाही तिन यज्ञदानादिक कर्मोंका फलरूप है । और सो तत्त्वसाक्षात्कार व्यवधानतैं विनाही अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलका जनक है । जैसे सूर्यादिकोंका प्रकाश व्यवधानतैं विनाही अंधकारकी निवृत्ति करै है । यातैं सो तत्त्वसाक्षात्कार अज्ञानकी निवृत्ति-रूप फलकूं न उत्पन्न करिकै नाश होवै नहीं । किंतु अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलकूं उत्पन्न करिकैही सो तत्त्वसाक्षात्कार नाश होवै है । जैसे सूर्यादिकोंका प्रकाश अंध-कारकूं नाश करिकैही निवृत्त होवै है । या प्रकारके अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नैं (नेहाभिक्रमनाशोस्ति) या प्रकारका वचन कह्या है । यह वार्त्ता अन्य शास्त्र-विषेभी कथन करी है । तहां श्लोक । "तद्यथेहेति या निंदा सा फले नतु कर्मणि । फलेच्छां तु परित्यज्य कृतं कर्म विशुद्धिकृत्" अर्थ यह । "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते" या श्रुतिवचननैं कथन करी जो निंदा है सा निंदा स्वर्गादिक फलविषयकही है । कोई यज्ञदानादिक कर्मविषयक सा निंदा नहीं है । जिस कार-णतैं फलकी इच्छाका परित्याग करिकै करे हुए ते यज्ञदानादिक कर्म या अधि-कारी पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे हैं इति । तथा तिन यज्ञदानादिक कर्मोंके अंगोंकी न्यूनअधिकतारूप वैगुण्यकरिकै करा हुआ जो तिन कर्मोंका वैगु-ण्यरूप प्रत्यवाय है सो प्रत्यवायभी इस निष्कामकर्मरूप योगविषे है नहीं । काहेतैं 'तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिनैं यज्ञदानादिक नित्यकर्मोंकाही प्रतिबंधक पापोंकी निवृत्तिद्वारा विविदिषाविषे उपयोग कथन करा है । तिन नित्यकर्मोंविषे सर्व अंगोंकी संपूर्णताका नियम होवै नहीं । और 'तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिनैं यज्ञदानादिक काम्यकर्मोंकाभी ता विविदिषाविषे उपयोग कथन करा है । या पक्षके अंगीकार

किये हुएभी फलकी इच्छातैं रहित होणेतैं तिन यज्ञदानादिक काम्यकर्मोंकूंभी नित्य कर्मकीही तुल्यता है काहेतैं काम्यकर्मरूप जो अग्निहोत्र है तथा नित्यकर्मरूप जो अग्निहोत्र है। तिन दोनों अग्निहोत्रोंविषे स्वरूपतै तौ कोई विशेषता है नहीं। किंतु जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छापूर्वक करा जावै है। ता अग्निहोत्रविषे काम्यकर्मरूपताका व्यवहार होवै है। और जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं विना करा जावै है ता अग्निहोत्रविषे नित्यकर्मरूपताका व्यवहार होवै है। इस प्रकार स्वर्गादिक फलकी इच्छा करिकै तथा ता इच्छाके अभावकरिकैही ता अग्निहोत्रविषे काम्यकर्मरूपता तथा नित्यकर्मरूपता सिद्ध होवै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं तिन सकाम कर्मोंविषे तौ यथाविधिपूर्वक सर्व अंगोंकी पूर्णता करणेकाही नियम है। जो कदाचित् यह सकाम पुरुष यथाविधिपूर्वक तिन कर्मोंके सर्व अंगोंकी पूर्णता नहीं करैगा तौ ते यज्ञदानादिक कर्म वैगुण्यभावकूं प्राप्त हुए ता फलकी प्राप्ति नहीं करैंगे। और फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल अंतःकरणकी शुद्धिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं तिन यज्ञदानादिक निष्काम कर्मोंकी तौ यजमानरूप कर्त्तातैं भिन्न प्रतिनिधि आदिकोंकरिकैभी समाप्ति होइ सकै है। यातैं तिन निष्काम कर्मोंविषे अंगोंका वैगुण्यजन्य प्रत्यवाय होवै नहीं इहां यजमान पुरुष किसी रोगादिक निमित्ततैं जिस कर्मके करणेविषे समर्थ नहीं होवै। तिस कर्मकूं जिस ब्राह्मणद्वारा समाप्त करावै है ता ब्राह्मणका नाम प्रतिनिधि है इति। किंवा। 'तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिनैं विधान करे जो अंतःकरणकी शुद्धिवासतै यज्ञदानादिक धर्म हैं ता धर्मके मध्यविषे संख्याकरिकै अथवा अंगोंकरिकै अत्यंत स्वल्प जो धर्म भगवत्के आराधनवासतै अनुष्ठान करा है सो स्वल्प धर्मभी या अधिकारी पुरुषकूं जन्ममरणरूप संसारके महान् भयतैं रक्षा करै है। यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक। "सर्वपापप्रसक्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतम्। भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः" अर्थ यह– सर्व पापकर्मोंविषे प्रीतिवाला हुआभी यह पुरुष अनन्य होइकै एक निमेषमात्रभी अच्युतपरमात्मादेवका ध्यान करता हुआ ता ध्यानके प्रभावतैं पुनः तपस्वी होवै है। तथा पंक्तिके पवित्र करणेहारे पुरुषोंकाभी पवित्र करणेहारा होवै है इति। और 'तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिवचनविषे सर्व कर्मोंके समुच्चयका विधान

करणेहारा कोई वचन है नहीं। यातैं अंतकरके अशुद्धिकी न्यून अधिकताकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंके अनुष्ठानकी न्यूनअधिकताभी संभव होइ सकै है। यातैं (कर्मबंधं प्रहास्यसि) यह हमारा वचन यथार्थ है ॥ ४० ॥

अब इस पूर्वश्लोकविषे कथन करे हुए अर्थके स्पष्ट करणेवासतै 'तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिनैं विधान करे जो यज्ञदानादिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषे एक अर्थता निरूपण करे हैं–

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन॥
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥ ४१॥

(पदच्छेदः) [3]व्यवसायात्मिका। [4]बुद्धिः। [5]एका। [2]इह। [1]कुरुनंदन। [8]बहुशाखाः। हि। [10]अनंताः। [9]च। [7]बुद्धयः। [6]अव्यवसायिनाम्॥ ४१॥

(पदार्थः) हे [1]अर्जुन! [2]इस श्रेयके मार्गविषे [3]आत्मतत्त्वका निश्चयरूप [4]बुद्धि [5]एकही विवक्षित है और [6]सकाम पुरुषोंकी [7]बुद्धियां तो [8]बहुत शाखावाली हैं [9]तथा [10]अनंत हैं॥ ४१॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन! इस मोक्षरूप श्रेयके मार्गविषे अथवा 'तमेतंवेदानुवचनेन' इस श्रुतिवचनविषे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास या चारी आश्रमोंकूं आत्मतत्त्वकी निश्चयरूप बुद्धि एकही सिद्ध करणेकूं विवक्षित है। काहेतैं वेदानुवचनेन, यज्ञेन, दानेन, तपसा, अनाशकेन या पदोंके अंतविषे स्थित जो तृतीयाविभक्ति है ता तृतीयाविभक्तिनैं तिन वेदानुवचनादिकोंविषे परस्पर निरपेक्षसाधनरूपता बोधन करी है। तहां गुरुके मुखतैं वेदोंके अध्ययन करणेका नाम वेदानुवचन है। सो वेदोंका अध्ययन ब्रह्मचारीके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म है। यातैं ता वेदानुवचनकरिकै ब्रह्मचारीके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा तथा यज्ञ, दान, यह दोनों गृहस्थके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म हैं। यातैं ता यज्ञदानकरिकै गृहस्थके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा और कृच्छ्रचांद्रायणका नाम तप है सो तप वानप्रस्थके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म है। यातैं ता तपकरिकै वानप्रस्थके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा। तहां मृत्युका कारण जो अनशनव्रत है ताकी निवृत्ति करणेवासतै तिस तपका अनाशक यह विशेषण दिया है। इस प्रकार सर्व भूतप्राणियोंकूं अभय दान तथा प्रणवादिक मंत्रोंका जप इत्यादिक संन्यासीके धर्मभी

जानि लेणे इति । और भगवान् भाष्यकारोंनें तौ या श्लोकका यह व्याख्यान करा है सांख्यविषयक तथा योगविषयक जो बुद्धि है सा बुद्धि एकही फलका जनक होणेतैं एक है । और सा बुद्धि निर्दोषवेदवाक्योंतैं जन्य होणेतैं व्यवसायात्मिका है। क्या सर्व विपरीतबुद्धियोंका बाधक है और अव्यवसायी अज्ञानी पुरुषोंकी जो बहुत शाखावाली अनंत बुद्धियां हैं ते सर्व बुद्धियां विपरीत होणेतैं ता व्यवसायात्मिक बुद्धिकारिकै बाध्य हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ यह अर्थ करा है । परमेश्वरके आराधनकारिकैही मैं इस संसारसमुद्रकूं तरौंगा या प्रकारकी निश्चयरूपा एकनिष्ठा बुद्धिही इस कर्मयोगविषे होवे है इति । सर्व प्रकारतैं ज्ञानकांडके अनुसारकारिकै (स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्) या वचनका अर्थ भली प्रकारतैं सिद्ध होवै है । और कर्मकांडविषे तौ तिस तिस स्वर्गादिक फलकी कामनावाले अव्यवसायी पुरुषोंकी बुद्धियां तौ बहुत शाखावाली होवै हैं । क्या कामनावोंके अनेक भेदतैं ते बुद्धियांभी अनेक भेदवाली होवै हैं । तथा कर्मफल गुणफल आदिकोंकूं विषय करणेहारी उपशाखावोंके भेदतैं ते बुद्धियां अनंत होवै हैंइति । तहां (अनंता हि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है सो हि शब्द तिन सकाम पुरुषोंके बुद्धियोंविषे अनंतरूपताकी प्रसिद्धि बोधन करणेवासतै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । अंतःकरणकी शुद्धि करणेवासतै जो निष्काम कर्म हैं तिन निष्काम कर्मोंविषे सकाम कर्मोंकी अपेक्षाकारिकै महान् विलक्षणता है ॥ ४१ ॥

हे भगवन् ! जैसे निष्काम अधिकारी पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त होवै है तैसे सकाम पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि क्यूं नहीं प्राप्त होती ? किंतु तिन सकाम पुरुषोंकूंभी सा व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त होणी चाहिये । जिस कारणतैं शास्त्ररूप प्रमाण तौ तिन दोनोंकूं तुल्यही प्राप्त है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् प्रतिबंधके वशतैं तिन सकाम पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं प्राप्त होवै है या प्रकारका उत्तर तीन श्लोकोंकारिकै कथन करैं हैं-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ॥
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) याम् । इमाम् । पुष्पिताम् । वाचम् । प्रवदंति । अविपश्चितः । वेदवादरताः । पार्थ । न । अन्यत् । अस्ति । इति । वादिनः ॥ ४२ ॥ कामात्मानः । स्वर्गपराः । जन्मकर्मफलप्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलाम् । भोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ ४३॥ भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् । तया । अपहृतचेतसाम् । व्यवसायात्मिका । बुद्धिः । समाधौ । न । विधीयते ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते, विचारहीन पुरुष जिस प्रसिद्ध कर्मकांडरूप वाणीकूं कथन करैं हैं कैसी है सा वाणी अविचारतैं रमणीक है तथा जन्मकर्मफलके देणेहारी है तथा भोगऐश्वर्यके प्राप्तिवासतै अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं विस्तारतैं प्रतिपादन करणेहारी है ऐसी वाणीकूं कहणेहारे ते विचारहीन पुरुष कैसे हैं "वेदके अर्थवादोंविषे प्रीतिमान् हैं तथा कर्मके फलतैं भिन्न कोई ज्ञानका फल नहीं है" या प्रकार कथन करणेहारे हैं तथा कामरूप हैं तथा स्वर्गही है उत्कृष्ट जिन्होंकूं तथा भोगऐश्वर्यविषे है आसक्ति जिन्होंकी तथा तां वाणीकरिकै आच्छादित हुआ है चित्त जिन्होंका ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंके अंतःकरणविषे सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होवै है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" । अर्थ यह—या अधिकारी पुरुषनैं वेद अध्ययन करणा इति । या अध्ययनविधितैं प्राप्त होणेकरिकै अत्यंत प्रसिद्ध जो यह कर्मकांडरूप वाणी है कैसी है सा वाणी जैसे निर्गंध पुष्पोंकरिकै युक्त पलाशका वृक्ष दूरतैं रमणीक लागै है तैसे यह वाणी अविचारतैंही रमणीक लागै है काहेतैं ता वाणीकरिकै केवल स्वर्गादिक फलोंका तथा यज्ञादिक साधनोंका तथा तिन दोनोंके परस्पर संबंधकाही ज्ञान होवै है । कोई निरतिशय आनंदरूप फलकी प्राप्ति होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! ता कर्मकांडरूप वाणीतैं निरतिशयानंदरूप फलकी प्राप्ति नहीं होती याकेविषे क्या कारण है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (जन्मकर्मफलप्रदाम् इति) अपूर्व शरीरइंद्रियादिकोंका संबंधरूप जो जन्म है । तथा ता जन्मके अधीन

तिस तिस वर्णआश्रमके अभिमानजन्य जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं। तथा तिन कर्मोंके अधीन जो पुत्रपशुस्वर्गादिरूप नाशवान् फल हैं ता जन्मकर्मफल तीनों-कूंही घटीयंत्रकी न्याईं विच्छेदतैं रहित यह कर्मकांडरूप वाणी प्राप्त करै है इति। शंका—हे भगवन्! सा वाणी तिन जन्मादिकोंकीही प्राप्ति करै है यह वार्त्ता कैसे जानी जावै। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (भोगैश्वर्यगतिं प्रति क्रियाविशेषबहुलां इति) अमृतका पान तथा उर्वशी आदिक अप्सरावोंके साथि विहार तथा पारिजातवृक्षका सुगंध इत्यादिक पदार्थोंकी प्राप्तिजन्य जो भोग है। तथा ता भोगका कारणरूप जो देवतादिकोंका स्वामीपणारूप ऐश्वर्य है। ता भोग ऐश्वर्य दोनोंकी प्राप्तिकेप्रति साधनभूत जो अग्निहोत्र,दर्शपौर्णमास, ज्योतिष्टोम इत्यादिक क्रियाविशेष हैं। तिन क्रियाविशेषोंकरिकै जा वाणी बहुत विस्तारकूं प्राप्त होइरही है। क्या भोग ऐश्वर्य या दोनोंके साधनभूत क्रियाविशेषोंकूं जा वाणी अत्यंत विस्तारतैं प्रतिपादन करणेहारी है। सो कर्मकांडविषे ज्ञानकांडकी अपेक्षाकरिकै अत्यंत विस्तारपणा सर्वत्र प्रसिद्धही है। ऐसी कर्मकांडरूप वाणीकूं परमार्थरूप स्वर्गादिक फलपरता अंगीकार करैं हैं। शंका—हे भगवन्! ता कर्मकांडरूप वाणीकूं स्वर्गादिरूप फलपरता कौन अंगीकार करैं हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अविपश्चितः इति) जे पुरुष विचारजन्य तात्पर्यज्ञानतैं रहित हैं ते पुरुषही ता वाणीकूं स्वर्गादिरूप फलपरता मानैं हैं। या कारणतैंही ते सकाम पुरुष वेदविषे स्थित जो"अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति"। अर्थ यह—चातुर्मास्ययज्ञके करणेहारे पुरुषकूं अक्षय सुकृत होवै है इत्यादिक अर्थवाद हैं ते अर्थवाद यथार्थही हैं या प्रकारका मिथ्या विश्वास करिके संतोषकूं प्राप्त हुए हैं। या कारणतैंही ते सकाम पुरुष या प्रकारके वचन कहैं हैं कर्मकांडकी अपेक्षाकरिकै कोई ज्ञानकांड भिन्न नहीं है किंतु सो ज्ञानकांड कर्मकांडकाही शेषरूप है। तहां ज्ञानकांडविषे स्थित जो तत्पदार्थके बोधक वचन हैं ते वचन तौ देवताके स्वरूपकूं बोधन करैं हैं और त्वं पदार्थके बोधक जो वचन हैं ते वचन तौ कर्मकर्त्ता यजमानके स्वरूपकूं बोधन करैं हैं। और तत्त्वंपदार्थके अभेदकूं बोधन करणेहारे जो वचन हैं ते वचन तौ कर्मकर्त्ता पुरुष साक्षात् ईश्वररूप है या प्रकार ता कर्मकर्त्ता पुरुषकी स्तुति करैं हैं। इस प्रकार संपूर्ण वेद कर्मपरही हैं। और कर्मका फलरूप जो स्वर्गादिक हैं तिन स्वर्गादिकोंकी अपे-

क्षाकरिकै दूसरा कोई ज्ञानका निरतिशय आनंदरूप फलहै नहीं। इस प्रकार ते सकाम पुरुष अनेक प्रकारकी कल्पना करिकै सर्व प्रकारतैं ज्ञानकांडतैं विरुद्ध अर्थकेही कहणेहारे हैं। शंका–हे भगवन्! ते बहिर्मुख सकाम पुरुष निरतिशय आनंदरूप मोक्षविषे किसवासतै द्वेष करै हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कामात्मानः इति) हे अर्जुन ! कामनावोंके विषयरूप जो अनेक प्रकारके विषय हैं तिन विषयोंकरिकै जिनोंका चित्त सर्वदा व्याकुल होइ रह्या है या कारणतैं ते काममय पुरुष साक्षात् मोक्षविषेभी द्वेष करै हैं। शंका–हे भगवन्! ते सकाम पुरुष जैसे दूसरे विषयोंकी कामना करैं हैं तैसे निरतिशय आनंदरूप मोक्षकी कामना किसवासतै नहीं करते ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (स्वर्गपराः इति) हे अर्जुन ! उर्वशी, नंदनवन, अमृत इत्यादिक विषयोंकरिकै युक्त जो स्वर्ग है सो स्वर्गही है सर्वतैं उत्कृष्ट जिनोंकूं ता स्वर्गतैं भिन्न दूसरा कोई पुरुषार्थ है नहीं। इस प्रकार मानणेहारे भ्रांत पुरुषोंविषे विवेकवैराग्यादिक साधनोंका अभाव है। यातैं ते भ्रांत पुरुष मोक्षकी कथामात्रकूंभी सहारि नहीं सकते तौ तिन मूढ पुरुषोंविषे मोक्षकी इच्छा कहांतैं होणी है इति। इस प्रकार पूर्व उक्त भोग ऐश्वर्य दोनोंविषे क्षयपणा सातिशयता इत्यादिक दोषोंके अदर्शनकरिकै अत्यंत आसक्त हुआ है अंतःकरण जिनोंका तथा ता कर्मकांडरूप वाणीकरिकै आच्छादित होइ गया है विवेकज्ञान जिनोंका तथा 'अक्षय्यं ह वै' इत्यादिक अर्थवादवचन केवल स्तुतिपर हैं। प्रमाणांतरकरिकै अबाधित जो तात्पर्यका विषयभूत अर्थ है ता अर्थविषेही वेदोंकूं प्रमाणरूपता है या प्रकारके प्रसिद्ध अर्थकूंभी जे पुरुष जानणेविषे समर्थ नहीं हैं ऐसे सकाम पुरुषोंके समाधिनामा अंतःकरणविषे सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होवै है। अथवा समाधि या शब्दकरिकै परमात्माका ग्रहण करणा ता परमात्माविषयक सा व्यवसायात्मिका बुद्धि तिन पुरुषोंकी होवै नहीं इति। "समाधीयतेऽस्मिन् सर्वं स समाधिः" या प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकैं अंतःकरणविषे तथा परमात्माविषे ता समाधिशब्दकी अर्थरूपता संभव होइ सकै है। और किसी टीकाकारनैं तौ समाधिशब्दका यह अर्थ करा है मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके स्थितिका नाम समाधि है। ता समाधिके निमित्त तिन पुरुषोंकी सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है इति। इहां यह अभिप्राय है यद्यपि स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति

करणेहारे जो काम्य अग्निहोत्रादिक हैं ते अग्निहोत्रादिक कर्म अंतःकरणकी शुद्धि-वास्तै करणे योग्य अग्निहोत्रादिकोंतैं विलक्षण नहीं हैं। तथापि स्वर्गादिक फलकी इच्छारूप दोषके वशतैं ते काम्य अग्निहोत्रादिक कर्म अंतःकरणके शुद्धिकूं संपादन करैं नहीं। यद्यपि भोगोंके अनुकूल जो अंतःकरणकी शुद्धि है सा अंतःकरणकी शुद्धि तिन सकाम कर्मोंतैंभी होइ सकै है। तथापि सा अंतःकरणकी शुद्धि आत्मज्ञानके उपयोगी है नहीं। इसी अर्थके बोधन करणेवास्तै श्रीभगवान्नैं (भोगैश्वर्यप्रसक्तानां) यह वचन पुनः कथन करा है। और फलकी इच्छातैं विना करे हुए जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं ते निष्काम कर्म तौ आत्मज्ञानके उपयोगी अंतःकरणके शुद्धिकूंही संपादन करैं हैं। यातैं निष्काम विपश्चित् पुरुषोंके फलविषे तथा सकाम अविपश्चित् पुरुषोंके फलविषे महान् विलक्षणता सिद्ध होवै है। इसी वार्त्ताकूं आगे विस्तारकरिकै निरूपण करैंगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

हे भगवन्! तिन सकाम पुरुषोंकूं अपणे अंतःकरणके दोषतैं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि मत प्राप्त होवै। परंतु ता व्यवसायात्मिका बुद्धिकरिकै अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं करणेहारे जो निष्काम पुरुष हैं तिन निष्काम पुरुषोंकूं तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वभावतैं स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति अवश्य होवैगी। यातैं आत्मज्ञानका प्रतिबंध सकाम निष्काम दोनोंविषे समानही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

(पदच्छेदः) त्रैगुण्यविषयाः। वेदाः। निस्त्रैगुण्यः। भव। अर्जुन। निर्द्वंद्वः। नित्यसत्त्वस्थः। निर्योगक्षेमः। आत्मवान् ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! यह कर्मकांडरूप वेद त्रैगुण्यकूं विषय करणेहारे हैं तूं तिस त्रैगुण्यतैं रहित होउ तथा द्वंद्वधर्मोंतैं रहित होउ तथा नित्य सत्त्वविषे स्थित होउ तथा योगक्षेमतैं रहित होउ तथा आत्मवान् होउ ॥ ४५ ॥

भा० टी०–सत्त्व, रज, तम या तीन गुणोंका जो कार्य होवै ताका नाम त्रैगुण्य है ऐसा यह काममूलक संसार है सो काममूलक संसार है प्रकाश्यतारू-

पकारिकै विषय जिनोंका तिनोंका नाम त्रैगुण्यविषया है ऐसे यह कर्मकांडरूप वेद हैं। क्या जो पुरुष जिस फलके प्राप्तिकी कामनावाला है तिस पुरुषके प्रति यह वेद तिसी फलके बोधन करणेहारे हैं। तात्पर्य यह। जो पुरुष जिस फलकी इच्छा करिकै जिस कर्मका अनुष्ठान करै है। तिस पुरुषकूं सो कर्म तिसी फलकी प्राप्ति करैं हैं। तिस तिस फलकी कामनातैं विना कोईभी कर्म तिस तिस फलकी प्राप्ति करै नहीं। यातैं अन्वयव्यतिरेककरिकै या पुरुषकी कामनाही फलकी प्राप्तिविषे कारण है। यातैं हे अर्जुन ! तूं निस्त्रैगुण्य होउ क्या स्वर्गादिक फलकी कामनातैं रहित होउ। ता फलकी कामनातैं रहित तुम्हारेकूं संसारकी प्राप्ति होवैगी नहीं। इतने कहणेकरिकै निष्काम पुरुषोंकूंभी अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वभावतैं ही स्वर्गादिक संसारकी प्राप्ति होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाका खंडन करा इति। शंका—हे भगवन् ! शीत उष्णादिकोंकी निवृत्ति करणेवासतै वस्त्रादिक पदार्थोंकी अपेक्षा अवश्य संभवै है ता अपेक्षाके विद्यमान हुए निष्कामता कैसे होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, श्रीभगवान् कहै हैं (निर्द्वंद्वः इति) इहां (निस्त्रैगुण्यो भव) या वचनविषे स्थित जो भव यह शब्द है ता भवशब्दका उत्तरपदोंविषे सर्वत्र संबंध करणा। हे अर्जुन (मात्रा स्पर्शास्तु) या श्लोकविषे पूर्व कथन करी जो युक्ति है ता युक्तिकरिकै शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान, शत्रु मित्र इत्यादिक सर्व द्वंद्वधर्मोंतैं तूं रहित होउ। क्या तिन सर्व द्वंद्वधर्मोंके सहनस्वभाववाला तूं होउ इति। शंका—हे भगवन् ! नहीं सहारणे योग्य जो दुःख है सो दुःख किस प्रकार सहारा जावैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नित्यसत्वस्थः इति) नित्य क्या अचल ऐसा जो धैर्यनामा सत्व है ता सत्वविषे जो स्थित होवै ताका नाम नित्यसत्वस्थ है। ऐसा नित्यसत्वस्थ तूं होउ। तात्पर्य यह। जिस पुरुषका सो सत्व, रज, तम दोनोंकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त होवै है सो पुरुष शीतउष्णादिजन्य पीडाकरिकै मैं अभी मरौंगा या प्रकारका अपणेकूं मानता हुआ स्वधर्मतैं विमुख होवै है। तूं अर्जुन तौ ता रज, तम दोनोंका तिरस्कार करिकै केवल ता सत्वधर्मकूं आश्रयण कर इति। शंका—हे भगवन् ! शीतउष्णादिकोंके सहन किये हुएभी क्षुधा तृषाकी निवृत्ति करणेवासतै पूर्व नहीं प्राप्त हुए अन्नादिक पदार्थोंके प्राप्तिवासतै तथा पूर्व प्राप्त हुए अन्नादिक पदार्थोंके रक्षण करणेवासतै अवश्य प्रयत्न करणा होवैगा ता प्रयत्नके विद्यमान्

हुए सो नित्य सत्वस्थपणा कैसे होवैगा किंतु नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (निर्योगक्षेमः इति) हे अर्जुन ! पूर्व अप्राप्त वस्तुकी जो प्राप्ति है ताका नाम योग है और पूर्व प्राप्त वस्तुकी जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है ता योग क्षेम दोनोतैं तू रहित होउ। क्या चित्तके विक्षेपका हेतु जो पदार्थोंका परिग्रह है ता परिग्रहतैं तू रहित होउ । शंका-हे भगवन् ता योग क्षेमतैं जो मैं रहित होवोंगा तौ मैं किस प्रकार जीवोंगा । किंतु हमारा जीवन नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तू अपणे जीवनकी चिंता मत कर सर्वका अंतर्यामी परमेश्वरही तुम्हारे योगक्षेमादिकोंका निर्वाह करैगा या प्रकारका उत्तर कहैं हैं। (आत्मवान् इति) आत्मा क्या परमात्मा ध्येयतारूपकरिकै तथा योगक्षेमादिकोंका निर्वाहकरतारूपकरिकै विद्यमान है जिस पुरुषका ताका नाम आत्मवान् है ऐसा आत्मवान् तू होउ । क्या सर्व कामनावोंका परित्याग करिकै परमेश्वरका आराधन करणेहारा जो मैं हूं तिस हमारे देहकी यात्रामात्रवासतै अपेक्षित जो अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंकूं सो अंतर्यामी ईश्वरही संपादन करैगा या प्रकारका निश्चय करिकै तू निश्चित होउ इति । अथवा आत्मवान् होउ क्या अप्रमत्त होउ ॥ ४५ ॥

हे भगवन् ! स्वर्गादिक फलविषयक सर्व कामनावोंका परित्याग करिकै कर्मोंकूं करता हुआ मैं अर्जुन तिस तिस कर्मकरिकै प्राप्त होणे योग्य जो स्वर्गादिक आनंद हैं तिन सर्वआनंदोंतैं रहित होवौंगा । जिस कारणतैं कामनातैं विना तिन स्वर्गादिक आनंदोंकी प्राप्ति होती नहीं । यह वार्त्ता पूर्व आप कथन करि आये हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ब्रह्मानंदके प्राप्त हुएतैं सर्व आनंद प्राप्त होवैं हैं या प्रकारका उत्तर कहैं हैं-

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

(पदच्छेदः) यावान् । अर्थः । उदपाने । सर्वतः । संप्लुतोदके । तावान् । सर्वेषु । वेदेषु । ब्राह्मणस्य । विजानतः ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जैसे अल्प जलवाले स्थानोंविषे जितनोंकी स्नानपानादिरूप प्रयोजन सिद्ध होवै है सर्व ओरतैं महान् जलवाले तलावविषे ते स्नानपानादिक

सर्वही प्रयोजन सिद्ध होवैं हैं तैसे सँर्व वेदउक्त काम्यकर्मोंविषे जितनेक हिरण्यगर्भके लोकपर्यंत आनंद प्राप्त होवैं हैं तितने सर्व आनंद ब्रह्मसाक्षात्कारवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं होवै हैं ॥ ४६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जैसे पर्वततैं निकसे हुए जो अनेक जलके झरणे हैं ते सर्व जलके झरणे किसी नीची भूमिविषे जाइके एकठे होवै हैं ताकी तलाव संज्ञा होवै है। तहां एक एक झरणेके जलतैं यथाक्रमतैं सिद्ध होणेहारे जो स्नान, पान, वस्त्रप्रक्षालन आदिक प्रयोजन हैं ते स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन तिन झरणोंके जलोंके समूहरूप महान् तलावविषे सिद्ध होवैं हैं काहेतैं तिन सर्व झरणोंके जलोंका तिस तलावविषेही अंतर्भाव है। तैसे वेदोंविषे कथन करे हुए जितनेक अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम, अश्वमेध आदिक काम्य कर्म हैं तिन अग्निहोत्रादिक काम्यकर्मोंकारिकै इस सकाम पुरुषकूं क्रमतैं प्राप्त होणेहारे जो स्वर्गलोकतैं आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत विषयजन्य आनंद हैं ते सर्व आनंद इस ब्रह्मसाक्षात्कारवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं एकही कालविषे प्राप्त होवैं हैं काहेतैं भूमिलोकतैं आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत जितनेक विषयजन्य क्षुद्र आनंद हैं ते सर्व आनंद ब्रह्मानंदके अंशरूप हैं यातैं ते सर्व क्षुद्र आनंद ता ब्रह्मानंदके अंतर्भूतही हैं। तहां श्रुति। "एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंति"। अर्थ यह–ब्रह्मातैं आदिलैके सर्व प्राणिमात्र इस ब्रह्मानंदके अंशमात्रकूं अंगीकारकारिकै आनंदपूर्वक जीवते हैं इति। यद्यपि एक अद्वितीय ब्रह्मानंदविषे अंशअंशीभाव संभवता नहीं तथापि जैसे एकही आकाशविषे घटादिक उपाधियोंके वशतैं अंशअंशीभावव्यवहार होवै है तैसे एकही ब्रह्मानंदविषे अविद्याकृत अंतःकरणादिक उपाधियोंके वशतैं अंशअंशीभावव्यवहार होवै है। वास्तवतैं सो अंशअंशीभाव है नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया निष्काम कर्मोंकारिकै जबी तुम्हारा अंतःकरण शुद्ध होवैगा तबी तुम्हारेकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैगी। ता आत्मज्ञानकारिकै तुम्हारेकूं ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होवैगी। ता ब्रह्मानन्दविषेही हिरण्यगर्भादिक सर्व आनंदोंका अंतर्भाव है। यातैं ता ब्रह्मानंदकी प्राप्तिकारिकै तुम्हारेकूं तिन सर्व आनन्दोंकी प्राप्ति होवैगी। यातैं तिन विषयजन्य क्षुद्र आनन्दोंकी प्राप्तिवासतै तुम्हारेकूं तिन काम्यकर्मोंके करणेका कछु प्रयोजन नहीं है। यातैं ता ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति करणेहारे आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै तूं निष्काम कर्मोंकूं कर इति। और किसी टीका-

कारनें तौ इस श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करिकै यह अर्थ करा है। (यावान्। अर्थः । उदपाने । सर्वतः । संप्लुतोदके । तावान्। सर्वेषु । वेदेषु । ब्राह्मणस्य । विजानतः इति) जैसे सर्व ओरतैं महान् जलवाले महान् तलावविषे इस पुरुषके स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन एक घटमात्र जलकरिकैही सिद्ध होवैं हैं। कोई ता महान् तलावके सर्व जलके खरच करणेतैं ते स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं। इस प्रकार शुद्ध चित्तवाल मुमुक्षु जनका सो सर्व प्रयोजन सर्व वेदोंविषे उपनिषद्रूप वेदके एकदेशके श्रवणमात्रकरिकैही सिद्ध होवै है तिन मुमुक्षु जनोंकूं ता अपणे प्रयोजनकी सिद्धिवासतै कोई सर्व वेदोंके अर्थके अनुष्ठानकी अपेक्षा रहै नहीं। जिस कारणतैं एक जन्मकरिकै सर्व वेदोंके अर्थका अनुष्ठान करणा संभवता नहीं इति। या दोनों व्याख्यानोंविषे प्रथम व्याख्यान बहुत टीकाकारोंकूं संमत है। और यह दूसरा व्याख्यान किसी एक टीकाकारनैं करा है। परंतु ता प्रथम व्याख्यानविषे श्लोकके पूर्वार्धविषे 'अनेकस्मिन् यथा तथा भवति' या चारि पदोंका अध्याहार करणा होवैहै। और श्लोकके उत्तरार्द्धविषे स्थित दार्ष्टांतिक भागविषे पूर्वार्धतैं यावान् तावान् या दोनों पदोंका अनुषंग करणा होवै है। सो पदोंका अध्याहार तथा अनुषंग इस दूसरे व्याख्यानविषे करणा होवै नहीं। तहां पूर्व अश्रुत पदका जो वाक्यविषे संबंध करणा है याका नाम अध्याहार है। और पूर्व वाक्यविषे स्थित पदका उत्तरवाक्यविषे संबंध करणा याका नाम अनुषंग है ॥ ४६ ॥

हे भगवन् ! ते निष्काम कर्म स्वतंत्र होइकै तौ ता ब्रह्मानंदकी प्राप्ति करते नहीं किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानका संपादन करिकैही ते निष्काम कर्म ता ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति करैं हैं। यातैं जिस आत्मज्ञानकरिकै साक्षातही ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होवै है। सो आत्मज्ञानही हमारेकूं प्रथम संपादन करणे योग्य है। ता आत्मज्ञानकूं छोडिकै बहुत प्रयत्न करिकै सिद्ध होणेहारे तथा बहिरंग साधनरूप ऐसे निष्काम कर्मोंके करणेका कछु प्रयोजन नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् अबी तुम्हारेकूं तिन निष्काम कर्मोंविषेही अधिकार है या प्रकारका उत्तर कहे हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

(पदच्छेदः) कर्मणि । एव । अधिकारः । ते । मा । फलेषु । कदाचन । मा । कर्मफलहेतुः । भूः । मा । ते । संगः । अस्तु । अकर्मणि ॥४७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तुम्हारा कर्मविषेही अधिकार होवो कर्मके फलोंविषे कदाचित्भी तुम्हारा अधिकार मत होवो तूं कर्मोंके फलका उत्पादक मत होउ तथा कर्मके नहीं करणेविषे तुम्हारी प्रीति मत होवै ॥ ४७ ॥

भ० टी०–हे अर्जुन ! आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके अयोग्य अशुद्ध अंतःकरणवाला जो तूं हैं तिस तुम्हारेकूं अबी अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्मोंविषेही अधिकार होवो । क्या हमारेकूं अबी यह निष्काम कर्मही करणेयोग्य हैं या प्रकारका बोध होवो । ज्ञाननिष्ठारूप वेदांतवाक्योंके विचारविषे सो कर्त्तव्यताका बोध अबी तुम्हारेकूं मत होवो इस प्रकार कर्मोंके करणेहारे तुम्हारेकूं तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंविषे तिन कर्मोंके अनुष्ठानतैं पूर्वकालविषे तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानके उत्तरकालविषे तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानकालविषे कदाचित्भी अधिकार मत होवै । क्या इन कर्मोंके स्वर्गादिक फल हमनैं भोगणे हैं या प्रकारका बोध कदाचित्भी तुहारेकूं मत होवै । शंका–हे भगवन् ! हमनैं इस कर्मके स्वर्गादिक फलकूं भोगणा है या प्रकारकी बुद्धिके अभाव हुएभी ते कर्म अपणे सामर्थ्यतैंही स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्ति करैंगे ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् फलकी कामनातैं विना ते कर्म ता फलकी प्राप्ति नहीं करैं हैं या प्रकारका उत्तर कहैं हैं (मा कर्मफलहेतुर्भूः इति) हे अर्जुन ! फलकी कामनाकरिकै तिन कर्मोंकूं करता हुआ यह पुरुष तिन फलोंका उत्पादक होवै है । और तूं अर्जुन तौ ता फलकी कामनातैं रहित होईकै ता कर्मके फलका उत्पादक मत होउ । जिस कारणतैं निष्काम पुरुषोंनैं भगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै करे हुए कर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करते नहीं । यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं इति । शंका–हे भगवन् ! जो कदाचित् ते कर्म अपणे सामर्थ्यतैं फलकी प्राप्ति नहीं करते होवैं तौ ऐसे निष्फल कर्मोंके करणेकाही क्या प्रयोजन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मा ते संगोस्त्वकर्मणि इति) जो कदाचित् स्वर्गादिक फलके प्राप्तिकी इच्छा नहीं होवै तौ दुःखरूप कर्मोंके करणेकाही क्या प्रयोजन है या प्रकारकी तिन कर्मोंके न करणेविषे तुम्हारी प्रीति मत होवै इति ॥ ४७ ॥

अब इस पूर्व कथन करे हुए अर्थकाही विस्तारतैं निरूपण करैं हैं-

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

(पदच्छेदः) योगस्थः । कुरु । कर्माणि । संगम् । त्यक्त्वा । धनंजय । सिद्ध्यसिद्ध्योः । समः । भूत्वा । समत्वम् । योगः । उच्यते ॥ ४८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं योगविषे स्थित हुआ फलकी इच्छाकूं परित्याग करिकै तथा फलकी प्राप्ति अप्राप्ति दोनोंविषे हर्षविषादतैं रहित होईकै कर्मोंकूं कर सो हर्षविषादतैं रहितपणाही योग कह्या जावै है ॥ ४८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! तूं योगविषे स्थित होइकै स्वर्गादिक फलकी इच्छारूप संगका परित्याग करिकै तथा मैं इस कर्मका कर्त्ता हूं या प्रकारके कर्तृत्व अभिनिवेशका परित्याग करिकै कर्मोंकूं कर । अब ता संगके त्यागका उपाय कथन करैं हैं (सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा इति) हे अर्जुन ! तिन वेदयुक्त कर्मोंके स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिविषे तूं हर्षका परित्याग करिकै तथा तिन स्वर्गादिक फलोंकी अप्राप्तिविषे विषादका परित्याग करिकै केवल ईश्वरआराधन बुद्धिकरिकै तिन कर्मोंकूं कर । शंका-हे भगवन् ! पूर्व आपनैं योगशब्दकरिकै कर्मोंका कथन करा था और अबी आपनैं योगविषे स्थित होइकै तूं कर्मोंकूं कर या प्रकारका वचन कह्या है यातैं आपके पूर्वउत्तर वचनोंका अभिप्राय मैं जानि सकता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं (समत्वं योग उच्यते) हे अर्जुन ! कर्मोंके फलकी प्राप्तिविषे तथा कर्मोंके फलकी अप्राप्तिविषे जो हर्षविषादतैं रहितपणारूप समत्व है । सो समत्वही इहां (योगस्थः कुरु कर्माणि) या वचनविषे स्थित योगशब्दकरिकै कथन करा है । ता योगशब्दकरिकै कोई कर्मोंका कथन करा नहीं । यातैं पूर्वउत्तर वचनोंका विरोध होवै नहीं इति । तहां पूर्व (सुखदुःखे समे कृत्वा) या श्लोकविषे जय अजय दोनोंकी समता करिकै केवल युद्धमात्रकी कर्त्तव्यता कथन करी थी । जिस कारणतैं पूर्वप्रसंगविषे युद्धकीही कर्त्तव्यता प्राप्त थी । और इहां तौ दृष्टअदृष्टरूप सर्व फलोंका परित्याग करिकै अपणे वर्णआश्रमके सर्व कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करी है यातैं पूर्वउत्तर वचनोंविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति ॥ ४८ ॥

हे भगवन् ! क्या केवल कर्मोंका अनुष्ठानही पुरुषार्थरूप है। जिस कारणतैं सर्वकालविषे निष्काम कर्मोंकूंही पुरुषनैं करणा या प्रकारका उपदेश वारंवार आपनैं किया है। किंवा। "प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोपि न प्रवर्तते"। अर्थ यह—किंचित् फलरूप प्रयोजनकूं न उद्देशकरिकै मूढ पुरुषभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त होवै नहीं इति। इस लोकप्रसिद्ध न्यायतैंभी तिन निष्काम कर्मोंविषे प्रवृत्ति संभवै नहीं। यातैं फलकी कामनातैं विना निष्फल कर्मोंके करणेतैं फलकी कामना-करिकै कर्मोंका अनुष्ठान करणाही श्रेष्ठ है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभग-वान् उत्तर कहैं हैं—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय॥
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥ ४९॥

(पदच्छेदः) दूरेण। हि। अवरम्। कर्म। बुद्धियोगात्। धनंजय। बुद्धौ। शरणम्। अन्विच्छ। कृपणाः। फलहेतवः॥ ४९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं निष्काम कर्मतैं सो सकाम कर्म अत्यंत दूरताकरिकै अधम है तिस कारणतैं परमात्मबुद्धिनिमित्त निष्काम कर्मयोगके करणेकूं तूं इच्छा कर जे पुरुष फलकी कामनावाले हैं ते पुरुष कृपण हैं॥ ४९॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस कारणतैं आत्मज्ञानरूप बुद्धिका साधनरूप जो निष्काम कर्मयोग है ताका नाम बुद्धियोग है, ता बुद्धियोगतैं सो जन्ममरणका हेतुरूप सकाम कर्म अत्यंत दूरताकरिकै अधम है। अथवा परमात्माविषयक जो बुद्धिरूप योग है ताका नाम बुद्धियोग है ता बुद्धियोगतैं यह संपूर्ण कर्म अधम है। तिस कारणतैं सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करणेहारी जो परमात्मविषयक बुद्धि है ता बुद्धिकी प्राप्तिवासतै प्रतिबंधक पापकर्मोंकी निवृत्तिद्वारा जो निष्काम कर्मयोग है ताके करणेकी तूं इच्छा कर इति। हे अर्जुन ! स्वर्गादिक फलकी कामनावाले जे पुरुष तिन सकाम कर्मोंकूं करैं हैं ते पुरुष कृपण हैं। क्या ते सकाम पुरुष सर्वदा जन्ममरणादिरूप घटीयंत्रके भ्रमणकरिकै नाना प्रकारकी दीन दशावोंकूं प्राप्त होवैं हैं। तहां श्रुति। "यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः"। अर्थ यह—हे गार्गि ! इस भारतखंडविषे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाईकै जो पुरुष इस अक्षर परमात्मादेवकूं न जानिकरिकै इस मनुष्यलोकतैं जावै

है सो पुरुष कृपणही जानणा इति । हे अर्जुन ! ऐसे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाइकै तूंभी ऐसा कृपण मत होउ किंतु जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करणेहारा जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानकूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा उत्पन्न करणेहारा जो निष्कामकर्मरूप योग है ता निष्काम कर्मयोगकूंही तूं कर । इहां (कृपणाः) या पदके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा जैसे इस लोकविषे कोईक कृपण पुरुष अनेक प्रकारके दुःखोंकूं सहन करिकै तथा नानाप्रकारके छल कपटकरिकै धनकूं एकठा करैं हैं ते कृपण पुरुष इस लोकके यत्किंचित् विषयजन्य सुखके लोभकरिकै ता धनका दान करते नहीं । या कारणतैं ते कृपण पुरुष ता धनके दानादिकोंकरिकै जन्य महान् सुखकूं अनुभव करि सकते नहीं । किंतु ता धनके इकट्ठे करणेविषे करे जो पापकर्म हैं तिन पापकर्मोंके नरकादिक दुःखोंकूंही ते कृपण पुरुष अनुभव करैं हैं। यातैं ते कृपण पुरुष अपणी हानि आपही करैं हैं । तैसे यह सकाम पुरुषभी महान् दुःखोंकूं सहन करिकै तिन कर्मोंकूं करैं हैं परंतु स्वर्ग, धन, पुत्र, पशु इत्यादिक अल्प फलोंके लोभकरिकै ते सकाम पुरुष तिन कर्मोंकरिकै मोक्षरूप परमानंदकूं प्राप्त होवैं नहीं किंतु अनेक दुःखोंकरिकै मिले हुए तिन स्वर्गादिक तुच्छ फलोंकूंही प्राप्त होवैं हैं । या कारणतैं ते सकाम पुरुष अपणी हानि आपही करैं हैं । ऐसे सकाम पुरुषोंकी दौर्भाग्यताका तथा मूढताका बुद्धिमान् पुरुषोंकूं बहुत शोक होवै है । यह सर्व अर्थ श्रीभगवान्नैं कृपणपदकरिकै सूचन करा ॥ ४९ ॥

इस प्रकार ता बुद्धियोगके अभाव हुए दोषका निरूपण करा । अब ता बुद्धियोगके विद्यमान हुए गुणका निरूपण करैं हैं–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

(पदच्छेदः) बुद्धियुक्तः । जहाति । इह । उभे । सुकृतदुष्कृते । तस्मात् । योगाय । युज्यस्व । योगः । कर्मसु । कौशलम् ॥ ५० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं इन कर्मोंविषे समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य पाप दोनोंकूं परित्याग करै है तिस कारणतैं ता समत्वबुद्धिरूप योगके वास्तै तूं उद्यमवाला होउ जिस कारणतैं सो योगही तिन कर्मोंविषे कुशलपणा है ॥५०॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शास्त्रनैं विधान करे जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिन कर्मोंके फलकी प्राप्तिविषे तथा फलकी अप्राप्तिविषे हर्षविषादतैं रहिततारूप समत्वबुद्धिकरिकै युक्त जो अधिकारी पुरुष है। सो अधिकारी पुरुष जिस कारणतैं पुण्यपाप दोनोंकूं अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा परित्याग करै है तिस कारणतैं ता समत्वबुद्धिरूप योगकी प्राप्तिवास्तै तूं दृढ उद्यमवाला होउ । जिस कारणतैं सो समत्वबुद्धिरूप योगही तिन कर्मोंविषे प्रवर्त्तमान पुरुषका कुशलपणा है । तात्पर्य यह । वास्तवतैं बंधके हेतुरूप जो कर्म हैं तिन कर्मोंकाभी जो समत्वबुद्धिरूप योग मोक्षविषे उपयोग सिद्धकरै है । यहही ता समत्वबुद्धिरूप योगविषे महान् कुशलता है इति । इतने कहणेकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा । समत्वबुद्धिकरिकै युक्त जो कर्मयोग है सो कर्मयोग आप कर्मरूप हुआभी अपणे सजातीय दुष्ट कर्मोंका नाश करै है । यातैं सो कर्मयोग महान् कुशल है। और तूं अर्जुन तौ चेतनरूप हुआभी अपणे सजातीय दुर्योधनादिक दुष्टोंका नाश करता नहीं । यातैं तूं कुशल नहीं है इति । अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । बुद्धियुक्तः । जहाति । इह । उभे । सुकृतदुष्कृते । तस्मात् । योगाय । युज्यस्व । योगः । कर्मसु । कौशलम् इति । इनैं समत्वबुद्धियुक्त कर्मोंके किये हुए अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा परमात्मसाक्षात्कारकरिकै युक्त हुआ यह पुरुष जिस कारणतैं पुण्यपाप दोनोंकूं परित्याग करै है तिस कारणतैं तूं समत्वबुद्धियुक्त कर्मयोगकी प्राप्तिवास्तै उद्यमवाला होउ । जिस कारणतैं सर्व कर्मोंके मध्यविषे सो समत्वबुद्धियुक्त कर्मयोग दुष्ट कर्मोंके निवृत्त करणेविषे बहुत चतुर है ॥ ५० ॥

हे भगवन् ! इस अधिकारी पुरुषकूं पापकर्मकी निवृत्ति तौ अपेक्षित है परंतु पुण्यकर्मोंकी निवृत्ति अपेक्षित है नहीं । जो पुण्यकर्मोंकीभी निवृत्ति होवैगी तौ पुरुषार्थकीही हानि होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् स्वर्गादिक तुच्छ फलके त्याग कियेतैं परम पुरुषार्थकी प्राप्तिरूप फलका कथन करै हैं—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः॥
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥ ५१ ॥

(पदच्छेदः) कर्मजम् । बुद्धियुक्ताः । हि । फलम् । त्यक्त्वा । मनीषिणः । जन्मबंधविनिर्मुक्ताः । पदम् । गच्छंति । अनामयम् ॥ ५१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसे कारणतैं ते समत्वबुद्धियुक्त पुरुष कर्मजन्य फलकूं त्यागिकारिकै आत्मसाक्षात्कारवाले होवैं हैं तथा जन्मरूप बंधतैं रहित हुए अविद्यादिक रोगोंतैं रहित मोक्षरूप पदकूं प्राप्त होवैं हैं तिस कारणतैं तूंभी ऐसा होउ ॥ ५१ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! ता समत्वबुद्धिवाले पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मोंकारिकै जन्य स्वर्गादिरूप फलकूं परित्याग कारिकै केवल ईश्वरके आराधनवासतै तिनकर्मोंकूं करते हुए अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तत्त्वमसि आदिक वाक्यजन्य आत्माकारबुद्धिरूप मनीषावाले होवैं हैं । इस आत्मज्ञानरूप मनीषाकूं प्राप्त होइकै ते अधिकारी पुरुष जन्मरूप बंधतैं अत्यंत मुक्त हुए कार्यसहित अविद्यारूप रोगतैं रहित तथा सर्व भयतैं रहित जो परम आनंदस्वरूप ब्रह्मरूप मोक्ष है ता मोक्षरूप पुरुषार्थकूं अभेदकारिकै प्राप्त होवैं हैं इति । इहां श्रीभगवान्‌का यह अभिप्राय है जिस कारणतैं फलकी कामनाका परित्याग कारिकै ता समत्वबुद्धिकारिकै अपणे वर्णआश्रमके कर्मोंका अनुष्ठान करणेहारे पुरुष तिन निष्काम कर्मोंके प्रभावतैं शुद्ध अंतःकरणवाले होवैं हैं । ता अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर ते अधिकारी पुरुष तत्त्वमसि आदिक प्रमाणतैं उत्पन्न हुए आत्मज्ञानके प्रभावतैं कार्यसहित अविद्यातैं रहित हुए सर्व अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं । जिस मोक्षकूं शास्त्रविषे विष्णुका परमपदरूपकारिकै कथन करा है । तिस कारणतैं तूं अर्जुनभी (यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे) इस पूर्व उक्त वचनतैं मोक्षरूप श्रेयकी इच्छावाला प्रतीत होता है । यातैं तूभी ता मोक्षकी प्राप्तिवासतैं इस प्रकारके निष्काम कर्मयोगकूं कर ॥ ५१ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकार निष्कामकर्मोंके अनुष्ठान करते हुए किस कालविषे हमारे अंतःकरणकी शुद्धि होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे कालके नियमका अभाव कथन करैं हैं—

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२

(पदच्छेदः) यदा । ते । मोहकलिलम् । बुद्धिः । व्यतितरिष्यति तदा । गंता । असि । निर्वेदम् । श्रोतव्यस्य । श्रुतस्य । च ॥ ५२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसे कालविषे तुम्हारा अंतःकरण अविवेकरूप कालुष्यकूं परित्याग करैगा तिस कालविषे श्रवण करणेयोग्य कर्मफलके तथा श्रवण करे हुए कर्मफलके वैराग्यकूं प्राप्तिवाला तूं होवैगा ॥ ५२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तिन निष्काम कर्मोंके करते हुए इतने कालतैं पीछे अंतःकरणकी शुद्धि होवै है या प्रकारके कालका नियम इहां नहीं किंतु तिन निष्काम कर्मोंके करते हुए जिस कालविषे तुम्हारा अंतःकरण यह मैं हूं यह मेरे हैं इत्यादिक अहंममअभिमानरूप अविवेकरूप कालुष्यकूं परित्याग करैगा क्या रजोगुण तमोगुणरूप मलकूं परित्याग करिकै केवल शुद्ध सत्वभावकूं प्राप्त होवैगा तिस कालविषे अभी श्रवण करणेयोग्य अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंके वैराग्यकूं तथा पूर्व श्रवण करे हुए कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंके वैराग्यकूं तूं प्राप्त होवैगा क्या तिन स्वर्गादिक फलोंकूं मिथ्यारूप जानिकै तिनोंके प्राप्तिकी तृष्णातैं तूं रहित होवैगा। तहां श्रुति। "परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्" । अर्थ यह—ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छावान् अधिकारी पुरुष कर्मोंकरिकै रचित स्वर्गादिक लोकोंकूं अनित्य दुःखरूप जानिकै तिनोंतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै है इति। इहां भगवान्‌का यह तात्पर्य है। अशुद्ध अंतःकरणविषे वैराग्य होवै नहीं किंतु शुद्ध अंतःकरणविषेही सो वैराग्य होवै है। यातैं जिसकालविषे तुम्हारेकूं इस लोकके विषयसुखोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयसुखोंविषे दोषदृष्टिपूर्वक तीव्र वैराग्यकी प्राप्त होवै तिसी कालविषे ता वैराग्यरूप फलकरिकै तुमनैं अपणे अंतःकरणकी शुद्धि जानणी जबपर्यंत तिन विषयोंतैं वैराग्य नहीं भया । तबपर्यंत तुमनैं अपणे अंतःकरणकूं मलिनही जानणा इति ॥ ५२ ॥

हे भगवन् ! तिन निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानतैं अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै उत्पन्न हुआहै वैराग्य जिसकूं ऐसा जो कोईक अधिकारी पुरुष है तिस अधिकारी पुरुषकूं किस कालविषेआत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

(पदच्छेदः) श्रुतिविप्रतिपन्ना। ते । यदा । स्थास्यति। निश्चला। समाधौ। अचला। बुद्धिः। तदा। योगम्। अवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पूर्व नाना फलोंके श्रवण करिकै संशयकूं प्राप्त हुई तुम्हारी बुद्धि जिस कालविषे परमात्मादेवविषे निश्चल हुई तथा अचल हुई स्थित होवैगी तिस कालविषे तूं जीवब्रह्मके अभेदज्ञानकूं प्राप्त होवैगा ॥ ५३ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! नहीं विचार करा है वास्तव तात्पर्य जिनोंका ऐसे जो स्वर्गादिक नाना प्रकारके फलोंके श्रवण हैं तिन श्रवणोंकरिकै प्राप्त हुए जो नाना प्रकारके संशयविपरीतभावना हैं तिन संशयविपरीतभावनावोंकरिकै पूर्व विक्षेपकूं प्राप्त हुई जो तुम्हारी बुद्धि है सा तुम्हारी बुद्धि जिस कालविषे अंतःकरणकी शुद्धितैं प्राप्त हुए विवेकजन्य पदार्थोंविषे दोषदर्शन करिकै ता विक्षेपका परित्याग करिकै अंतरपरमात्मा देवविषे निश्चल हुई क्या जाग्रत् स्वप्नदर्शनरूप विक्षेपतैं रहित हुई तथा ता परमात्मादेवविषे अचल हुई क्या सुषुप्ति,मूर्च्छा,स्तब्धभाव इत्यादिक लयरूप चलनतैं रहित हुई स्थित होवैगी क्या लयविक्षेपरूप दोनोंका परित्याग करिकै जबी ता परमात्मादेवविषे एकाग्रभावकूं प्राप्त होवैगी। अथवा (निश्चला अचला) या दोनों पदोंका यह अर्थ करणा (निश्चला) क्या असंभावना विपरीतभावनातैं रहित हुई । तथा(अचला) क्या दीर्घकाल, आदर, निरंतर,सत्कार इन चारोंके सेवन करिकै विजातीय वृत्तियोंकरिकै नहीं दूषित हुई ऐसी सा बुद्धि जिस कालविषे वायुतैं रहित दीपककी न्याईं ता परमात्मादेवविषे स्थित होवैगी तिसी कालविषे तत्त्वमसि आदिक वाक्योंतैं जन्य जीवब्रह्मके अभेदसाक्षात्काररूप योगकूं तूं प्राप्त होवैगा । तिस ज्ञानकालविषे दूसरा कोई कर्त्तव्य है नहीं । यातैं तिस कालविषे तूं कृतकृत्य होवैगा । तथा स्थितप्रज्ञ होवैगा इति ॥ ५३ ॥

तहां इस प्रकारके अवसरकूं प्राप्त होइकै सो अर्जुन जीवन्मुक्त पुरुषके जे लक्षण हैं तेही लक्षण मुमुक्षुजनोंके मोक्षका उपायरूप हैं या प्रकार मानता हुआ ता स्थितप्रज्ञके लक्षणके जानणेवासतै या प्रकारका प्रश्न करै है–

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ॥
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

(पदच्छेदः) स्थितप्रज्ञस्य । का । भाषा । समाधिस्थस्य । केशव । स्थितधीः । किं । प्रभाषेत । किम् । आसीत । व्रजेत । किम् ॥ ५४ ॥

(पदार्थः) हे केशव ! समाधिविषे स्थितप्रज्ञ पुरुषका लक्षण क्या है तथा समाधितैं उठ्या हुआ सो स्थितप्रज्ञ किसँ प्रकार भाषण करै है तथा किसंप्रकार बाह्य इंद्रियोंका निग्रह करै है तथा किसँ प्रकार विषयोंकूं प्राप्त होवै है ॥ ५४ ॥

भा० टी०—निश्चल हुई है मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी प्रज्ञा जिसकी ताका नाम स्थितप्रज्ञ है। सो स्थितप्रज्ञ पुरुष दो प्रकारकी अवस्थावाला होवै है एक तौ समाधिविषे स्थित होवै है और दूसरा ता समाधितैं उत्थान हुए चित्तवाला होवै है या कारणतैंही ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका समाधिस्थ यह विशेषण कथन करा है। ऐसे समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुषका कौन लक्षण है क्या सो समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुष किस लक्षणकरिकै दूसरे पुरुषोंनैं जानीता है। इति प्रथमप्रश्नः ॥ ॥ १ ॥ और ता समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसी दूसरी अवस्थावाला सो स्थितप्रज्ञ पुरुष अपणी स्तुतिविषे तथा निंदाविषे हर्षपूर्वक तथा द्वेषपूर्वक वचनकूं किस प्रकार कथन करै है। इति द्वितीयप्रश्नः ॥ २ ॥ और ता समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुए चित्तके निग्रह करणेवासतै सो स्थितप्रज्ञ पुरुष नेत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके निग्रहकूं किस प्रकार करे है इति तृतीयप्रश्नः ॥ ३ ॥ और तिन बाह्य इंद्रियोंके निग्रहके अभावकालविषे सो स्थितप्रज्ञ पुरुष किस प्रकार विषयोंकूं प्राप्त होवै है। इति चतुर्थप्रश्नः ॥ ४ ॥ तात्पर्य यह। ता व्युत्थानचित्त-वाले स्थितप्रज्ञ पुरुषके भाषण, आसन, व्रजन यह तीनों अज्ञानी पुरुषोंके भाषणा-दिकोंतैं किस प्रकारके विलक्षण हैं इति। इस प्रकार अर्जुनके चारि प्रश्न सिद्ध होवैं हैं। तहां समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञविषे तौ प्रथम एक प्रश्न है और समाधितैं उत्थानचित्तवाले स्थितप्रज्ञविषे तीन प्रश्न हैं। तहां (हे केशव) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा सर्वका अंतर्यामी होणेतैं आपही इस रहस्य अर्थके कहणेविषे समर्थ हो ॥ ५४ ॥

अब श्रीभगवान् इन चारि प्रश्नोंके यथाक्रमतैं उत्तरोंकूं इस द्वितीय अध्या-यकी समाप्तिपर्यंत कथन करैं हैं तहां एक श्लोककरिकै प्रथम प्रश्नका उत्तर कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

(पदच्छेदः) प्रजहाति । यदा । कामान् । सर्वान् । पार्थ । मनोगतान् । आत्मनि । एव । आत्मना । तुष्टः । स्थितप्रज्ञः । तदा । उच्यते ॥ ५५ ॥

पदार्थः) अर्जुन ! जिस कालविषे सो समाधिस्थ पुरुष अपणे मनविषे स्थित सर्व कामोंकूं परित्याग करै है तथा आत्माविषे आत्माकरिकै ही तृप्त होवै है तिस कालविषे सो समाधिस्थ पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है ॥ ५५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! कामसंकल्प आदिक जो मनकी वृत्तियां विशेष हैं जिन कामसंल्पादिक वृत्तियोंकूं अन्य शास्त्रविषे प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति या भेदकरिकै पंच प्रकारका कथन करा है तिन कामसंकल्पादिक सर्व वृत्तियोंकूं जिस कालविषे यह विद्वान् पुरुष कारणके बाधकरिकै परित्याग करै है क्या जिस कालविषे तिन कामसंकल्पादिक सर्व वृत्तियोंतैं रहित होवै है तिस कालविषे सो समाधिस्थ विद्वान् पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है । अब तिन कामसंकल्पादिकोंविषे अनात्मवस्तुकी धर्मरूपता कथन करिकै परित्याग करणेकी योग्यता निरूपण करै हैं (मनोगतान् इति) हे अर्जुन ! ते कामसंकल्पादिक सर्व धर्म मनकेही हैं आत्माके धर्म हैं नहीं । जो कदाचित् ते कामसंकल्पादिक आत्माकेही स्वाभाविक धर्म होवैं तौ जैसे अग्निका स्वाभाविक धर्म जो उष्णता है सो उष्णताधर्म अग्निके विद्यमान हुए कदाचितभी निवृत्ति होवै नहीं तैसे आत्माके विद्यमान हुए ते कामसंकल्पादिक धर्म कदाचितभी निवृत्ति होवैंगे नहीं । यातैं ते कामसंकल्पादिक आत्माके धर्म नहीं हैं किंतु मनकेही धर्म हैं । यातैं ता कारणरूप मनके परित्यागकरिकै ते कामसंकल्पादिक धर्म परित्याग करणेकूं शक्य हैं । ते कामसंकल्पादिक मनकेही धर्म हैं या अर्थविषे "कामः संकल्पो विचिकित्सा" इत्यादिक श्रुतिही प्रमाणरूप हैं । इतने कहणेकरिकै बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म इन अष्टोंकूं आत्माका धर्म मानणेहारे नैयायिकोंका मतभी खंडन करा इति । शंका-हे भगवन् ! ता समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ विद्वान्‌का मुख प्रसन्न हुआ प्रतीत होवै है । और सा मुखकी प्रसन्नता अंतरके संतोषतैं विना होवै नहीं यातैं ता मुखकी प्रसन्नतारूप हेतुतैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका संतोषविषे अनुमान करा जावै है । सो संतोषविशेष सर्व वृत्तियोंके परित्याग किये हुए किस प्रकार संभवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (आत्मन्येवात्मना तुष्टः) इति ।

हे अर्जुन सो विद्वान् पुरुष परमानन्दस्वरूपआत्माविषेही परमपुरुषार्थकी प्राप्तितं तृप्तिकूं प्राप्त हुआ है। कोई अनात्म तुच्छ पदार्थोंविषे सो विद्वान् पुरुष तृप्तिकूं प्राप्त हुआ नहीं । ता परमानन्दस्वरूपआत्माविषेभी स्वप्रकाशचैतन्यरूपकरिकै भासमान आत्माकरिकैही तृप्तिकूं प्राप्त हुआहै कोई मनकी वृत्तिविशेष करिकै तृप्तिकूं प्राप्त हुआ नहीं। यातैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे मनकी वृत्तितैंविनाभी सो संतोषविशेष संभव होइ सकै है। तहां श्रुति। "यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते"। अर्थ यह–इस पुरुषके मनविषे स्थित जे कामसंकल्पादिक हैं ते सर्व कामसंकल्पादिक जिस कालविषे निःशेषतैं निवृत्त होवै हैं। तिस कालविषे यह जीव अमृतभावकूं प्राप्त होवै है। तथा इसी शरीरविषे आनंदस्वरूप ब्रह्मकूं अनुभव करै है इति यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सो समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुष इस प्रकारके लक्षणवाचक शब्दोंकरिकै कथन करा जावै है यह प्रथम प्रश्नका उत्तर सिद्ध हुआ इति ॥ ५५ ॥

अब समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुए स्थितप्रज्ञके भाषण, आसन, गमन या तीनोंविषे मूढ पुरुषोंके भाषणादिकोंतैं विलक्षणताकूं कथन करता हुआ श्रीभगवान् (किं प्रभाषेत) या द्वितीय प्रश्नके उत्तरकूं दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं–

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

(पदच्छेदः) दुःखेषु । अनुद्विग्नमनाः । सुखेषु । विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः । स्थितधीः । मुनिः । उच्यते ॥ ५६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुःखोंविषे नहीं उद्वेगकूं प्राप्त हुआ है मन जिसका तथा विषयसुखोंविषे निवृत्त हुई है स्पृहा जिसकी तथा निवृत्त हुए हैं रागभयक्रोध जिसके ऐसा मननशील पुरुष स्थित कह्या जावै है ॥ ५६ ॥

भा० टी०–आध्यात्मिक दुःख आधिभौतिक दुःख, आधिदैविक दुःख यह तीन प्रकारके दुःख होवैं हैं। तहां शोकमोहादिक आधियोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तथा ज्वरशूलादिक व्याधियोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आध्यात्मिक दुःख कहैं हैं और व्याघ्रसर्पादिकोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आधिभौतिक दुःख कहैं हैं। और अति वायु अति वृष्टि अग्नि आदिकोंकरिकै जन्य जो दुःख

हैं तिन दुःखोंकूं आधिदैविक दुःख कहैं हैं। ते सर्व दुःख रजोगुणका परिणामरूप तथा संतापरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेषरूप होवैं हैं। तथा पापकर्मरूप प्रारब्धकरिकै प्राप्त होवैं हैं। ऐसे दुखोंके प्राप्तिविषे तिन दुःखोंके निवृत्त करणेकी असामर्थ्यताकरिकै नहीं प्राप्त हुआ है उद्वेगकूं मन जिसका ताका नाम अनुद्विग्नमनाहै। और जे अविवेकी पुरुषहैं तिन अविवेकी पुरुषोंकूं तौ ता दुःखकी प्राप्तिकालविषे या प्रकारका उद्वेग होवै है मैं बहुत पापात्माहूं ऐसे दारुण दुःखोंकूं भोगणेहारा मैं दुरात्माकूं धिक्कार है। ऐसे मेरे दुःखकूं कौन निवृत्त करैगा इति। इस प्रकारकी अनुतापरूप जो भ्रांति है ता भ्रांतिरूप जो तमोगुणका परिणामरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम उद्वेग है सो उद्वेग तिन अविवेकी पुरुषोंकूं दुःखरूप फलकी प्राप्तिकालविषे जैसे होवै है तैसे जो कदाचित् सो उद्वेग तिन अविवेकी पुरुषोंकूं पापकर्मोंके करणकालविषे होता तौ तिन पापकर्मोंके प्रवृत्तिका प्रतिबंधक होणेतैं सो उद्वेग सफल होता परंतु तिन पामकर्मोंके करणकालविषे तिन अविवेकी पुरुषोंकूं सो उद्वेग होता नहीं। और तिन पापकर्मोंके दुःखरूप फलके भोगकालविषे उत्पन्न हुआभी सो उद्वेग जैसे गृहकूं अग्निके लागे हुए ता अग्निके शांति करणेवासतै कूपका खोदणा निष्फल होवै है तैसे निष्फलही होवै है काहेतैं तिन पापरूप कारणके विद्यमान हुए सो दुःखरूप कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवै है। ता कालविषे उद्वेगमात्रकरिकै ता दुःखकी निवृत्ति होइ सकै नहीं। और ता दुःखके पापरूप कारणके विद्यमान हुएभी हमारेकूं किसवासतैं दुःख उत्पन्न होवै है। या प्रकारका जो अविवेक है सो अविवेक भ्रमरूप है। यातैं सो भ्रमरूप अविवेक ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे संभवता नहीं। और ता विद्वान् पुरुषका शरीरभी पुण्यपापकर्मोंकरिकै रचित है। यातैं ते प्रारब्ध पापकर्म ता विद्वान् पुरुषकूं केवल दुःखमात्रकीही प्राप्ति करैं हैं परंतु ता दुःखकी प्राप्तिके उत्तरकालविषे ता अविवेकरूप भ्रमकी प्राप्ति करैं नहीं। शंका–हे भगवन्! दुःखकी प्राप्तितैं उत्तरकालविषे उत्पन्न भया जो अविवेकरूप भ्रम है सो अविवेकरूप भ्रमभी दूसरे दुःखका कारण होवै है। यातैं सो अविवेकरूप भ्रमभी दूसरे प्रारब्धकर्मोंकरिकैही प्राप्त होवै है यातैं विद्वान् पुरुषकूंभी ता प्रारब्धकर्मके वशतैं सो अविवेकरूप भ्रम अवश्य होवैगा। समाधान हे अर्जुन! ता भ्रमका उपादानकारण जो अज्ञान है सो अज्ञान ता स्थितप्रज्ञ

पुरुषका नाश होइ गया है यातैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे सो अविवेकरूप भ्रम संभवता नहीं। तथा ता विद्वान् पुरुषविषे ता भ्रमजन्य दुःखकी प्राप्ति करणेहारे प्रारब्धकर्मभी हैं नहीं और जिस किसी प्रकारतैं ता विद्वान् पुरुषकी देहकी यात्रामात्रका निर्वाह करणेहारा जो प्रारब्धकर्मोंका फल है ता फलका भोग भ्रमके अभाव हुएभी बाधितानुवृत्तिकरिकै ता विद्वान् पुरुषविषे संभव होइ सकै है यह वार्त्ता आगे विस्तारकरिकै कथन करैंगे इति। किंवा सो विद्वान् पुरुष जैसे दुःखोंकी प्राप्तिविषे उद्वेगतैं रहित होवै है। तैसे सुखोंकी प्राप्तिविषे स्पृहातैंभी रहित होवै है। तहां सत्वगुणका परिणामरूप जो अंतःकरणकी प्रीतिरूप वृत्तिविशेष है ताका नाम सुख है। सो सुखभी दुःखकी न्याईं आध्यात्मिक सुख, आधिभौतिक सुख, आधिदैविक सुख या भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां प्रिय वस्तुके ध्यानकरिकै तथा पांडित्यादिकोंके अभिमान करिकै जन्य जो सुख है ता सुखकूं आध्यात्मिक सुख कहैं हैं और स्त्री पुत्र मित्रादिकोंकरिकै जन्य जो सुख है ता सुखकूं आधिभौतिक सुख कहैं हैं। और मंद मंद पवन, वृष्टि आदिकोंकरिकै जन्य जो सुख है ता सुखकूं आधिदैविक सुख कहैं हैं। अथवा इसी गीताशास्त्रके अष्टादशाध्यायविषे कथन करी रीतिसैं सात्विक, राजस, तामस या भेदतैं सो सुख तीन प्रकारका होवै है। अथवा अन्य शास्त्र उक्त रीतिसैं वैषयिक आभिमानिक, मानोरथिक, आभ्यासिक या भेदकरिकै सो सुख चारि प्रकारका होवै है। तहां विषयके संबंधतैं जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं वैषयिक सुख कहैं हैं। और राज्यपांडित्यादिकोंके अभिमानकरिकै जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं आभिमानिक सुख कहैं हैं। और प्रिय विषयोंके ध्यान करणेतैं जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं मानोरथिक कहैं हैं। और सूर्यभगवान्के नमस्कारादिकोंकरिकै जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं आभ्यासिक सुख कहैं हैं। या प्रकार अनेक प्रकारके सुखोंके जनावणेवासतै श्रीभगवान्नैं (सुखेषु) यह बहुवचन कथन करा है। ते सर्व सुख पुण्यकर्मरूप प्रारब्धतैं प्राप्त होवैं हैं। तिन सर्व सुखोंविषे सो विद्वान् पुरुष स्पृहातैं रहित होवैं हैं। तहां तिस तिस सुखके अनुभवकालविषे तिस तिस सुखके सजातीय दूसरे सुखकी प्राप्ति करणेहारा जो धर्म है ता धर्मका नहीं अनुष्ठान करिकै तिस तिस सुखके प्राप्तिकी आकांक्षारूप जो तामसी अंतःकरणी वृत्तिविशेष है ताका नाम स्पृहा है सा स्पृहा भ्रांतिरूप है। ऐसी भ्रांतिरूप स्पृहा अविवेकी पुरुषोंविषेही उत्पन्न होवै

है। विवेकी पुरुषोंविषे सा भ्रांतिरूप स्पृहा उत्पन्न होवै नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे पापकर्मरूप कारणके विद्यमान् हुएभी दुःखरूप कार्य हमारेकूं मत प्राप्त होवै या प्रकारकी व्यर्थ आकांक्षारूप उद्वेग विवेकी पुरुषविषे संभवता नहीं । तैसे पुण्यकर्मरूप कारणके नहीं विद्यमान हुएभी सुखरूप कार्य हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी व्यर्थ आकांक्षारूप जो स्पृहा है जिस स्पृहाकूं तृष्णा कहैं हैं सा तृष्णारूप स्पृहाभी ता विवेकी पुरुषविषे संभवै नहीं । और प्रारब्ध पुण्यकर्म तौ ता विद्वान् पुरुषकूं केवल सुखमात्रकीही प्राप्ति करैं हैं । कोई ता भ्रांतिरूप स्पृहाकी प्राप्ति करैं नहीं इति । अथवा । हर्षरूप जो अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम स्पृहा है । तहां जिस हमारेकूं ऐसा उत्कृष्ट सुख प्राप्त भया है सो मैं धन्य धन्य हूं । तीनलोकोंविषे हमारेसमान सुखवाला कोईभी प्राणी नहीं है किसीभी उपायकरिकै यह हमारा सुख नाशकूं नहीं प्राप्त होवै । इत्यादिरूप जो उत्फुल्लतारूप अंतःकरणकी तामसी वृत्तिविशेष है ताका नाम हर्ष है सा हर्षरूप स्पृहाभी भ्रांतिरूपही है। यहही स्पृहाशब्दका अर्थ श्रीभगवान् (न प्रहृष्येत प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्) या श्लोकविषे आगे कथन करैंगे। सो हर्षरूप भ्रांतिभी ता विद्वान् पुरुषविषे संभवै नहीं । पुनः कैसा है सो विद्वान् पुरुष निवृत्त होइ गयेहैं राग भय क्रोध जिसके तहां यह विषय बहुत सुंदर है या प्रकारके शोभनबुद्धिरूप अध्यासकरिकै जन्य जो रंजनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जिसकूं अत्यंत अभिनिवेश कहैं हैं ताका नाम राग है । और ता रागका विषय जो पदार्थ है ता पदार्थके नाश करणेहारे किसी कारणके प्राप्त हुए ता कारणके निवृत्त करणेविषे अपणेकूं असमर्थ मानणेहारे पुरुषकी जो दीनतारूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम भय है। और ता रागके विषयरूप प्रिय वस्तुके नाश करणेहारे किसी कारणके प्राप्त हुए ता कारणके निवृत्त करणेविषे अपणेकूं असमर्थ मानणेहारे पुरुषकी जो प्रज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम क्रोध है। ते राग, भय, क्रोध तीनों भ्रमरूपही हैं। ऐसे भ्रमरूप राग, भय, क्रोध तीनों निवृत्त होइ गये हैं जिसतैं ताका नाम वीतरागभयक्रोध है । इस प्रकारका मननशील संन्यासी स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया इस प्रकारका स्थितप्रज्ञ पुरुष अपणे अंतर अनुभवकूं प्रगट करिकै अपणे शिष्योंके प्रति शिक्षा करणे वासतै उद्वेगतैं रहितपणेकूं तथा स्पृहातैं रहितपणेकूं

तथा रागभयक्रोधतैं रहितपणेकूं कथन करणेहारे जो वचन हैं तिन वचनोंकूंही कथन करै है । क्या हमारे न्याईं दूसराभी मुमुक्षु दुःखोंविषे उद्वेग नहीं करै तथा सुखोंविषे स्पृहा नहीं करै तथा रागभयक्रोधतैं रहित होवै इति ॥ ५६ ॥

किंच—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

(पदच्छेदः) यः[1] । सर्वत्र[2] । अनभिस्नेहः[3] । तत्[4] । तत्[5] । प्राप्य[7] । शुभाशुभम्[6] । न[8] । अभिनंदति[9] । न[10] । द्वेष्टि[11] । तस्य[12] । प्रज्ञा[13] । प्रतिष्ठिता[14] ॥ ५७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो विद्वान्[1] पुरुष देहादिक[2] सर्व पदार्थोंविषे स्नेहतैं[3] रहित है तथा तिस[4] तिस[5] प्रिय[6] अप्रिय विषयकूं प्राप्त होइकै नहीं[8] प्रशंसा[9] करै है नहीं[10] द्वेष[11] करै है तिस[12] विद्वान् पुरुषकी प्रज्ञा[13] स्थिर[14] होवै है ॥ ५७ ॥

भा० टी०—जो विद्वान् मुनि अपणे देहजीवनादिक सर्व पदार्थोंविषे अनभिस्नेह है । इहां जिसके विद्यमान हुए अन्य वस्तुकी हानि तथा वृद्धि अपणेविषे आरोपण करी जावै ऐसी जो ता अन्य वस्तुविषयक अंतःकरणकी तामसी वृत्तिविशेष है जिसकूं प्रेम कहैं हैं ताका नाम स्नेह है ता स्नेहके वशतैंही यह लोक अपणे स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थोंकी हानि वृद्धिकूं अपणेविषे मानै है । ता स्नेहतैं सर्व प्रकारतैं जो रहित होवै ताका नाम अनभिस्नेह है । ऐसा अनभिस्नेह विद्वान् पुरुषभी परमानंदस्वरूप आत्मादेवविषे तौ सर्व प्रकारतैं स्नेहवाला होवै । काहेतैं देहादिक अनात्मपदार्थोंके स्नेहका जो परित्याग है सो अंतरआत्माके स्नेहवासतैंही है । आत्माके स्नेहतैं विना बाह्य पदार्थोंके स्नेहका परित्याग करणा निष्फल है इति । और जो विद्वान् पुरुष पुण्यकर्मरूप प्रारब्धनैं प्राप्त करे जो सुखके कारणरूप विषय हैं तिन प्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै हर्षविशेषपूर्वक तिन विषयोंकी प्रशंसा नहीं करै है । और पापकर्मरूप प्रारब्धनैं प्राप्त करे जो दुःखके कारणरूप विषय हैं तिन अप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै सो विद्वान् पुरुष असूयापूर्वक तिन अप्रिय विषयोंकी निंदा नहीं करै है । तात्पर्य यह—अज्ञानी पुरुषोंके सुखके हेतुरूप जो अपणे स्त्रीपुत्रादिक पदार्थ हैं ते पदार्थ तिन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति शुभ विषय हैं तिन

शुभ विषयोंके गुण कथन करणेविषे प्रवृत्त करणेहारी जो तिन अज्ञानी पुरुषोंके अंतःकरणकी भ्रांतिरूप तामसीवृत्तिविशेष है ताका नाम अभिनंदन है । तहां तिन स्त्रीपुत्रादिक पदार्थोंके गुणोंका कथन अन्य पुरुषोंके प्रीतिवासतै है नहीं यातैं व्यर्थही है । इस प्रकार अन्य पुरुषके जो विद्याप्रतिष्ठादिक गुण हैं । ते विद्यादिकगुण ईर्षाकी उत्पत्तिद्वारा तिन अज्ञानी पुरुषोंके दुःखकेही कारण हैं । यातैं ते अन्य पुरुषके विद्यादिक गुण तिन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति अशुभ विषय हैं । तिन अशुभ विषयोंकी निंदादिकोंविषे प्रवृत्त करणेहारी जो तिस अज्ञानी पुरुषके अंतःकरणकी भ्रांतिरूप वृत्तिविशेष है ताका नाम द्वेष है सो द्वेषभी तमोगुणकाही परिणाम है । और ता अज्ञानी पुरुषनैं करी जो निंदा है सा निंदा ता अन्य पुरुषके विद्यादिक उत्कृष्टताकूं निवारण करि सकै नहीं । यातैं सा निंदा व्यर्थही है । यातैं सो अभिनंदन तथा द्वेष दोनों भ्रांतिरूप हैं तथा तमोगुणका परिणाम हैं । ऐसा अभिनंदन तथा द्वेष दोनों वा भ्रांतितैं रहित तथा शुद्ध अंतःकरणवाले स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे कैसे संभवैंगे किंतु नहीं संभवैंगे । और ते द्वेषादिक तामसी वृत्तिही अंतःकरणकूं चलायमान करणेहारी हैं । तिन द्वेषादिकोंके अभाव हुए जा स्नेहतैं रहित तथा हर्ष विषादतैं रहित विद्वान् मुनिकी सा आत्मतत्त्वविषयक प्रज्ञा प्रतिष्ठितही होवै है क्या मोक्षरूप फलविषे पर्यवसानवाली होवै है । सोईही मुनि स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है । इस प्रकार दूसराभी मुमुक्षु सर्व पदार्थोंविषे स्नेहतैं रहित होवै । तथा प्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै तिनोंकी प्रशंसा नहीं करै । तथा अप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै तिनोंकी निंदा नहीं करै । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे अज्ञानी पुरुष शुभ अशुभ पदार्थोंकी प्राप्तिकालविषे प्रशंसारूप वचनोंकूं तथा निंदारूप वचनोंकूं कथन करै है तैसे सो विद्वान् पुरुष ता शुभ अशुभ पदार्थोंकी प्राप्तिकालविषे प्रशंसारूप वचनोंकूं तथा निंदारूप वचनोंकूं कथन करता नहीं । किंतु ता शुभ अशुभ दोनोंकी प्राप्तिविषे सो विद्वान् पुरुष उदासीनही रहै है ॥ ५७ ॥

अब (किमासीत) या तृतीय प्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् षट् श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं । तहां प्रारब्धकर्मके वशतैं समाधितैं उत्थानकरिकै विक्षेपकूं प्राप्त भये जो इंद्रिय हैं । तिन इंद्रियोंकूं पुनः अंतर्मुख करिकै समाधिवासतैही ता स्थितप्रज्ञ पुरुषकी स्थिति होवै है या अर्थके निरूपण करणेवासतै श्रीभगवान् कहै हैं-

यदा संहरते चायं कूर्मोऽंगानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

(पदच्छेदः) यदा। संहरते। च। अयम्। कूर्मः। अंगानि। इव। सर्वशः। इंद्रियाणि। इंद्रियार्थेभ्यः। तस्य। प्रज्ञा। प्रतिष्ठिता॥ ५८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जैसे कूर्म अपणे शिरपादादिक अंगोंकूं संकोच करै है तैसे यह विद्वान् पुरुष जिस कालविषे अपणे सर्व इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतैं पुनः संकोच करै है तिस कालविषे तिस विद्वान् पुरुषकी प्रज्ञा स्थित होवै है॥५८॥

भा० टी०—हे अर्जुन! जैसे कूर्म दूसरेके भयतैं अपणे शिरपादादिक सर्व अंगोंकूं अपणे शरीरविषेही संकोच करि लेवै है। तैसे समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुआ यह विद्वान् पुरुष जिस कालविषे रागादिक दोषोंकी प्राप्तिके भयतैं तथा समाधिके विघ्नोंके भयतैं अपणे श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंकूं शब्दादिक सर्व विषयोंतैं पुनः संकोच करि लेवै है तिस कालविषे तिस विद्वान् पुरुषकी सा प्रज्ञा प्रतिष्ठित होवै है। तहां पूर्वले दो श्लोकोंकरिकै समाधितैं व्युत्थानदशाविषेभी ता विद्वान् पुरुषविषे सर्व तामस वृत्तियोंका अभाव कथन करा। और अबी इस श्लोककरिकै पुनः समाधिअवस्थाविषे तिन सकल वृत्तियोंका अभाव कथन करा है इतनी पूर्वतैं इहां विलक्षणता है॥ ५८॥

हे भगवन्! शब्दादिक विषयोंतैं जो श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी निवृत्ति है सा निवृत्ति जो कदाचित् स्थितप्रज्ञताका हेतु होवै तौ रोगादिक निमित्तके वशतैं मूढ पुरुषोंके श्रोत्रादिक इंद्रियोंकीभी शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति देखणेविषे आवै है यातैं ते रोगादिकोंवाले सर्व मूढ पुरुष स्थितप्रज्ञ होणे चाहिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

(पदच्छेदः) विषयाः। विनिवर्तंते। निराहारस्य। देहिनः। रसवर्जम्। रसः। अपि। अस्य। परम्। दृष्ट्वा। निवर्तते॥ ५९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! इंद्रियोंकरिकै विषयोंके ग्रहण करणेविषे असमर्थ रोगी पुरुषके शब्दादिक विषय निवृत्त होइ जावैं हैं परंतु तिन विषयोंका राग

निवृत्त होवै है नहीं और इस स्थितप्रज्ञ पुरुषका तौ परँब्रह्मकूं साँक्षात्कार करिकै सो राँग भी निवृँत्त होइ जावै है ॥ ५९ ॥

भा० टी०—श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंके ग्रहण करणेविषे असमर्थ ऐसा जो देहाभिमानवाला रोगी मूढ पुरुष है। अथवा काष्टकी न्याईं सर्व इंद्रियोंकी चेष्टातैं रहित जो तपस्वी है तिन रोगी आदिक मूढ पुरुषोंकेभी ते शब्दादिक विषय निवृत्त होइ जावैं हैं परंतु तिन अज्ञानी पुरुषोंका तिन शब्दादिक विषयोंका राग निवृत्त होवै नहीं किंतु सो विषयोंका राग तिस कालविषेभी तिन अज्ञानी पुरुषोंकूं बन्या रहै है। और इस स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका तौ परमानंद स्वरूप ब्रह्म मैं हूं या प्रकारके साक्षात्कारकरिकै ते शब्दादिक विषय तथा तिन विषयोंका राग दोनों निवृत्त होइ जावैं हैं। यह वार्त्ता (यावानर्थ उदपाने) या श्लोक विषे पूर्व कथन करि आये हैं। यातैं रागसहित विषयोंकी निवृत्तिही ता स्थितप्रज्ञका लक्षण है ता लक्षणकी रोगादिग्रस्त मूढ पुरुषविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जिस कारणतैं परमात्मादेवके यथार्थ साक्षात्कारतैं विना रागसहित विषयोंकी निवृत्ति होवै नहीं तिस कारणतैं यह अधिकारी पुरुष तिन रागसहित विषयोंके निवृत्त करणेहारी यथार्थज्ञानरूप जो प्रज्ञा है ता प्रज्ञाकी स्थिरताकूं अवश्य करिकै संपदन करै ॥ ५९ ॥

तहां तिस प्रज्ञाकी स्थिरताविषे बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह तथा अन्तर मनका निग्रह यह दोनों असाधारण कारण हैं। तिन दोनोंके अभाव हुए ता प्रज्ञाका नाश देखणेविषे आवै है। इस अर्थके कहणेवासतै प्रथम बाह्य इंद्रियोंके नहीं निग्रह करणेविषे दोषका वर्णन करै हैं—

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

(पदच्छेदः) यततः। हि। अपि। कौंतेय। पुरुषस्य। विपश्चितः। इंद्रियाणि। प्रमाथीनि। हरंति। प्रसभम्। मनः ॥ ६० ॥

(पदार्थः) हे कुंतीके पुत्र अर्जुन ! यत्न करणेहारे विवेकी पुरुषके मनकूं भी यह अत्यंत बलवान् श्रोत्रादिक इंद्रिय बलात्कारतैं विकारकूं प्राप्त करै हैं ॥ ६० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वारंवार शब्दादिक विषयोंविषे दोषदर्शनरूप यत्नकूं करणेहारा जो अत्यन्त विवेकी पुरुष है ता विवेकी पुरुषके क्षणमात्र निर्विकार

किये हुए मनकूंभी यह श्रोत्रादिक इंद्रिय नाना प्रकारके विकारोंकी प्राप्ति करैं हैं शंका—हे भगवन् ! ता विकारका विरोधी जो विवेक है ता विवेकके विद्यमान हुए तिस विवेकी पुरुषके मनकूं ते इन्द्रिय विकारकी प्राप्ति नहीं करि सकैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन इन्द्रियोंका प्रभाव कथन करैं है (प्रमाथीनि इति) हे अर्जुन ! यह श्रोत्रादिक इंद्रिय अत्यन्त बलवान् हैं। यातैं यह इंद्रिय ता विवेकके पराभव करणेविषे समर्थ हैं यातैं ता विचारवान् पुरुषरूप स्वामीके देखते हुए तथा ता विवेकरूप रक्षकके विद्यमान हुएभी तिन सर्वोंका पराभव करिकै यह श्रोत्रादिक इंद्रिय ता विवेकजन्य प्रज्ञाविषे प्राप्त हुए मनकूं ता प्रज्ञातैं निवृत्त करिकै अपणे शब्दादिक विषयोंविषेही बलात्कारतैं प्राप्त करैं हैं। इहां (यततो हि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है ता हि शब्दकरिकै भगवान्नैं यह लोकप्रसिद्धि बोधन करी। यह वार्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध है। जैसे कोई बलवान् शत्रु धनी पुरुषोंकूं तथा ता धनके रक्षक पुरुषोंकूं तिरस्कार करिकै तिन्होंके देखते हुएही बलात्कारसैं तिन्होंके धनादिक पदार्थ ले जावैं हैं तैसे यह श्रोत्रादिक इंद्रियभी शब्दादिक विषयोंके समीपताकूं प्राप्त होइकै तिन विवेकादिकोंका पराभव करिकै बलात्कारसैं मनकूं तिन विषयोंविषे ले जावैं हैं ॥ ६० ॥

हे भगवन् ! ते श्रोत्रादिक इंद्रिय जो ऐसे बलवान् हैं तौ तिन इंद्रियोंका निरोध हमारेसैं कैसे होइ सकैगा। ऐसी अर्जुकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंके निरोधका उपाय कथन करैं हैं—

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥
वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

(पदच्छेदः) तानि। सर्वाणि। संयम्य। युक्तः। आसीत। मत्परः। वशे। हि। यस्य। इंद्रियाणि। तस्य। प्रज्ञा। प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमारा अन्य भक्त तिन सर्व इंद्रियोंकूं वशिकरिकै निगृहीतमनवाला हुआ स्थित होवै जिस पुरुषके यह इंद्रिय वशिवर्त्ती हैं तिस पुरुषकी सो प्रज्ञा स्थिर होवै है ॥ ६१ ॥

भा० टी०ज्ञानके साधनरूप जो श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय हैं तथा क्रियाके साधनरूप जो वागादिक पंच कर्मइन्द्रिय हैं तिन सर्व इन्द्रियोंकूं अपणे वशि

करिकै क्या शब्दादिक विषयोंतैं तिन इंद्रियोंका निरोध करिकै यह विवेकी पुरुष मनके निग्रहवाला हुआ स्थित होवै क्या बाह्य अन्तर सर्व व्यापारोंतैं रहित हुआ स्थित होवै । शंका—हे भगवन् ! पूर्व आपनैं तिन इन्द्रियोंकूं महान् बलवान् कह्या था ऐसे बलवान् इंद्रियोंकूं अपणे वशी करणा कैसे संभवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मत्परः इति) हे अर्जुन ! सर्व प्राणीमात्रका अत्मारूप जो मैं वासुदेव हूं सो मैं वासुदेवही सर्वतैं उत्कृष्ट हूं जिस पुरुषकूं ता पुरुषका नाम मत्पर है ऐसा मेरा अनन्य भक्तही तिन इंद्रियोंकूं अपणे वशि करै है । तहां श्लोक । " न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् " अर्थ यह—सर्व प्राणीमात्रका आत्मारूप जो वासुदेव है ता वासुदेवके अनन्य भक्तोंकूं किसीभी कार्यविषे अशुभकी प्राप्ति होवै नहीं किंतु सर्व कार्य ताके निर्विघ्न समाप्त होवैं हैं इति । यह वार्त्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध है जैसे इस पुरुषनैं जबपर्यंत किसी बलवान् महाराजाका आश्रय नहीं लिया है तबपर्यंतही तिस पुरुषकूं अन्य शत्रु दुःखकी प्राप्ति करै हैं और यह पुरुष जबी ता बलवान् महाराजाके आश्रयकूं प्राप्त होवै है तबी यह पुरुष अबी महाराजाके आश्रयकूं प्राप्त भया है या प्रकार मानिकरिकै ते शत्रु आपही तिस पुरुषके वशि होइ जावैं हैं तैसे यह अधिकारी पुरुषभी जबपर्यंत सर्वांतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त नहीं भया है तबपर्यंतही यह श्रोत्रादिक इंद्रिय ता अधिकारी पुरुषकूं बहिर्मुख करै हैं और यह अधिकारी पुरुष जबी ता अंतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त होवै है तबी यह अधिकारी पुरुष अबी अंतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त भया है या प्रकार मानिकरिकै ते इंद्रिय आपही ता अधिकारी पुरुषके वशिभावकूं प्राप्त होवैं हैं । यह सर्व अर्थ (वशे हि) या वचनविषे स्थित हि या शब्दकरिकै भगवान्नैं सूचन करा ऐसे भगवद्भक्तिके महान् प्रभावकूं आगे विस्तार करिकै निरूपण करैंगे । अब श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंके वशि करणेका फल कथन करैं हैं (वशे हि इति) हे अर्जुन ! जिस विद्वान् पुरुषके ते श्रोत्रादिक इंद्रिय वशि होवैं हैं तिसी विद्वान् पुरुषकी सा शास्त्रजन्य प्रज्ञा स्थिरताकूं प्राप्त होवै है यातैं (किमासीत) या तृतीय प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया । सो विद्वान् पुरुष श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंकूं अपणे वशि करिकै स्थितहोवै है॥ ६१॥

हे भगवन् ! मनविषे जो अनर्थकी कारणता है सो बाह्य इंद्रियोंकी प्रवृत्तिद्वाराही है स्वभावतैं मनविषे अनर्थकी कारणता है नहीं यातैं जिस पुरुषनैं श्रोत्रादिक

बाह्य इंद्रियोंका निग्रह करा है तिस पुरुषकूं दांतोंतैं रहित करे हुए सर्पकी न्यांई मनके नहीं निग्रह किये हुएभी किसी अनर्थकी प्राप्ति होवै नहीं किंतु बाह्य प्रवृत्तिके अभावकारिकैही सो पुरुष कृतकृत्य होवै है यातैं पूर्व श्लोकविषे (युक्त आसीत) या वचनकारिकै आपनैं कथन करा जो मनका निग्रह है सो व्यर्थही कथन करा है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् सर्व इंद्रियोंके निग्रहवान् पुरुषकूंभी मनके नहीं निग्रह किये हुए सर्व अनर्थोंकी प्राप्ति दो श्लोकोंकारिकै कथन करै हैं–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ॥
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

(पदच्छेदः) ध्यायतः। विषयान्। पुंसः। संगः। तेषु। उपजायते। संगात्। संजायते। कामः। कामात्। क्रोधः। अभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधात्। भवति। संमोहः। संमोहात्। स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशात्। बुद्धिनाशः। बुद्धिनाशात्। प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! शब्दादिक विषयोंकू मनकारिकै ध्यान करते हुए पुरुषका तिन विषयोंविषे संग उत्पन्न होवै है ता संगतैं काम उत्पन्न होवै है ताँ कामतैं क्रोध उत्पन्न होवै है॥ ६२॥ ताँ क्रोधतैं संमोह होवै है ताँ संमोहतैं स्मृतिका विभ्रंश होवै है ता स्मृतिके भ्रंशतैं बुद्धिका नाश होवै है ताँ बुद्धिके नाशतैं नाशकूं प्राप्त होवै है ॥ ६३ ॥

भा॰ टी–॰हे अर्जुन ! जो पुरुष अपणे श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतैं निरोध कारिकैभी मनकारिकै वारंवार तिन शब्दादिक विषयोंका चिंतन करै है तिस पुरुषका तिन विषयोंविषे अवश्यकारिकै संग उत्पन्न होवै है। इहां यह विषय हमारे सुखके साधन हैं या प्रकारका शोभन अध्यासरूप जो प्रीति-विशेष है ताका नाम संग है। और ता सुख साधनताज्ञानरूप संगतैं तिस पुरुषका तिन विषयोंविषे काम उत्पन्न होवै है। इहां यह विषय हमारेकूं कब प्राप्त होवैगा या प्रकारकी तृष्णाविशेषका नाम काम है। और किसी अन्य पुरुषकारिकै हन-नकूं प्राप्त हुआ जो सो तृष्णारूप काम है तिस कामतैं ता हनन करणेहारे अन्य

पुरुषविषयक अभिज्वलनरूप क्रोध उत्पन्न होवै है और ता अभिज्वलनरूप क्रोधतैं कार्य अकार्यके विवेकका अभावरूप संमोह उत्पन्न होवै है और ता संमोहतैं गुरुशास्त्रकारिकै उपदिष्ट अर्थका अनुसन्धानरूप स्मृतिका विभ्रंश होवै है । और ता स्मृतिके विभ्रंशतैं अद्वितीय आत्माकार मनकी वृत्तिरूप बुद्धिका नाश होवै है । तात्पर्य यह—विपरीतभावनाकी वृत्तिरूप दोषकरिकै प्रतिबंध होणेतैं ता बुद्धिकी उत्पत्तिही नहीं होवै है । तथा उत्पन्न हुई ता बुद्धिका फलकी प्राप्ति करणेविषे अयोग्यताकरिकै विलय होइ जावै है । यहही ता बुद्धिका नाश है इति । और ता बुद्धिके नाशतैं सो पुरुष नाशकूं प्राप्त होवै है क्या सर्व पुरुषार्थके अयोग्य होवै है । काहेतैं इस लोकविषेभी जो पुरुष पुरुषार्थके अयोग्य होवै है सो पुरुष यह मरा हुआहै या प्रकारके लोकोंके व्यवहारका विषय होवै है । तैसे सर्व पुरुषार्थके अयोग्य हुआ यह पुरुष मृत हुआही जानणा यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जो पुरुष मनके निग्रहकूं न करिकै केवल बाह्य इंद्रियोंकाही निग्रह करै है तिस पुरुषकूंभी जबी महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है तबी मन इंद्रिय दोनोंके निग्रहतैं रहित पुरुषकूं महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है याकेविषे क्या कहणाही है । यातैं यह अधिकारी पुरुष महान् प्रयत्नकरिकैभी ता मनका निग्रह करै ता मनके निग्रहतैं विना केवल बाह्य इंद्रियोंके निग्रहमात्रकरिकै सा स्थितप्रज्ञता प्राप्त होवै नहीं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे बाह्य इंद्रियोंके निग्रह किये हुएभी मनके नहीं निग्रह किये हुए दोषकी प्राप्ति कथन करी । अब मनके निग्रह किये हुए बाह्य इंद्रियोंके नहीं निग्रह हुएभी ता दोषकी प्राप्ति होवै नहीं या अर्थकूं कथन करते हुए श्रीभगवान् (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नके उत्तरकूं अष्ट श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

(पदच्छेदः) रागद्वेषवियुक्तैः । तु । विषयान् । इंद्रियैः । चरन् । आत्मवश्यैः । विधेयात्मा । प्रसादम् । अधिगच्छति ॥ ६४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मनके विग्रहवाला पुरुष तौ रागद्वेषतैं रहित तथा मनके अधीन ऐसे इंद्रियोंकरिकै विषयोंकूं ग्रहण करता हुआभी चित्तके स्वच्छताकूंही प्राप्त होवै है ॥ ६४ ॥

भा० टी०–जिस पुरुषनैं मनका निग्रह नहीं करा है, सो पुरुष बाह्य श्रोत्रादिक इंद्रियोंका निग्रह करिकैभी रागद्वेषयुक्त मनकरिकै शब्दादिक विषयोंका चिंतन करता हुआ जैसे पुरुषार्थतैं भ्रष्ट होवै है तैसे मनके निग्रहवाला पुरुष ता पुरुषार्थतैं भ्रष्ट होवै नहीं। या प्रकारकी विलक्षणता बोधन करणे वासतै श्रीभगवानूनैं (रागद्वेषवियुक्तैस्तु) या वचनविषे स्थित तु यह शब्द कथन करा है। हे अर्जुन ! जिस पुरुषनैं अपणे मनका निग्रह करा है सो पुरुष तौ ता वशीकृत मनके अधीन वर्तणेहारे तथा रागद्वेषतैं रहित ऐसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शास्त्रविहित शब्दादिक विषयोंकूं ग्रहण करता हुआभी प्रसादकूंही प्राप्त होवै है। इहां परमात्माके साक्षात्कारकी योग्यतारूप जो चित्तकी स्वच्छता है ताका नाम प्रसाद है। जे इंद्रिय रायद्वेषकरिकै युक्त होवैं हैं ते इंद्रियही दोषके कारण होवैं हैं। और यह विद्वान् पुरुष जबी मनकूं अपणे वशि करै है तबी रागद्वेष दोनों निवृत्त होइ जावैं हैं और तिस रागद्वेषके अभाव हुए ता रागद्वेषके अधीन इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं। और प्रारब्धकर्मोंके विद्यमान हुए तिन शब्दादिक विषयोंकी प्रतीति निवृत्त करी जावै नहीं यातैं शास्त्रविहित शब्दादिके विषयोंकी प्रतीति मात्र ता विद्वान् पुरुषकूं दोषकी प्राप्ति करै नहीं। इतने कहणेकरिकै या शंकाकीभी निवृत्ति करी तिन शब्दादिक विषयोंका स्मरणमात्रभी जबी अनर्थका कारण है तबी तिन शब्दादिक विषयोंका भोग तौ महान् अनर्थका कारण होवैगा। यातैं अपणे प्राणोंकी रक्षा करणे वासतै तिन शब्दादिक विषयोंकूं भोगता हुआ सो विद्वान् पुरुष ता अनर्थकूं क्यों नहीं प्राप्त होवैगा ? किंतु सो विद्वान् पुरुषभी अवश्यकरिकै अनर्थकूं प्राप्त होवैगा इति शंका। यातैं (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया रागद्वेषतैं रहित तथा अपणे वशवर्त्ती ऐसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै सो विद्वान् पुरुष शास्त्रविहित शब्दादिक विषयोंकूं प्राप्त होवै है ॥ ६४ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे सो मनके निग्रहवाला पुरुष प्रसादकूं प्राप्त होवै है। यह वार्त्ता कथन करी। तहां ता चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुए कौन फल प्राप्त होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता प्रसादके फलका कथन करैं हैं—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ॥
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

(पदच्छेदः) प्रसादे । सर्वदुःखानाम् । हानिः । अस्य । उपजायते । प्रसन्नचेतसः । हि । आशु । बुद्धिः । पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ता प्रसादके प्राप्त हुए इस विद्वान् संन्यासीके सर्व दुःखोंका नाश होवै है जिस कारणतैं ता स्वच्छचित्तवाले संन्यासीकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होवै है ॥ ६५ ॥

भा० टी०—ता चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुए इस विद्वान् संन्यासीके अज्ञानजन्य आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक सर्व दुःखोंका नाश होवै है। जिस कारणतैं ता स्वच्छचित्तवाले संन्यासीकी ब्रह्म आत्मा या दोनोंके अभेदकूं विषय करणेहारी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होवै है। काहेतैं असंभावना तथा विपरीतभावना यह दोनोंही ता बुद्धिकी स्थिरताविषे प्रतिबंधक होवैं हैं। ते असंभावना विपरीतभावना दोनों ता विद्वान् पुरुषविषे हैं नहीं। यातैं प्रतिबंधतैं रहित हुई सा बुद्धि शीघ्रही स्थिरभावकूं प्राप्त होवै है। इहां यद्यपि चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसीदके प्राप्त हुएभी साक्षात् आध्यात्मिकादिक दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं किंतु परंपराकरिकै तिन दुःखोंकी निवृत्ति होवै है। तहां चित्तके प्रसादतैं बुद्धिकी स्थिरता होवै है। ता बुद्धिकी स्थिरतातैं ता बुद्धिके विरोधी अज्ञानकी निवृत्ति होवै है। तिस अज्ञानकी निवृत्तितैं ता अज्ञानके कार्यरूप सकल दुःखोंकी हानि होवै है। इस प्रकारकी परंपराकरिकै तिन दुःखोंकी निवृत्ति होवै है। यातैं चित्तके प्रसाद हुए सर्व दुःखोंका नाश कथन करणा संभवता नहीं। तथापि ता चित्तके प्रसादकी प्राप्तिवासतै प्रयत्नकी अधिकता बोधन करणेवासतै ता चित्तके प्रसादविषे सर्व दुःखोंके नाशकी कारणता कथन करी है यातैं किंचित्मात्रभी विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ ६५ ॥

तहाँ पूर्व श्लोकविषे अन्वयमुखकरिकै कथन करा जो अर्थ है तिसी अर्थकूं अब व्यतिरेकमुखकरिकै दृढ करैं हैं—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ॥
न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

(पदच्छेदः) न । अस्ति । बुद्धिः । अयुक्तस्य । न । च । अयुक्तस्य । भावना । न । च । अभावयतः । शांतिः । अशांतस्य । कुतः । सुखम् ॥ ६६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! चित्तके जयतैं रहित पुरुषकूं बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है तथा ता अयुक्त पुरुषकूं भावना नहीं उत्पन्न होवै है तथा ता भावनातैं रहित पुरुषकूं शांति नहीं उत्पन्न होवै है तौ शांतिरहित पुरुषकूं सुख कहांतैं होवै ॥ ६६ ॥

भा॰ टी॰—जिस पुरुषनैं अपणे चित्तकूं नहीं वशि करा है ता पुरुषका नाम अयुक्त है। ऐसे अयुक्त पुरुषकूं श्रवणमननरूप वेदांतविचारकारिकै जन्य आत्मविषयक बुद्धि उत्पन्न होवै नहीं। और ता बुद्धिके अभाव हुए तिस अयुक्त पुरुषकूं विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासनरूप भावना उत्पन्न होवै नहीं। और ता निदिध्यासनरूप भावनातैं रहित पुरुषकूं कार्यसहित अविद्याके निवृत्त करणेहारी तथा तत्त्वमसि आदिक वेदांतवाक्योंतैं जन्य तथा जीवब्रह्मके अभेदकूं विषय करणेहारी साक्षात्काररूप शांति नहीं उत्पन्न होवै है। और ता आत्मसाक्षात्काररूप शांतितैं रहित पुरुषकूं मोक्षानंदरूप सुख प्राप्त होवै नहीं ॥ ६६ ॥

शंका—हे भगवन् ! ता अयुक्त पुरुषविषे सा बुद्धि किस कारणतैं नहीं उत्पन्न होती। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता बुद्धिकी न उत्पत्तिविषे कारण कथन करैं हैं—

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियाणाम् । हि । चरताम् । यत् । मनः । अनुविधीयते । तत् । अस्य । हरति । प्रज्ञाम् । वायुः । नावम् । इव । अंभसि ॥ ६७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसे कारणतैं अपणे अपणे विषयोंविषे प्रवर्त्तमान इंद्रियोंके मध्यविषे जिस एक इंद्रियकूं लक्ष्य करिकै यह मन प्रवर्त्त होवै है सो इंद्रियभी इस साधक पुरुषकी प्रज्ञाकूं हरण करै है जैसे जलविषे स्थित नौकाकूं प्रतिकूल वायु हरण करै है ॥ ६७ ॥

भा॰ टी॰—अपणे अपणे शब्दादिक विषयोंविषे प्रवर्त्तमान ऐसे जो नहीं वश करे हुए श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके मध्यविषे जिस एक इंद्रियके अनुसारी हुआभी यह मन प्रवृत्त होवै है। सो मन सहृत् एक इंद्रियभी इस साधक पुरुषकी अथवा तिस मनकी शास्त्रजन्य आत्मविषयक प्रज्ञाकूं

निवृत्त करि देवै है। जैसे जलविषे स्थित नौकाकूं प्रतिकूल वायु पाषाणादिकों- विषे ले जाइकै नाश करि देवै है तैसे सो एक इंद्रियभी या अधिकारी पुरुषके प्रज्ञाकूं बहिमुर्खताकरिकै नाश करि देवै है । तात्पर्य यह । राग द्वेषयुक्त मनकी सहायताकूं लैके अपणे विषयविषे प्रवृत्त हुआ एक इंद्रियभी जबी इस अधिकारी पुरुषकी ता प्रज्ञाकूं नाश करै है तबी ते सर्व इंद्रिय इस अधिकारी पुरुषके प्रज्ञाकूं नाश करैं हैं याकेविषे क्या कहणा है । तहां प्रतिकूल वायुकूं जलविषेही नौकाके हरण करणेका सामर्थ्य है पृथिवीविषे स्थित नौकाके हरण करणेका सामर्थ्य है नहीं । इस अर्थके सूचन करणेवासतै दृष्टांतविषे (अंभसि) यह पद कथन करा है । इस प्रकार दार्ष्टांतिकविषे जलके समान जो मनकी चंचलता है ता चंचलताके विद्यमान हुएही ता इंद्रियकूं तिस प्रज्ञाहरण करणेका सामर्थ्य होवै है । और पृथिवीके समान जो मनकी स्थिरता है ता स्थिरताके विद्यमान हुए ता इंद्रियकूं तिस प्रज्ञाके हरण करणेका सामर्थ्य होवै नहीं इति । इहां अन्य टीकावोंविषे (यत् तत्) या दोनों शब्दोंतैं मनका ग्रहण करिकै यह अर्थ करा है । विषयोंविषे प्रवृत्त इंद्रियोंकूं लक्ष्यकरिकै जो मन तिन इंद्रियोंके अनुसारी वर्तै है सो मन इस पुरुषके प्रज्ञाकूं हरण करै है ॥ ६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । यस्य । महाबाहो । निगृहीतानि । सर्वशः । इंद्रियाणि । इंद्रियार्थेभ्यः । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

(पदार्थः) तिस कारणतैं हे महान् बाहुवाला अर्जुन ! जिस पुरुषके ते सर्व इंद्रिय अपणे शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्त हुए हैं तिस पुरुषकीही सा प्रज्ञा स्थिर होवै है ॥ ६८ ॥

भा० टी०–हे महान् बाहुवाले अर्जुन ! जिस कारणतैं बहिर्मुख हुए यह इंद्रिय इस पुरुषकी प्रज्ञाकूं नाश करैं हैं तिस कारणतैं जिस पुरुषके यह मनसहित श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय अपणे अपणे शब्दादिक विषयोंतैं निग्रहकूं प्राप्त हुए हैं । तिस तत्त्ववेत्तारूप सिद्ध पुरुषकीही अथवा मुमुक्षुरूप साधक पुरुषकीही सा आत्माविषय प्रज्ञा स्थिर होवै है । इंद्रियोंके निग्रहतैंरहित पुरु-

षकी सा प्रज्ञा स्थिर होवै नहीं। इहां (हे महाबाहो) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन करा तूं अर्जुन सर्व बाह्य शत्रुवोंके निवारण करणेविषे समर्थ है यातैं अंतर इंद्रियरूप शत्रुवोंके निवृत्त करणेविषेभी तूं समर्थ है इति। तहां मनसहित इंद्रियोंका संयम तत्त्ववेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका तौ लक्षणरूप है। और मुमुक्षु जनके प्रति सो मनसहित इंद्रियोंका संयम ता प्रज्ञाकी प्राप्तिका साधनरूप है या कारणतैंही (तस्य) या शब्दकरिकै तत्त्ववेत्ताका तथा मुमुक्षुका दोनोंका ग्रहण करा है यातैं मुमुक्षु जननै अपणे प्रज्ञाकी स्थिरता करणेवास्तै अत्यंत प्रयत्नपूर्वक तिन इंद्रियोंका संयम करणा ॥ ६८ ॥

अब ता स्थितप्रज्ञके सर्व इंद्रियोंका संयम स्वतःही सिद्ध है इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथनकरैं हैं—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

(पदच्छेदः) या। निशा। सर्वभूतानाम्। तस्याम्। जागर्ति। संयमी। यस्याम्। जाग्रति। भूतानि। सा। निशा। पश्यतः। मुनेः॥ ६९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जा साक्षात्काररूप प्रज्ञा सर्व अज्ञानी जनोंकी रात्रि है ता प्रज्ञारूप रात्रिविषे इंद्रियोंके संयमवाला पुरुष जागता है और जिस अविद्यारूप निद्राविषे यह सर्व अज्ञानी पुरुष जागते हैं सा अविद्या साक्षात्कारवान् स्थितप्रज्ञकी रात्रि है ॥ ६९ ॥

भा॰ टी॰—वेदांतवाक्योंकरिकै जन्य जो मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी साक्षात्काररूप प्रज्ञा है सा प्रज्ञा अज्ञानी पुरुषोंके प्रति अप्रकाशरूप है यातैं सा आत्मसाक्षात्काररूप प्रज्ञा तिन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति लोकप्रसिद्ध रात्रिकी न्याईं रात्रिरूप है ता ब्रह्मविद्यारूप सर्व अज्ञानी जनोंकी रात्रिविषे मनसहित इंद्रियोंके संमयवाला स्थितप्रज्ञ पुरुष अज्ञानरूप निद्रातैं जाग्रत् हुआ सावधान वर्त्तै है। और जिस द्वैतदर्शनरूप अविद्यारूप निद्राविषे सोये हुए यह अज्ञानी पुरुष स्वप्नकी न्याईं नानाप्रकारके व्यवहारोंकूं करैं हैं सा अविद्या आत्मसाक्षात्कारवान् स्थितप्रज्ञकी लोकप्रसिद्ध रात्रिकी न्याईं रात्रिरूप है। तात्पर्य यह—जबपर्यंत यह पुरुष निद्रातैं जाग्रत् नहीं होता तबपर्यंतही नानाप्रकारके स्वप्नका दर्शन होवै है ता निद्रातैं जाग्रत् हुएतैं अनंतर स्वप्नोंका दर्शन होवै नहीं काहेतैं बाधपर्यंतही

भ्रमकी विद्यमानता होवै है । बाधके उत्तर कालविषे सो भ्रम रहै नहीं जैसे यह सर्प नहीं है किंतु रज्जु है या प्रकारके बाधपर्यंतही ता सर्पभ्रमकी स्थिति होवै है ता बाधके हुए सो सर्पभ्रम रहै नहीं तैसे या अधिकारी पुरुषकूं जबपर्यंत तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं भई तबपर्यंतही यह संसारभ्रम रहै है। और तत्त्वज्ञानके प्राप्त हुए सो संसारभ्रम निवृत्त होइ जावै है यातैं ता ज्ञानकालविषे ता विद्वान् पुरुषका ता भ्रमजन्य कोईभी व्यवहार होवै नहीं इति । यह वार्त्ता वार्त्तिकग्रंथके कर्त्ता सुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है । तहां श्लोकत्रयम्–" कारकव्यवहारे हि शुद्धं वस्तु न वीक्ष्यते । शुद्धे वस्तुनि सिद्धे च कारकव्यावृतिस्तथा ॥ १ ॥ काकोलूकनिशेवायं संसारोऽज्ञात्मवेदिनोः । या निशा सर्वभूतानामित्यवोचत्स्वयं हरिः ॥ २ ॥ बुद्धतत्त्वस्य लोकोयं जडोन्मत्तपिशाचवत् । बुद्धतत्त्वोपि लोकस्य जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥" अर्थ यह–कर्त्ता करण इत्यादिक कारकोंके व्यवहार हुए शुद्ध आत्मवस्तु देखी जावै नहीं । और ता शुद्ध आत्मवस्तुके सिद्ध हुए तिन सर्व कारकोंकी निवृत्ति होइ जावै है इति ॥ १ ॥ किंवा जैसे काकपक्षीकी जो यह लोकप्रसिद्ध रात्रि है सा रात्रि उलूकपक्षीकी है नहीं किंतु उलूकपक्षी ता लोकप्रसिद्ध रात्रिविषे नानाप्रकारके खान पानादिक व्यवहार करै है । और ता उलूकपक्षीकी जो यह लोकप्रसिद्ध दिनरूप रात्रि है सो दिन ता काकपक्षीकी रात्रि नहीं है किंतु ता दिनविषे सो काक नानाप्रकारके खानपानादिक व्यवहार करै है तैसेही अज्ञानी पुरुषकूं तथा आत्मवेत्ता पुरुषकूं यह संसार है । यह वार्ता (या निशा सर्वभूतानां) या वचनकरिकै श्रीकृष्णभगवान् आपही कहता भया है इति ॥ २ ॥ किंवा जिस पुरुषनैं अपणे वास्तवस्वरूपकूं जान्या है तिस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्व लोक जड उन्मत्त पिशाचकी न्यांई प्रतीत होवै है । और तिन सर्व लोकोंकूंभी सो विद्वान् पुरुष जड उन्मत्त पिशाचकी न्यांई प्रतीत होवै है इति ॥ ३ ॥ यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जिस पुरुषकूं जिस वस्तुका विपरीत दर्शन होवै है तिस पुरुषकूं तिस वस्तुका सम्यक्दर्शन होवै नहीं काहेतैं सो वस्तुका विपरीतदर्शन ता वस्तुके सम्यक् दर्शनके अभावकरिकैही जन्य होवै है। और जिस पुरुषकूं जिस वस्तुका सम्यक्दर्शन होवै है तिस पुरुषकूं तिस वस्तुका विपरीतदर्शन होवै नहीं काहेतैं ता विपरीतदर्शनका कारणरूप जो ता वस्तुका अदर्शन है सो वस्तुका अदर्शन ता वस्तुका सम्यक्दर्शनकरिकै निवृत्त होइ जावै

है जैसे जिस पुरुषकूं रज्जुविषे यह सर्प है या प्रकारका विपरीतदर्शन हुआ है तिस पुरुषकूं तिस कालविषे यह रज्जु है या प्रकारका सम्यक्दर्शन होवै नहीं। और जिस पुरुषकूं यह रज्जु है या प्रकारका सम्यक्दर्शन हुआ है तिस पुरुषकूं तिस कालविषे यह सर्प है या प्रकारका विपरीतदर्शन होवै नहीं तैसे आत्माके वास्तवस्वरूपकूं जानणेहारे विद्वान् पुरुषकूं प्रपंचविषयक विपरीतदर्शन होवै नहीं। और प्रपंचविषयक विपरीतदर्शनवाले अज्ञानी पुरुषोंकूं आत्माका सम्यक्-दर्शन होवै नहीं। तहां श्रुति-" यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येत इति। यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् इति "। अर्थ यह-जिस अविद्याकालविषे यह अद्वितीय आत्मा द्वैतकी न्याई होवै है तिस अविद्याकाल विषे यह पुरुष अपणेकूं अन्य मानिकै अपणेतैं भिन्न अन्य पदार्थोंकूं देखै है इति। और जिस विद्याकालविषे इस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्व जगत् अपणा आत्मारूपही होता भया है तिस विद्याकालविषे यह विद्वान् पुरुष किस कारणकरिकै किस पदार्थकूं अपणेतैं भिन्न देखै किंतु सो विद्वान् पुरुष अपणेतैं भिन्न किसी पदार्थकूंभी देखता नहीं इति। यह दोनों श्रुतियां यथाक्रमतैं अविद्याकी व्यवस्थाकूं तथा विद्याकी व्यस्थाकूं कथन करै हैं यातैं तत्त्वदर्शी विद्वान् पुरुषविषे अविद्याकृत क्रियाकारकादिक व्यवहार कदाचितभी संभवै नहीं यातैं ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका सो इंद्रियोंका संयम स्वभावतैंही सिद्ध हैं मुमुक्षुकी न्याईं कोई प्रयत्नसाध्य नहीं है ॥ ६९ ॥

तहां ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका इंद्रियोंका संयम जैसे स्वभावतैंही सिद्ध हैं तैसे ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषके सर्व विक्षेपोंकी शांतिभी स्वभावतैंही सिद्ध है। या अर्थकूं श्रीभगवान् दृष्टांतकरिकै निरूपण करै हैं-

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्॥
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

(पदच्छेदः) आपूर्यमाणम्[३]। अचलप्रतिष्ठम्[२]। समुद्रम्[१]। आपः[४]। प्रविशंति[६]। यद्वत्[५]। तद्वत्[७]। कामाः[८]। यम्[९]। प्रविशंति[१०]। सर्वे[११]। सः[१२]। शांतिम्[१३]। आप्नोति[१४]। न[१५]। कामकामी[१६]॥ ७० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस प्रकार सर्व नदियोंकरिकै पूर्ण करे हुए तथा अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रकूं वर्षाके जल प्रवेश करैं हैं तिसँ प्रकार जिसं स्थितप्रज्ञ पुरुषकूं सर्व शब्दादिक विषय प्रवेश करैं हैं सो स्थितप्रज्ञ पुरुषही सर्व विक्षेपकी निवृत्तिरूप शांतिकूं प्राप्त होवै है विषयोंकी कामनावाला पुरुष ता शांतिकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ ७० ॥

भा० टी०—श्रीगंगा, यमुना, गोदावरी, सिंधु, सरस्वती इत्यादिक सर्व नदियोंके जलोंकरिकै सर्व ओरतैं पूर्ण हुआ जो समुद्र है ता समुद्रकूंही वृष्टि आदिकोंतैं उत्पन्न हुए सर्व जल प्रवेश करै हैं। तिन सर्व जलोंके प्रवेश हुएभी सो समुद्र अचलप्रतिष्ठही रहै है। नहीं परित्याग करी है अपणी मर्यादा जिसनैं ताका नाम अचलप्रतिष्ठ है अथवा मैनाकादिक पर्वतोंका नाम अचल है तिन मैनाकादिक पर्वतोंकी है स्थिति जिसविषे ताका नाम अचलप्रतिष्ठ है। इतने कहणेकरिकै ता समुद्रके गंभीरताकी अधिकता वर्णन करी। ऐसे महान् गंभीर समुद्रविषेही ते सर्व जल प्रवेश करै हैं परंतु तिन जलोंके प्रवेश करणेतैं सो समुद्र किंचित्मात्रभी क्षोभकूं प्राप्त होवै नहीं। यह वार्त्ता सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है। तैसे निर्विकाररूपकरिकै स्थित जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषकूं यह अज्ञानी पुरुषोंकी कामनाके विषय शब्दादिक विषय प्रारब्धकर्मके वशतैं प्राप्त होवैं हैं परंतु ते शब्दादिक विषय जिस विद्वान् पुरुषकूं विकारकी प्राप्ति करि सकते नहीं। ऐसा महान् समुद्रके समान सो स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषही लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंकी निवृत्तिरूप तथा कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शांतिकूं प्राप्त होवै है। और जो पुरुष तिन शब्दादिक विषयोंके प्राप्तिकी इच्छावाला है सो पुरुष ता शांतिकूं प्राप्त होवै नहीं किंतु सो विषयासक्त पुरुष सर्व कालविषे ता लौकिक वैदिक कर्मरूप विक्षेपकरिकै महान् क्लेशरूप समुद्रविषे मग्न होवै है। इतनेकरिकै यह अर्थ कह्या गया—जिस पुरुषकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति भई है तिस ज्ञानवान् पुरुषकूंही फलरूप विद्वत्संन्यास प्राप्त होवै है तथा तिस ज्ञानवान् पुरुषकूंही सर्व विक्षेपकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। तथा विषयभोगोंके प्राप्त हुएभी निर्विकारताही होवै है॥ ७० ॥

जिस कारणतैं विषयोंकी कामनावाला पुरुष ता शांतिकूं प्राप्त होवै नहीं तिस कारणतैं प्राप्त हुएभी तिन विषयोंकूं यह विवेकी पुरुष परित्यागही करै या अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

(पदच्छेदः) विहाय । कामान् । यः । सर्वान् । पुमान् । चरति । निःस्पृहः । निर्ममः । निरहंकारः । सः । शांतिम् । अधिगच्छति ॥ ७१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुषः सर्व कामोंकूं परित्याग करिकै निःस्पृह हुआ तथा निर्मम हुआ तथा निरहंकार हुआ विचरै है सो स्थितप्रज्ञ तौ शांतिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ७१ ॥

भा० टी०—गृह, क्षेत्र, धन आदिक जितनेक बहिरले काम हैं तथा मनोराज्यरूप जितनेक अंतरले काम हैं तथा वासनामात्ररूप जितनेक काम हैं ऐसे तीन प्रकारके कामोंकूं जो पुरुष मार्गविषे चलते हुए तृणोंके स्पर्शकी न्यांई तुच्छ जानिकै उपेक्षा करि देवै है तथा जो पुरुष अपणे शरीरके जीवनमात्रकी इच्छातैंभी रहित है तथा जो पुरुष शरीर इंद्रियादिक संघातविषे यहही मैं हूं या प्रकारके अभिमानरूप अहंकारतैं रहित है अथवा विद्या, उत्तम आश्रम आदिकोंकी प्राप्ति करिकै जन्य जो अपणेविषे उत्कृष्टता बुद्धिरूप अहंकार है ता अहंकारतैं रहित है निरहंकार होणेतैं जो पुरुष निर्मम है क्या शरीरके निर्वाहवासतै प्रारब्धकर्मनैं प्राप्त करे जो कंथा कौपीनादिक हैं तिनोंविषेभी यह हमारे हैं या प्रकारके अभिमानतैं जो पुरुष रहित है इस प्रकार सर्व पदार्थोंकी उपेक्षाकरिकै तथा निःस्पृह होइकै तथा निरहंकार होइकै तथा निर्मम होइकै जो पुरुष प्रारब्धकर्मके वशतैं शास्त्रविहित भोगोंकूं भोगै है अथवा अपणी इच्छापूर्वक जहां तहां विचरै है सो इस प्रकारका स्थितप्रज्ञ पुरुष सर्व संसारदुःखोंकी उपरामतारूप कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शांतिकूं आत्मज्ञानके बलतैं प्राप्त होवै है। या प्रकारका व्रजन ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका होवै है । इतने कहणेकरिकै (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नका उत्तर सिद्ध भया ॥ ७१ ॥

तहां पूर्वग्रंथविषे चारि प्रश्नोंके चारि उत्तरोंके व्याजकरिकै स्थितप्रज्ञ पुरुषके सर्व लक्षणोंकूं मुमुक्षु जननैं अवश्य संपादन करणा यह अर्थ निरूपण करा । अब निष्कामकर्मयोगका फलरूप जो सांख्य निष्ठा है ता सांख्यनिष्ठाकी फलके निरूपणकरिकै स्तुति करता हुआ श्रीभगवान् ताका उपसंहार करै हैं—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥
स्थित्वास्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां श्रीभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) एषा । ब्राह्मी । स्थितिः । पार्थ । न । एनाम् । प्राप्य । विमुह्यति । स्थित्वा । अस्याम् । अंतकाले । अपि । ब्रह्मनिर्वाणम् । ऋच्छति ॥ ७२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! यह जो ब्रह्मविषयक स्थिति है इसकूं प्राप्त होइके कोईभी पुरुष नहीं मोहकूं प्राप्त होवै है इस स्थितिविषे अंत्यअवस्थाविषे स्थित होइके भी यह पुरुष ब्रह्म निवार्णकूं प्राप्त होवै है ॥ ७२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व हमनैं तुम्हारे प्रति स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणोंके व्याजकरिकै कथन करी हुई तथा (एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिः) इस वचनकरिकै कथन करी हुई जो सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक परमात्माकी ज्ञानरूप स्थिति है । कैसी है सा स्थिति । प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारी है यातैं ता स्थितिकूं ब्राह्मी कहैं हैं । ऐसी ब्रह्मनिष्ठारूप स्थितिकूं जो कोई पुरुष प्राप्त होवै है सो पुरुष पुनः कदाचित्भी अज्ञानरूप मोहकूं प्राप्त होवै नहीं काहेतैं सो अज्ञान अनादि है क्या उत्पत्तितैं रहित है यातैं आत्मज्ञानकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्त हुआ सो अज्ञान पुनः कदाचित्भी उत्पन्न होवै नहीं । ऐसी ब्रह्मनिष्ठारूप स्थितिविषे जो कोई पुरुष अंत्य अवस्थाविषेभी स्थित होवै है सो पुरुषभी ब्रह्मनिर्वाणकूं प्राप्त होवै है क्या ब्रह्मविषेही आनंदकूं प्राप्त होवै है । अथवा ब्रह्मरूप आनंदकूं मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है । इहां (निर्वाणं) यह पद आनंदका बोधक है । और किसी टीकाविषे तौ (ब्रह्मनिर्वाणं) यह दोनों पद भिन्न मानिकरिकै यह अर्थ करा है ता ब्राह्मीस्थितिविषे स्थित होइकै सो विद्वान् पुरुष ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है । शंका—जैसे स्वर्गादिक लोक गमनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होवैं हैं तैसे सो ब्रह्मभी गमनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होता होवैगा । ऐसी शंकाके हुए ता शंकाके निवृत्त करणेवास्तै ता ब्रह्मका विशेषण

कहैं हैं (निर्वाणम् इति) " निर्गतं वानं गमनं यस्मिन्प्राप्ये ब्रह्मणि तन्निर्वाणम् "। अर्थ यह–निवृत्त होइ गई है गमनरूप क्रिया जिस ब्रह्मविषे ताका नाम निर्वाण है। तहां श्रुति " न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति " अर्थ यह–मरणकालविषे जैसे अज्ञानी पुरुषोंके प्राण इस शरीरतैं उत्क्रमण करैं हैं तैसे तिस ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुषके प्राण इस शरीरतैं बाहिर उत्क्रमण करते नहीं किंतु ते प्राण इस शरीरके भीतरही लयभावकूं प्राप्त होवैं हैं। और यह विद्वान् पुरुष ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है इति। इहां (अंतकालेपि) या वचनविषे स्थित जो (अपि) यह शब्द है। ता अपि शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिक न्याय सूचन करा। यह अधिकारी पुरुष जबी अंत्य अवस्थाविषेभी ता ब्रह्मनिष्ठाविषे स्थित होइकै ता आनंदस्वरूप ब्रह्मकूंही प्राप्त होवै है तबी जो पुरुष ब्रह्मचर्यआश्रमतैंही संन्यासकूं करिकै मरणपर्यंत ता ब्राह्मीस्थितिविषे स्थित हुआ है सो पुरुष ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है याके विषे क्या कहणा है। तहां श्लोक। " विज्ञाय चरमावस्थां देवताभ्यो नृपोत्तमः। खट्वांगो नाम राजर्षिर्मुहूर्ते मुक्तिमेयिवान् इति "। अर्थ यह–सर्व राजावोंविषे श्रेष्ठ खट्वांग नामा राजऋषि अपणी अंत्य अवस्थाकूं देखिकै देवतावोंके उपदेशतैं एक मुहूर्तमात्रविषे कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होता भया इति। अब इस द्वितीय अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण करा जो अर्थ है ता सर्व अर्थका संक्षेपतैं निरूपण करणेहारा श्लोक कथन करैं हैं। "ज्ञानं तत्साधनं कर्म सत्त्वशुद्धिश्च तत्फलम्। तत्फलं ज्ञाननिष्ठैवेत्यध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितम्"। अर्थ यह–इस भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायविषे आत्मज्ञानका कथन करा है तथा ता ज्ञानका परंपरा साधनरूप निष्काम कर्म कथन करा है। और ता निष्काम कर्मका अंतःकरणकी शुद्धिरूप फल कथन करा है। और ता अंतःकरणके शुद्धिका ज्ञाननिष्ठारूप फल कथन करा है इतने पदार्थ इस द्वितीय अध्यायविषे कथन करे हैं ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सर्वगीतार्थसूत्रनाम द्वितीयोध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयाध्यायप्रारंभः ।

तहां इस भगवद्गीताके प्रथम अध्यायकरिकै उपोद्घात करा जो संपूर्ण गीताशास्त्रका अर्थ है सो संपूर्ण गीताशास्त्रका अर्थ सूत्ररूप द्वितीय अध्यायकरिकै सूचन करा है सो प्रकार दिखावैं हैं । या अधिकारी पुरुषकूं प्रथम निष्काम कर्मनिष्ठा होवै है । तिसतैं अनंतर अंतःकरणकी शुद्धि होवै है । तिसतैं अनंतर शमदमादिक साधनपूर्वक सर्व कर्मोंका संन्यास होवै है तिसतैं अनंतर वेदांतवाक्योंके विचार सहित भगवद्भक्तिनिष्ठा होवै है । तिसतैं अनंतर तत्त्वज्ञान निष्ठा होवै है । तिसतैं अनन्तर तिस तत्त्वज्ञाननिष्ठाका त्रिगुणात्मक अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक जीवन्मुक्तिरूप फल होवै है । सो जीवन्मुक्तिरूप फल प्रारब्धकर्मके फलभोगपर्यंत रहै है । ता प्रारब्धकर्मके समाप्त हुएतैं अनन्तर विदेहमुक्ति होवै है । तहां जीवन्मुक्तिदशाविषे परम पुरुषार्थके आलंबन करिकै इस पुरुषकूं पर वैराग्यकी प्राप्ति होवै है। ता पर वैराग्यकी प्राप्तिविषे दैवीसंपदनामा शुभ बासना उपयोगी होवै है यातैं सा शुभवासना तौ ग्रहण करणे योग्य है । और आसुरीसंपदनामा अशुभ वासना ता परवैराग्यकी प्राप्तिविषे विरोधी है । यातैं सा अशुभ वासना परित्यागकरणे योग्य है । तहां दैवी संपदाका असाधारण कारण सात्विकी श्रद्धा है । और आसुरीक संपदाका असाधारण कारण राजसी तथा तामसी श्रद्धा है । इस प्रकार ग्रहण करणेके योग्य तथा परित्याग करणेके योग्य पदार्थोंका विभाग करिकै सर्व गीताशास्त्रके अर्थकी परिसमाप्ति होवै है सो सर्व अर्थ इस गीताके सूत्ररूप द्वितीय अध्यायविषे सूचन करा है । तहां इस गीताके द्वितीय अध्यायविषे (योगस्थः कुरु कर्माणि) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो अंतःकरणके शुद्धिका साधनरूप निष्काम कर्मनिष्ठा है सा निष्काम कर्मनिष्ठा सामान्यरूप करिकै तथा विशेषरूपकरिकै इस गीताके तृतीय और चतुर्थ या दोनों अध्यायोंविषे निरूपण करी है । तिसतैं अनंतर (विहाय कामान्यः सर्वान्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषकूं शमदमादिक साधनसंपत्तिपूर्वक सर्व कर्मोंके संन्यासकी निष्ठा है सा सर्व कर्मसंन्यासनिष्ठा इस गीताके पंचम और षष्ठ या दोनों अध्यायोंविषे निरूपण करी है । इतनैं करिकै त्वंपदार्थका निरूपण सिद्ध भया । तिसतैं अनंतर

(युक्त आसीत मत्परः) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो वेदांतवाक्योंके विचार सहित अनेक प्रकारकी भगवद्भक्तिनिष्ठा है सा भगवद्भक्तिनिष्ठा इस गीताके सप्तम, अष्टम, नवम दशम, एकादश और द्वादश या षट् अध्यायोंविषे निरूपण करी है। इतनैं करिकै तत्पदार्थका निरूपण सिद्ध भया। तहां पूर्व पूर्व अध्यायका उत्तरोत्तर अध्यायके साथि संबंधरूप जो अवांतर संगति है तथा अवांतर प्रयोजनोंका भेद है ते दोनों तिस तिस अध्यायके व्याख्यानविषे हम निरूपण करैंगे। तिसतैं अनन्तर (वेदाविनाशिनं नित्यम्) इत्यादिक वचनोंकारिकै सूचन करी जो तत्त्वंपदार्थका अभेद ज्ञानरूप तत्त्वज्ञाननिष्ठा है सा तत्त्वज्ञाननिष्ठा इस गीताके त्रयोदश अध्यायविषे प्रकृतिपुरुषके विवेकद्वारा निरूपण करी है। तिसतैं अनंतर (त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन) इत्यादिक वचनोंकारिकै सूचन करा जो त्रैगुण्यनिवृत्तिरूप ता ज्ञाननिष्ठाका फल है सो फल इस गीताके चतुर्दश अध्यायविषे निरूपण करा है सो त्रैगुण्यकी निवृत्तिही जीवनन्मुक्ति है यह वार्त्ता गुणातीत पुरुषके लक्षणोंके कथनकरिकै निरूपण करी है। तिसतैं अनंतर (तदा गंतासि निर्वेदम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो परवैराग्यनिष्ठा है सा परवैराग्य निष्ठा इस गीताके पंचदश अध्याविषे संसाररूप वृक्षके उच्छेदनद्वारा निरूपणकरी है। तिसतैं अनन्तर (दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः) इत्यादिक वचनोंविषे स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणकारिकै सूचन करी जो तिस परवैराग्यकी उपयोगी दैवी संपदा है सा दैवीसंपदा तौ ग्रहण करणे योग्य है। और (यामिमां पुष्पितां वाचम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचनकरिकै जो ता परवैराग्यकी विरोधी आसुरी संपदा है सा आसुरी संपदा परित्याग करणे योग्य है यह सर्व वार्त्ता इस गीताके षोडश अध्यायविषे कथन करी है। तिसतैं अनन्तर (निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थः) इत्यादिक वचनोंकारिकै सूचनकरी जो ता दैवी संपदाका असाधारणकारणरूप सात्विकी श्रद्धा है सा सात्विकी श्रद्धा इस गीताके सप्तदश अध्यायविषे राजसी तामसी श्रद्धाकी निवृत्तिपूर्वक कथन करी है इस प्रकार त्रयोदश अध्यायतैं आदिलैके सप्तदश अध्यायपर्यंत पंच अध्यायोंविषे फलसहित ज्ञाननिष्ठा निरूपण करी है तिसतैं अनन्तर इस गीताके अष्टादश अध्यायविषे पूर्व कथन करे हुए सर्व अर्थका उपसंहार करा है इस प्रकारसैं सर्व गीताके अर्थका परस्पर संबंध सिद्ध होवै है इति। तहां पूर्व द्वितीय अध्यायविषे सांख्यबुद्धिकूं आश्रयण करिकै श्रीभगवान्नै (एषा तेऽभिहिता सांख्ये) इत्यादिक

वचनोंकरिकै ज्ञाननिष्ठा कथन करी थी तथा योगबुद्धिकूं आश्रयण करिकै श्रीभगवान्नैं (योगे त्विमां शृणु) इसतैं आदि लैके (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि) इस वचनपर्यंत सर्व वचनोंकरिकै कर्मनिष्ठा कथन करी थी परन्तु ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंके अधिकारीका भेद श्रीभगवान्नैं स्पष्ट करिकै कथन करा नहीं । शंका–तिन दोनों निष्ठावोंका एकही अधिकारी है काहेतैं ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चयही मोक्षके प्राप्तिका हेतु है । समाधान–ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चय अंगीकार करिकै तिन दोनोंकी एक अधिकारिता श्रीभगवान्कूं वांछित है नहीं । काहेतैं (दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं ज्ञाननिष्ठाकी अपेक्षा करिकै कर्मनिष्ठाविषे निकृष्टता कथन करी है । और (यावानर्थ उदपाने) या वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आत्मज्ञानके फलविषे सर्व कर्मोंके फलका अंतर्भाव दिखाया है । और स्थितप्रज्ञ पुरुषका लक्षण कहि करिकै श्रीभगवान्नैं (एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ) या वचन करिकै प्रशंसासहित ज्ञानके फलका उपसंहार करा है । और (या निशा सर्वभूतानाम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै श्रीभगवान्नैं ज्ञानवान् पुरुषकूं द्वैतदर्शनके अभावतैं कर्मोंके अनुष्ठानका असंभव कथन करा है । और जैसे लोकविषे अंधकारकी निवृत्तिविषे केवल प्रकाशमात्रकूंही कारणता होवै है तैसे अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्षफलविषेभी केवल ज्ञानमात्रकूंही कारणता है और श्रुतिभी ज्ञानमात्रतैंही मोक्षकी प्राप्तिका कथन करै है । तहां श्रुति । " तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" । अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष आनंदस्वरूप आत्माकूं साक्षात्कारकरिकै संसाररूप मृत्युकूं नाश करै है और मोक्षकी प्राप्तिवासतैं आत्मसाक्षात्कारतैं विना दूसरा कोई मार्ग है नहीं इति । यातैं ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं तथा एक अधिकारिकताभी संभवै नहीं । शंका–जैसे प्रकाश तथा अंधकार यह दोनों परस्पर विरोधी हैं यातैं तिन दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं । तैसे आत्मज्ञान तथा कर्म यह दोनोंभी परस्पर विरोधी हैं यातैं तिन दोनोंकाभी समुच्चय संभवै नहीं यातैं ज्ञान तथा कर्म इन दोनोंका भिन्नभिन्नही अधिकारी होवै है । समाधान–ज्ञान तथा कर्म इन दोनोंका भिन्नभिन्नही अधिकारी होवै है यह वार्त्ता यद्यपि सत्य है तथापि एकही अर्जुनके प्रति ज्ञान और कर्म इन दोनोंका उपदेश करणा संभवता नहीं काहेतैं जो देहाभिमानी पुरुष कर्मका अधि-

कारी होवै है तिस पुरुषके प्रति ज्ञाननिष्ठाका उपदेश करणा योग्य नहीं होवै है। और जो देहाभिमानतैं रहित पुरुष ज्ञानका अधिकारी होवै है तिस पुरुषके प्रति कर्मनिष्ठाका उपदेश करणा योग्य नहीं होवै है। शंका—एकंही पुरुषके प्रति विकल्पकरिकै ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका उपदेश संभव होइ सकै है। समाधान—समान स्वभाववाले पदार्थोंकाही विकल्पकरिकै विधान होवै है जैसे होमविषे समान स्वभाववाले व्रीहियवादिक पदार्थोंका विकल्पकरिकै विधान होवै है परंतु उत्कृष्ट निकृष्ट पदार्थोंका विकल्पकरिकै विधान होवै नहीं। और आत्मज्ञानकी अपेक्षाकरिकै कर्मोंविषे निकृष्टता तथा कर्मोंकी अपेक्षाकरिकै आत्मज्ञानविषे उत्कृष्टता (दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय) इत्यादिक वचनोंकरिकै स्पष्टही है यातैं ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका विकल्प संभवै नहीं। किंवा कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिकरिकै उपलक्षित जो ब्रह्मानंदरूप मोक्ष है ता मोक्षविषे कर्मोंके स्वर्गादिक फलकी न्याईं न्यून अधिकता संभवै नहीं या कारणतैंभी ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंका जो कदाचित भिन्न भिन्न अधिकारी मानियें तो एक पुरुषके प्रति तिन दोनों निष्ठावोंका उपदेश संभवै नहीं। और तिन दोनों निष्ठावोंका जो कदाचित् एकही अधिकारी मानियें तौ परस्पर विरुद्ध तिन दोनों निष्ठावोंका समुचय नहीं संभवैगा। तथा कर्मकी अपेक्षाकरिकै ता आत्मज्ञानविषे श्रेष्ठताभी नहीं सिद्ध होवैगी। और ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका जो कदाचित् विकल्प अंगीकार करियें तौ सर्वतैं उत्कृष्ट तथा परिश्रमतैं विनाही सिद्ध होणेहारा जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानका परित्याग करिकै बहुत परिश्रमकरिकै सिद्ध होणेहारा तथा अत्यंत निकृष्ट ऐसे कर्मका अनुष्ठान कोईभी पुरुष करैगा नहीं इस प्रकारका विचारकरिकै अत्यंत व्याकुल हुई है बुद्धि जिसकी ऐसा सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति या प्रकारका वचन कहता भया—

अर्जुन उवाच।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन॥
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ १॥

(पदच्छेदः) ज्यायसी[6]। चेत्[3]। कर्मणः[4]। ते[2]। मता[5]। बुद्धिः[1]। जनार्दन[1]। तत्[8]। किम्[13]। कर्मणि[11]। घोरे[10]। माम्[12]। नियोजयसि[14]। केशव॥१॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! तुम्हारेकूं जबी निष्कामकर्म तैं आत्मविषयक बुद्धि श्रेष्ठरूपकरिकै अभिमत है तबी हे केशव ! हिंसारूप घोर कर्मविषे तूं हमारेकूं किसवासतै प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

भा॰ टी॰–हे जनार्दन ! जो कदाचित् तुम्हारेकूं निष्काम कर्मोतैं आत्मतत्त्वविषयक बुद्धि अत्यंत श्रेष्ठरूपताकारिकैं अभिमत है तौ हे केशव ! हिंसादिक अनेक आयासोंकारिकै युक्त इस युद्धरूप घोरकर्मविषे मैं अत्यंत भक्तकूं (कर्मण्येवाधिकारस्ते) इत्यादिक वचनोंकारिकै आप वारंवार किसवासतै प्रेरणा करते हो तहां "सर्वैर्जनैरर्द्यते याच्यते स्वाभिलषितसिद्धये इति जनार्दनः" अर्थ यह–अपणे मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्तिवासतै सर्व जनोंनैं जिसके प्रति याचना करीती है ताका नाम जनार्दन है । अथवा 'जनं जननं तत्कारणमज्ञानं च स्वसाक्षात्कारेणार्दयति हिनस्तीति जनार्दनः' । अर्थ यह–जन्मकूं तथा जन्मके कारण अज्ञानकूं जो अपने साक्षात्कारकारिकै नाश करै है ताका नाम जनार्दन है । इहां (हे जनार्दन !) या संबोधनकरिकै अर्जुनने यह अर्थ सूचन करा । ऐसे याचना करणेहारे भक्तजनोंके प्रति आप मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करणेहारे हो यातैं अपणे श्रेयके निश्चय करणेवासतै जो हमारी आपके प्रति याचना है सो कोई अनुचित नहीं है इति । और (हे केशव !) या संबोधनकरिकै अर्जुननै यह अर्थ सूचन करा । सर्वका ईश्वर तथा सर्व इष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति करणेहारे जो आप भगवान् हो तिस एक आपकेही (शिष्यस्तेहं शाधि माम्) इत्यादि प्रार्थनापूर्वक शरणकूं प्राप्त भया जो मैं भक्त अर्जुन हूं तिस हमारेसाथि वंचना करणी आपकूं उचित नहीं है ॥ १ ॥

हे अर्जुन ! मैं कृष्णभगवान् किसीभी प्राणीके साथि वंचना करता नहीं तौ तैं अत्यंत प्रिय भक्तके साथि मैं किस प्रकार वंचना करौंगा किंतु नहीं करौंगा और तूं हमारेविषे ता वंचना करणेका कौन चिह्न देखता है, ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति कहै है–

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ॥
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) व्यामिश्रेण । इव । वाक्येन । बुद्धिम् । मोहयसि । इव । मे । तत् । एकम् । वद । निश्चित्य । येन । श्रेयः । अहम् । आप्नुयाम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! मिले हुए वचनकी न्याईं वचनकरिकै आप हमारे बुद्धिकूं मोहकर्त्ताकी न्याईं मोहकी प्राप्ति करते हो तिस एक अधिकारकूं आप निश्चयकरिकै कथन करो जिसकरिकै मैं अर्जुन मोक्षकूं प्राप्त होवौं ॥ २ ॥

भा° टी°—हे भगवन् ! (त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन) इत्यादिक वचनोंकरिकै आप पूर्व किसी स्थलविषे तौ वेदनिष्ठाका परित्याग करावते भये हो। और (कर्मण्येवाधिकारस्ते) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व किसी स्थलविषे तौ आप तिसी वेदनिष्ठाका ग्रहण करावते भये हो और (निर्द्वंद्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व किसी स्थलविषे तौ आप निवृत्तिमार्गका उपदेश करते भये हो। और (धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व किसी स्थलविषे तौ आप प्रवृत्तिमार्गका उपदेश करते भये हो। इस प्रकार ज्ञाननिष्ठाकूं तथा कर्मनिष्ठाकूं प्रतिपादन करणेहारे जो आपके वचन हैं ते आपके वचन यद्यपि मिले हुए अर्थकूं कथन करते नहीं किंतु भिन्न भिन्न अर्थकूं कथन करते हैं तथापि मैं अर्जुनकूं अपणे बुद्धिके दोषतैं ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनोंका एकही अधिकारी है अथवा भिन्न भिन्न अधिकारी हैं या प्रकारके संशयकरिकै मिले हुए अर्थके वाचक प्रतीत होवैं हैं यह अर्थ अर्जुननैं (व्यामिश्रेणैव) या वचनविषे स्थित इव या शब्द करिकै सूचन करा इति। हे भगवन् ! ऐसे ज्ञान तथा कर्मनिष्ठाके प्रतिपादक व्यामिश्रित वाक्योंकरिकै आप मैं मंदबुद्धि अर्जुनके अंतःकरणकूं मानों मोहकी प्राप्ति करते हो। इहां (मोहयसीव) या वचनविषे स्थित जो इव यह शब्द है ता इव शब्दकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा। आप परम कृपालु हो यातैं आप हमारे मोहके निवृत्त करणेवासतैही प्रवृत्त हुए हो कोई हमारेकूं मोह करणेवासते आप प्रवृत्त हुए नहीं तथापि आपके वचनोंकूं श्रवण करिकै हमारेकूं जो भ्रमरूप मोह भया है सो अपणे अंतःकरणके दोषतैं भया है इति। हे भगवन् ! ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका जो कदाचित् एकही पुरुष अधिकारी होवै तौ परस्पर विरुद्ध होणेतैं ता ज्ञान तथा कर्म दोनोंका समुच्चय नहीं संभवैगा। और ज्ञान तथा कर्म यह दोनों एक अर्थके हेतु हैं नहीं यातैं तिन दोनोंका विकल्पभी संभवै नहीं। और पूर्व उक्त रीतिसैं जो कदाचित् आप ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके अधिकारीका भेद

मानते होवौ तौ एकही मैं अर्जुनके प्रति परस्पर विरुद्ध ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनोंका उपदेश संभवता नहीं । और जैसे एकही पुरुष एकही कालविषे परस्पर विरुद्ध स्थिति तथा गमन या दोनोंके करणेविषे समर्थ होवै नहीं तैसे एकही मैं अर्जुन एकही कालविषे परस्पर विरुद्ध ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनोंके अनुष्ठान करणेविषे समर्थ नहीं हूं यातैं ज्ञानका अधिकार तथा कर्मका अधिकार या दोनोंविषे एक अधिकारकूं आप निश्चयकरिकै हमारेप्रति कथन करो। जिस अधिकारसै निश्चयपूर्वक आपके वचनकरिकै मैं अर्जुन ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके मध्यविषे एक ज्ञानका अथवा कर्मका अनुष्ठान करिकै मोक्षरूप श्रेयकूं प्राप्त होवौं । इहां ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा या दोनोंनिष्ठावोंका जो एक अधिकारी अंगीकार करियें तौ तिन दोनों निष्ठावोंका विकल्प तथा समुच्चय संभवै नहीं यातैं तिन दोनों निष्ठावोंके अधिकारीके भेद जानणेवासतै यह दो श्लोकोंकरिकै अर्जुनका प्रश्न है यह सिद्ध भया ॥ २ ॥

इस प्रकार जबी अर्जुननैं ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंके अधिकारीके भेदका प्रश्न करा तबी सो श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रश्नके अनुसार उत्तरकूं कहता भया-

श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ॥
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) लोके । अस्मिन् । द्विविधा । निष्ठा । पुरा । प्रोक्ता । मया । अनघ । ज्ञानयोगेन । सांख्यानाम् । कर्मयोगन । योगिनाम् ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे पापतैं रहित अर्जुन ! इस लोकविषे पूर्व अध्यायविषे हमनैं दो प्रकारकी निष्ठा कथन करी थी तहां तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं ज्ञानरूप योगकरिकै सा निष्ठा कही थी और कर्मयोगवान् पुरुषोंकूं कर्मरूप योगकरिकै सा निष्ठा कथन करी थी ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! अधिकारीरूपकरिकै अंगीकार करे जो शुद्ध अंतःकरणवाले तथा अशुद्धअंतःकरणवाले दो प्रकारके जन हैं ता दो प्रकारके जनरूप इस लोकविषे ज्ञानपरतारूप तथा कर्मपरतारूप दो प्रकारकी स्थितिरूप निष्ठा पूर्व अध्यायविषे मैं कृष्णभगवाननैं तुम्हारेप्रति स्पष्टरूपकरिकै कथन

करी थी यातैं ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंविषे एक अधिकारिकी शंकाकरिकै तूं ग्लानिकूं मत प्राप्त होउ । इहां (हे अनघ) क्या हे पापोंतैं रहित या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं ता अर्जुनविषे ब्रह्मविद्याके उपदेशकी योग्यता सूचन करी काहेतैं (ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः) इत्यादिक शास्त्रोंके वचनोंनैं पापकर्मतैं रहित पुरुषोंविषेही आत्मज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यता कथन करी है इति । और सा एकही स्थितिरूप निष्ठा साध्य अवस्था तथा साधन अवस्था या दोनों अवस्थावोंके भेदकरिकै दो प्रकारकी होवै है कोई दोनोंही निष्ठा स्वतंत्र हैं नहीं । या अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (निष्ठा) या पदविषे एकवचन कथन करा है जो कदाचित् स्वतंत्र दोनों निष्ठा भगवान्कूं अभिमत होतीयां तौ निष्ठे या प्रकारके द्विवचनकूं भगवान् कथन करता । इसी अर्थकूं (एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति) या वचनकरिकै श्रीभगवान् आगे कथन करैगा इति । अब तिसीही स्थितिरूप निष्ठाकूं दो प्रकारतारूपकरिकै वर्णन करैं हैं । (ज्ञानयोगेन सांख्यानां इति) प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारी जो बुद्धि है ताका नाम सांख्या है ता सांख्या नामा बुद्धिकूं जो प्राप्त हुए हैं तिन्होंका नाम सांख्य है । क्या जिन पुरुषोंनैं ब्रह्मचर्य आश्रमतैंही संन्यासकूं धारण करा है । तथा जिन पुरुषोंनैं वेदांतके श्रवणमननादिकोंकरिकै आत्मवस्तुकूं निश्चय करा है तथा जे पुरुष ज्ञान भूमिकाविषे आरूढ हुए हैं ऐसे शुद्धअंतःकरणवाले सांख्यनामा पुरुषोंकूं (तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व ज्ञानरूप योगकरिकैही सा निष्ठा कथन करी है । इहां " युज्यते ब्रह्मणा अनेन स योगः " । अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष जिस करिकै ब्रह्मके साथि जुडै है ताका नाम योग है इति । और यह अधिकारी पुरुष ता ज्ञानकरिकै ही ब्रह्मके साथि अभेदभावकूं प्राप्त होवै है यातैं सो ज्ञानही योगरूप है इति । और जिन पुरुषोंका अंतःकरण शुद्ध नहीं भया है तथा जे पुरुष ज्ञानभूमिकाविषे आरूढ नहीं भए हैं ऐसे कर्मोंके अधिकारीरूप योगी पुरुषोंकूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानभूमिकाविषे आरूढ होणेवासतै (धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते) इत्यादिक वचनोंकरिकै कर्मरूप योगकरिकैही पूर्व सा निष्ठा कथन करी है इहां 'युज्यते अंतःकरणशुद्ध्या अनेन स योगः' । अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष जिसकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिके साथि जुडै है ताका

नाम योग है इति । ऐसे अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्म हैं यातैं ते निष्काम कर्मही योगरूप हैं या कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध भया । ज्ञान और कर्म या दोनोंका पूर्व उक्त प्रकारतैं समुच्चय तथा विकल्प संभवै नहीं किंतु प्रथम निष्काम कर्मोंकरिकै शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिन्होंका ऐसे अधिकारी पुरुषोंकूं सर्व कर्मोंके संन्यासकरिकै ही आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है यातैं चित्तकी शुद्धिरूप तथा चित्तकी अशुद्धिरूप दो अवस्थावोंके भेदकरिकै एकहीतैं अर्जुनके प्रति हमनैं (एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोंगे त्विमां शृणु) इत्यादिक वचनोंकरिकै सा दो-प्रकारकी निष्ठा कथन करीहै यातैं भूमिकाके भेदकरिकै एकही पुरुषके प्रति ज्ञान और कर्म या दोनोंका उपयोग संभव होइ सकै है यातैं ज्ञान और कर्म या दोनोंके अधिकारके भेद हुए भी उपदेशकी व्यर्थता होवै नहीं इति । इसी अर्थके जना-वणेवासतै श्रीभगवान् इस तृतीय अध्यायविषे अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं ता चित्तकी शुद्धिपर्यंत निष्कामकर्मोंके अनुष्ठानकी कर्त्तव्यता (न कर्मणामनारंभात्) इसतैं आदिलैके (मोघं पार्थ स जीवति) इस वचनपर्यंत त्रयोदश श्लोकोंकरिकै कथन करैगा । और जिन पुरुषोंका चित्त शुद्ध हुआ है ऐसे ज्ञानवान् पुरुषोंकूं तौ ते कर्म किंचित्मात्र भी अपेक्षित नहीं हैं या अर्थकूं (यस्त्वात्मरतिः) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै कथन करैंगे । और तिसतैं अनंतर (तस्मादसक्तः) इत्यादिक वचनोंकरिकै तौ बंधके हेतुरूप कर्मोंकूंभी फलकी इच्छातैं राहित्यरूप कौशल्यता-करिकै अंतःकरणकी शुद्धि तथा ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षकी ही कारणता संभवै है यह अर्थ कथन करैंगे । तिसतैं अनंतर (अथ केन प्रयुक्तोयम्) या अर्जु-नके प्रश्नका उत्थापन करिकै कामदोषकरिकैही काम्य कर्मोंकूं अंतःकरणके शुद्धिकी कारणता नहीं है यातैं ता कामतैं रहित होइकै कर्मोंकूं करता हुआ तूं अर्जुन अंतः-करणकी शुद्धिकरिकै ज्ञानका अधिकारी होवैगा । यह अर्थ श्रीभगवान् इस तृतीय अध्यायकी समाप्तिपर्यंत कथन करैगा ॥ ३ ॥

तहां जैसे मृत्तिका, दंड, चक्र और कुलाल आदिक कारणोंके अभाव हुए घट-रूप कार्यकी उत्पत्तिही होवै नहीं । तैसे निष्काम कर्मरूप कारणके अभाव हुए ज्ञान-रूप कार्यकी उत्पत्तिही होवै नहीं या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं—

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) न । कर्मणाम् । अनारंभात् । नैष्कर्म्यम् । पुरुषः । अश्नुते । न । च । संन्यसनात् । एव । सिद्धिम् । समधिगच्छति ॥४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष निष्काम कर्मोंके न करणेतैं निष्कर्मभावकूं नहीं प्राप्त होवै है तथा संन्यासतैं भी ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ ४ ॥

भा॰ टी॰–"तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन " या श्रुतिनैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै कथन करे जो अपणे अपणे वर्ण आश्रमके अनुसार वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप इत्यादिक कर्म हैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं जो पुरुष निष्काम होइकै करै है तिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध होवै नहीं । और अंतःकरणकी शुद्धितैं विना यह पुरुष आत्मज्ञानकी प्राप्तिके योग्य होवै नहीं यातैं निष्काम कर्मोंके नहीं करणेतैं सो अशुद्धचित्तवाला पुरुष सर्व कर्मोंतैं रहिततारूप नैष्कर्म्यकूं प्राप्त होवै नहीं । क्या ज्ञानरूप योग करिकै ता निष्ठाकूं प्राप्त होवै नहीं इति । शंका–हे भगवन् ! श्रुतिविषे सर्व कर्मोंके संन्यासतैंही ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्ति कथन करी है तथा तिन कर्मोंकरिकै ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तिका निषेध भी कथन करा है । तहां श्रुति । " एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति इति न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः " । अर्थ यह–संन्यासियोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो अद्वितीयब्रह्मरूप लोक है ता ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छा करते हुए यह अधिकारी पुरुष संन्यासकूं ग्रहण करै है इति । और पूर्व कोईक विद्वान् पुरुष ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं अग्निहोत्रादिक कर्मोंकरिकै तथा पुत्रादिक प्रजाकरिकै तथा सुवर्णादिक धनकरिकै नहीं प्राप्त होते भए हैं किंतु एक त्यागकरिकैही ता मोक्षरूप अमृतकूं प्राप्त होते भए हैं इति । यातैं सर्व कर्मोंके संन्यासतैंही सा ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होइ सकै है । ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै कर्मोंकूं करणा व्यर्थ है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (न च संन्यसनात् इति) हे अर्जुन ! निष्काम कर्मोंके अनुष्ठान करिकै अंतःकरणकी शुद्धि करेतैं विनाही किया हुआ जो संन्यास है ता संन्यासतैं सो अशुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारी ज्ञाननिष्ठारूप सिद्धिकूं प्राप्त होवै नहीं । तात्पर्य यह । निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानकरिकै जन्य जो चित्तकी शुद्धि है ता

चित्तशुद्धितैं विना प्रथम संन्यासही नहीं संभवै है। काहेतैं "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्" अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष जिस दिनविषे सर्व विषयसुखोंतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै तिसी दिनविषे संन्यासकूं ग्रहण करै इति। या श्रुतिनैं वैराग्यवान् पुरुषकूंही संन्यासका अधिकारी कह्या है। सो वैराग्य अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं होवै नहीं। और सो अशुद्धचित्तवाला पुरुष जो कदाचित् 'दंडग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्'। अर्थ यह। दंडादिक चिह्नोंके ग्रहणमात्रकरिकै यह पुरुष नारायणरूप होवै है इत्यादिक प्ररोचक वचनोंकूं श्रवण करिकै औत्सुक्यमात्रकरिकै संन्यासकूं ग्रहण भी करै है। तौभी ता अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सो संन्यास ज्ञाननिष्ठारूप फलकी प्राप्ति करै नहीं। उलटा प्रत्यवायकीही प्राप्ति करै है। इहां कार्यके अधिकारका तथा फलका न विचार करिकै ता कार्यविषे प्रवृत्त करणेहारा जो आह्लादविशेष है ताका नाम औत्सुक्य है तिस औत्सुक्यकूं कुतूहल कहैं हैं। और पूर्व सर्व कर्मोंके त्यागरूप संन्यासकरिकै मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारे जो श्रुतिवचन कहे थे ते श्रुतिवचन शुद्धचित्तवाले पुरुषपरि हैं अशुद्धचित्तवाले पुरुषपरि हैं नहीं ॥ ४ ॥

तहां निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानकरिकै जिस पुरुषका चित्त शुद्ध नहीं भया है सो पुरुष सर्वदा बहिर्मुखही रहै है या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैं हैं—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) न। हि। कश्चित्। क्षणम्। अपि। जातु। तिष्ठति। अकर्मकृत्। कार्यते। हि। अवशः। कर्म। सर्वः। प्रकृतिजैः। गुणैः॥ ५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं कोईभी अज्ञानी पुरुष कदाचित् क्षणमात्र भी कर्मोंकूं नहीं करता हुआ नहीं स्थित होवै है जिस कारणतैं प्रकृतिजन्य सत्त्वादिक गुणों नैं अस्वतंत्र सर्व अज्ञानी जनोंके प्रति लौकिक वैदिक कर्म कराइते हैं ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस पुरुषनैं मनसहित इन्द्रियोंकूं अपणे वश नहीं करा है ऐसा अजित इंद्रिय कोई भी पुरुष जिस कारणतैं कदाचित् एक क्षणमात्र कालपर्यंतभी खानपानादिक लौकिक कर्मोंकूं तथा अग्निहोत्रादिक वैदिक

कर्मोंकूं नहीं करता हुआ स्थित होवै नहीं किंतु ऐसा अजित इन्द्रिय पुरुष तिन लौकिक वैदिक कर्मोंकूं करता हुआही स्थित होवै है तिस कारणतैं ता अशुचित्तवाले पुरुषकूं सर्व कर्मोंका संन्यास करणा संभवता नहीं इति। हे भगवन्! सो अशुद्धचित्तवाला अविद्वान् पुरुष तिन लौकिक वैदिक कर्मोंकूं नहीं करता हुआ नहीं स्थित होवै है किंतु तिन कर्मोंकूं करता हुआही स्थितहोवै है। याकेविषे क्या कारण है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कार्यते हि इति) हे अर्जुन! मूलप्रकृतितैं उत्पन्न भये जो सत्व, रज, तम यह तीन गुण हैं। अथवा प्रकृति नाम स्वभावका है ता स्वभावरूप प्रकृतितैं उत्पन्न भये जो रागद्वेषादिक गुण हैं तिन प्रकृतिजन्य गुणोंनैं जिस कारणतैं चित्तशुद्धितैं रहित अस्वतंत्र सर्व प्राणियोंके प्रति ते लौकिक वैदिक सर्व कर्म कराइते हैं। अथवा कायिक वाचिक मानसिक यह सर्व कर्म कराइते हैं। तिस कारणतैं अशुद्धचित्तवाला कोईभी अविद्वान् पुरुष तिन कर्मोंकूं नहीं करता हुआ स्थित होवै नहीं किंतु तिन प्रकृतिजन्य गुणोंकरिकै चलायमान करा हुआ यह पराधीन अज्ञानी पुरुष सर्व कालविषे तिन कर्मोंकूं करता हुआही स्थित होवै है। ऐसे अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सर्व कर्मोंका संन्यास करणा संभवता नहीं। जभी ता अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सो संन्यासही नहीं संभवै है। तभी ता अशुद्धचित्तावाले पुरुषकूं ता संन्यासजन्यज्ञाननिष्ठा नहीं संभवै है याकेविषे क्या कहणा है ॥ ५ ॥

किंवा जिस पुरुषनैं निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानतैं अपणे चित्तकूं शुद्ध नहीं करा है किंतु औत्सुक्यमात्रकरिकै प्रथम संन्यासकूंही ग्रहण करा है ऐसा अशुद्ध चित्तवाला पुरुष ता संन्यासके फलकूं प्राप्त होवै नहीं या अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै है—

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरान् ॥
इंद्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) कर्मेंद्रियाणि। संयम्य। यः। आस्ते। मनसा। स्मरन्। इंद्रियार्थान्। विमूढात्मा। मिथ्याचारः। सः। उच्यते ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो मूढात्मा पुरुष वागादिक कर्मइंद्रियोंकूं निग्रह करिकै शब्दादिक विषयोंकूं मन करिकै स्मरण करता हुआ स्थित होवै है सो पुरुष मिथ्या आचारवाला कह्या जावै है ॥ ६ ॥

भा० टी०–रागद्वेषकरिकै दूषित है अंतःकरण जिसका ऐसा अशुद्ध अंतः-करणवाला जो पुरुष केवल औत्सुक्यमात्रकरिकै वाक् पाणि पाद आदिक कर्म इंद्रियोंका निरोध करिकै क्या बाह्यइन्द्रियोंकरिकै तिन कर्मोंकूं नहीं करता हुआ रागद्वेषकरिकै प्रेरित मनकरिकै शब्दस्पर्शादिक विषयोंकूं स्मरण करता हुआ स्थित होवै है। आत्मतत्त्वकूं स्मरण करता हुआ स्थित होता नहीं। क्या हमनैं सर्व कर्मोंका संन्यास करा है या प्रकारके अभिमान करिकै जो पुरुष सर्व कर्मोंतैं रहित हुआ स्थित होवै है सो पुरुष मिथ्या आचारवाला कह्या जावै है। तात्पर्य यह। तिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ नहीं यातैं ज्ञाननिष्ठारूप फलकी प्राप्तिके अयोग्य हुआ सो पुरुष पाप आचरणवाला कह्या जावै है इति। यह वार्त्ता धर्मशास्त्रविषेभी कही है। तहां श्लोक "त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्वकर्मणाम्। श्रुत्येहविहितो यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत्"। अर्थ यह–जिस कारणतैं इस अधिकारी लोकविषे श्रुतिभगवतीनैं त्वंपदार्थ आत्माके विचार करणेवासतैंही सर्व कर्मोंका संन्यास विधान करा है तिस कारणतैं जो अशुद्ध चित्तवाला पुरुष औत्सुक्यमात्रतैं ता संन्यासकूं ग्रहण करिकै त्वंपदार्थ आत्माका विचार करता नहीं सो बहिर्मुख संन्यासी पतित होवै है इति। यातैं अशुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष ता संन्यासतैं ज्ञाननिष्ठारूप सिद्धिकूं प्राप्त होवै नहीं यह जो वार्त्ता श्रीभगवान्नैं कथन करी है सो यथार्थ है ॥ ६ ॥

तहां चित्तशुद्धितैं विना केवल औत्सुक्यमात्रकरिकै जो सर्व कर्मोंका संन्यास है ता संन्यासकूं न करिकै यह अधिकारी पुरुष अपणे चित्तकी शुद्धिवासतैं शास्त्रविहित निष्काम कर्मोंकूंही करै। या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै हैं–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) यः। तु। इंद्रियाणि। मनसा। नियम्य। आरभते। अर्जुन। कर्मेंद्रियैः। कर्मयोगम्। असक्तः। सः। विशिष्यते ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मनसहित श्रोत्रादिक ज्ञानइंद्रियोंकूं रोकिकरिकै फलइच्छातैं रहित हुआ वागादिक कर्मइंद्रियोंकरिकै निष्काम कर्मोंकूं करै है सो पुरुष अशुद्धचित्तवाले संन्यासीतैं अत्यंत श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण या पंच ज्ञानइंद्रियोंकूं मनसहित रोकिकरिकै क्या पापके उत्पत्तिका हेतु जो शब्दादिक विषयोंकी आसक्ति है ता विषयासक्तितैं तिन श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकूं निवृत्त करिकै अथवा विवेकयुक्त मनकरिकै तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं रोकिकारिकै वाक्, पाणि आदिक कर्मइन्द्रियोंकारिकै शास्त्रविहित कर्मोंकूं करै है परन्तु ता कर्मों-के फलकी इच्छा करता नहीं सो निष्काम कर्मोंके करणेहारा अधिकारी पुरुष पूर्व उक्त अशुद्ध अंतःकरणवाले मिथ्याचार संन्यासी तैं बहुत श्रेष्ठ है । इसी विलक्षण-ताके जनावणेवासतै श्रीभगवाननैं मूलश्लोकविषे (यस्तु) यह तु शब्द कथन करा है । तात्पर्य यह । हे अर्जुन ! या महान् आश्चर्यकूं तूं देख । तिन दोनों पुरुषोंकूं यद्यपि परिश्रम तौ तुल्यही होवै है तथापि एक पुरुष तौ वागादिक कर्म इंद्रियोंकूं रोकिकरिकै मनसहित श्रोत्रादिक ज्ञानइन्द्रियोंकूं विषयोंविषें प्रवृत्त करता हुआ परम पुरुषार्थरूप फलतैं रहित होवै है । और दूसरा पुरुष तौ मनसहित श्रोत्रा-दिक ज्ञानइन्द्रियोंकूं शब्दादिक षिषयोंतैं निवृत्तिकरिकै वागादिककर्मइंद्रियोंकारिकै कर्मोंकूं करता हुआभी परम पुरुषार्थकूं प्राप्त होवै है यातैं चित्तशुद्धितैं रहित संन्या-सीतैं सो निष्काम कर्मोंके करणेहारा पुरुष बहुत श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

जिस कारणतैं अशुद्ध अंतःकरणवाले संन्यासीतैं निष्काम कर्मोंके करणेहारा पुरुष बहुत श्रेष्ठ है । तिस कारणतैं तूं मनसहित ज्ञानइन्द्रियोंकूं रोकिकरिकै वागादिक कर्मइन्द्रियोंकारिकै नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं कर । या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै हैं–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) नियतम् । कुरु । कर्म । त्वम् । कर्म । ज्यायः । हि । अकर्म-णः । शरीरयात्रा । अपि । च । ते । न । प्रसिद्ध्येत् । अकर्मणः ॥८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही कर जिस कारणतैं कर्मोंके न करणेतैं कर्मही श्रेष्ठ है तथा कर्मोंतैं रहित तुम्हारे शरीरकी यात्रा भी नहीं सिद्ध होवैगी ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे कर्मोंके अनुष्ठानतैं रहित जो तूं है सो तूं स्वर्गादिक फलोंकी इच्छातैं रहित होइकै श्रुतिकरिकै प्रतिपादित तथा स्मृतिकरिकै प्रतिपादित संध्या उपासनादिक नित्यकर्मोंकूं तथा ग्रहण श्राद्धादिक नैमित्तिक कर्मोंकूंही कर । शंका—हे भगवन् ! अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं किस कारणतैं कर्मही करणेकूं योग्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः इति) जिस कारणतैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंका कारणही अत्यंत श्रेष्ठ है तिस कारणतैं अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं फलकी इच्छातैं रहित होइकै ते नित्यनैमित्तिक कर्मही अवश्यकरिकै करणे । यद्यपि " संन्यास एवात्यरेचयत् " या श्रुतिनैं धर्मादिक सर्व साधनोंतैं संन्यासकूंही श्रेष्ठरूपकरिकै कथन करा है यातैं संन्यासतैं कर्मोंविषे श्रेष्ठता कथन करणी संभवै नहीं तथापि जीवन्मुक्तिके सुखवासतै ब्रह्मवेत्ता पुरुषनैं करा जो विद्वत्संन्यास है । तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै शुद्धचित्तवाले मुमुक्षु जननैं करा जो विविदिषा संन्यास है ता दोनों प्रकारके संन्यासविषेही सा श्रुति धर्मादिक सर्व साधनोंतैं श्रेष्ठता कथन करै है । और इहां प्रसंगविषे जो संन्यासतैं कर्मोंविषे श्रेष्ठता कथन करी है सो अशुद्धचित्तवाले पुरुषनैं केवल औत्सुक्यमात्रकारिकै करा जो संन्यास है ता संन्यासतैं निष्काम कर्मोंविषे श्रेष्ठता कथन करी है कोई संन्यासकी निंदाविषे भगवान्का तात्पर्य नहीं है । तहां धर्म, सत्य, तप, दम, शम, दान,प्रजनन, आहिताग्नि, अग्निहोत्र यज्ञ और मानस या एकादश साधनोंतैं संन्यासकी अधिकता आत्मपुराणके दशम अध्यायके अंतविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति । किंवा । हे अर्जुन ! तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेकरिकै केवल तुम्हारे अंतःकरणके शुद्धिका अभावही नहीं होवैगा किंतु युद्धादिक कर्मोंके नहीं करणेतैं तुम्हारे शरीरके खानपानादिक व्यवहारभी नहीं सिद्ध होवैंगे । इहां भगवान्का यह अभिप्राय है । तूं अर्जुन क्षत्रिय है यातैं संन्यास आश्रमकूं धारण करिकै भिक्षावृत्तितैं शरीरके निर्वाह करणेविषे तुम्हारा अधिकार है नहीं काहेतैं श्रुतिस्मृतियोंविषे ब्राह्मणकूंही संन्यास करणेका अधिकार कथन करा है । तहां श्रुति । "ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति" इति । अर्थ यह—पुत्रएषणाका तथा वित्तएषणाका तथा लोक-

एषणाका परित्याग करिकै वैराग्यवान् ब्राह्मण संन्यासपूर्वक भिक्षावृत्तिकूं करैं हैं इति। तहां स्मृति। " चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य त्रयो राजन्यस्य द्वौ वैश्यस्य इति "। अर्थ यह—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह चारि आश्रम ब्राह्मणके होवैं हैं। और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ यह तीन आश्रम क्षत्रियके होवैं हैं और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ यह दो आश्रम वैश्यके होवैं हैं। तहां अन्य स्मृति। " मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिंगधारणम्। बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते "। अर्थ यह—परमेश्वरके मुखतैं उत्पन्न भये जो ब्राह्मण हैं तिन ब्राह्मणोंकाही यह दंडादिकचिह्नधारणपूर्वक संन्यास धर्म है। परमेश्वरके बाहुतैं उत्पन्न भये जो क्षत्रिय हैं। तथा परमेश्वरके ऊरुस्थलतैं उत्पन्न भये जो वैश्य हैं तिन क्षत्रिय वैश्योंकूं यह लिंगसंन्यास विधान नहीं करा है इति। इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचनोंविषे ब्राह्मणकूंही संन्यास आश्रमका अधिकार कथन करा है क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका अधिकार कथन करा नहीं या प्रकारके अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति युद्धादिक कर्मोंतैं विना तुम्हारे शरीरके खानपानादिक व्यवहारभी सिद्ध नहीं होवैंगे या प्रकारका वचन कथन करा है॥ ८॥

हे भगवन्! " कर्मणा बध्यते जंतुर्विद्यया च विमुच्यते "। अर्थ यह—यह जीव कर्मोंकरिकै तौ संसारविषे बंधायमान होवै है। और विद्याकरिकै ता संसारतैं मुक्त होवै है इति। या स्मृति वचनकरिकै तिन सर्व कर्मोंविषे बंधकी हेतुताही सिद्ध होवै है यातैं मुमुक्षु जननैं ते बंधके हेतुभूत कर्म करणेकूं योग्य नहीं हैं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति काम्यकर्मोंकूंही बंधकी हेतुता है ईश्वर अर्पण बुद्धिकरिकै करे हुए कर्मोंकूं बंधकी हेतुता नहीं है या प्रकारका उत्तर कथन करैं हैं—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः॥
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर॥ ९॥

(पदच्छेदः) यज्ञार्थात्। कर्मणः। अन्यत्र। लोकः। अयम्। कर्मबंधनः। तदर्थम्। कर्म। कौंतेय। मुक्तसंगः। समाचर॥ ९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! यह लोक परमेश्वरके आराधनअर्थ कर्मतैं अन्य कर्मविषेही कर्मकरिकै बंधायमान होवै है यातैं तूं फलकी इच्छातैं रहित होइकै ता परमेश्वर आराधन अर्थ कर्मकूं भली प्रकार कर॥ ९॥

भा॰ टी॰– "यज्ञो वै विष्णुः" । अर्थ यह–विष्णुभगवान् यज्ञरूप हैं । या श्रुतितैं यज्ञ नाम परमेश्वरका वाचक सिद्ध होवैहै ता परमेश्वरके आराधन वासतै जो नित्यनैमित्तिक कर्म करते हैं तिन कर्मोंका नाम यज्ञार्थ कर्म है । ऐसे निष्काम कर्मोंतैं भिन्न जो स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्तिवासतै काम्य कर्म हैं तिन काम्य कर्मोंविषे प्रवृत्त हुए यह कर्मोंके अधिकारी जनही तिन काम्य कर्मों-करिकै बंधायमान होवैं हैं । और परमेश्वरके आराधन अर्थ करे जो कर्म हैं तिन निष्काम कर्मोंकरिकै यह अधिकारी जन बंधायमान होवै नहीं यातैं "कर्मणा बध्यते जंतुः" यह पूर्व उक्त स्मृतिभी केवल काम्यकर्मोंविषेही बंधनकी हेतुता कथन करै है निष्काम कर्मोंविषे बंधनकी हेतुता कथन करै नहीं यातैं हे अर्जुन! तूं स्वर्गादिक फलोंकी इच्छातैं रहित होइकै केवल परमेश्वरके आराधन अर्थ श्रद्धाभक्तिपूर्वक तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं कर ॥ ९ ॥

किंवा भगवान् प्रजापतिके वचनतैंभी या अधिकारी पुरुषनैं ते कर्मही करणेकूं योग्य हैं या अर्थकूं श्रीभगवान् चारि श्लोकोंकरिकै अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) सहयज्ञाः । प्रजाः । सृष्ट्वा । पुरा । उवाच । प्रजापतिः । अनेन । प्रसविष्यध्वम् । एषः । वः । अस्तु । इष्टकामधुक् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कल्पके आदिविषे प्रजापति यज्ञके अधिकारी प्रजाकूं उत्पन्न करिकै यह वचन कहता भया है प्रजा इस यज्ञकरिकै तुम वृद्धिकूं प्राप्त होवो जिस कारणतैं यह यज्ञही तुम्हारेकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करणे-हारा होवो ॥ १० ॥

भा॰ टी॰–श्रुतिस्मृतियोंकरिकै विधान करे जो स्ववर्णआश्रमके यज्ञादिरूप कर्म हैं तिन कर्मोंकेसहित जे वर्त्तमान होवैं तिन्होंका नाम सहयज्ञ है अर्थात कर्मोंके अधिकारियोंका नाम सहयज्ञ है ऐसे यज्ञादिरूप कर्मोंके अधिकारी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या त्रैवर्णिक प्रजाकूं सृष्टिके आदिकालविषे रचिकारिकै परम कृपालु भगवान् प्रजापति ता त्रैवर्णिक प्रजाके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । हे प्रजा ! अपणे अपणे वर्ण आश्रमकरिकै उचित जो यह यज्ञादिरूप धर्म है ता यज्ञादिरूप धर्मकरिकै तुम उत्तरउत्तरकालविषे वृद्धिकूं प्राप्त होवो ।

शंका–इस यज्ञादिरूप धर्मकरिकै किस प्रकार वृद्धि होवै है ऐसी शंकाके हुए प्रजापति कहैं हैं (एष वोस्त्विष्टकामधुक् इति) हे प्रजा ! यह यज्ञादिरूप धर्मही तुम अधिकारी जनोंकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करणेहारा होवो इति। शंका–(सहयज्ञाः) या वचनविषे करा जो यज्ञका ग्रहण है सो यज्ञका ग्रहण अवश्य करणे योग्य नित्यनैमित्तिक कर्मोंकाही उपलक्षक है काम्यकर्मोंका उपलक्षक है नहीं काहेतैं तिन कर्मोंके नहीं करणेतैं प्रत्यवायकी प्राप्ति आगे कथन करणी है। सा प्रत्यवायकी प्राप्ति नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतैंही होवै है काम्य कर्मोंके नहीं करणेतैं कोई प्रत्यवायकी प्राप्ति होवै नहीं किंवा इस गीताशास्त्रविषे तिन काम्यकर्मोंके कहणेका कोई प्रसंगभी है नहीं उलटा (मा कर्मफलहेतुर्भूः) इस वचनकरिकै तिन काम्य कर्मोंका निषेधही करा है यातैं निष्काम कर्मोंके प्रसंगविषे यह यज्ञादिरूप धर्म तुम्हारेकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करैगा यह फलका कथन असंगत है। समाधान–काम्य कर्मोंकी न्याईं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकाभी सो आनुषंगिक फल संभव होइ सकै है या वार्त्ता आपस्तंब ऋषिनैंभी कथन करी है। "तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छायागंधे इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यंते नोचेदनूत्पद्यंते न धर्महानिर्भवतीति"। अर्थ यह–जैसे किसी पुरुषनैं फलोंकी प्राप्तिवासतै लगाया हुआ जो आम्रका वृक्ष है ता आम्रवृक्षके छाया सुगंध यह दोनों आनुषंगिक फल ता लगावणेहारे पुरुषकूं अवश्य प्राप्त होवैं हैं तैसे या अधिकारी पुरुषनैं स्वधर्म जानिकरिकै करे जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंतैं अनंतर ता कर्मकर्त्ता पुरुषकूं मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्तिरूप आनुषंगिक फल अवश्य होवै है जो कदाचित् ता कर्मकर्त्ता पुरुषकूं सो आनुषंगिक फल नहींभी प्राप्त होवै तौभी ता नित्यनैमित्तिकरूप धर्मकी हानि होवै नहीं जिस कारणतैं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षरूप परम फल ता पुरुषकूं अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है इति। शंका–काम्यकर्मोंकी न्याईं जो कदाचित् नित्यकर्मोंकाभी फल अंगीकार करोगे तौ काम्यकर्मोंतैं नित्यकर्मोंविषे विलक्षणता सिद्ध नहीं होवैगी। समाधान–काम्यकर्म तथा नित्यकर्म या दोनोंविषे फलकी कारणताके समान हुएभी फलकी इच्छाकरिकै करे हुए कर्मकूं काम्यकर्म कहैं हैं। और फलकी इच्छातैं रहित होइकै करे हुए कर्मकूं नित्यकर्म कहैं हैं या रीतिसैं तिन काम्यकर्मोंतैं नित्यकर्मोंविषे विलक्षणता

संभवै है और अनिच्छित फलकीभी वस्तुके स्वभावतैंही उत्पत्ति अंगीकार किये हुए तिन दोनोंविषे विशेषता संभवै नहीं इस वार्त्ताकूं आगे विस्तारकरिकै निरूपण करैंगे यातैं यह यज्ञादिरूप धर्म तुम्हारेकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करणेहारा होवो यह वचन असंगत नहीं है किंतु यथार्थ है । तहां स्मृति । "संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः । विधूतपापास्ते यांति ब्रह्मलोकमनामयम्" । अर्थ यह–जे पुरुष निरंतर श्रद्धाभक्तिपूर्वक संध्याकूं उपासना करैं हैं ते पुरुष सर्वपापोंतैं रहित होइकै रोगादिक विकारोंतैं रहित ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवैं हैं इति । इत्यादिक अनेक वचनोंकारिकैं संध्याउपासनादिक नित्यकर्मोंका ब्रह्मलोकादिकोंकी प्राप्तिरूप आनुषंगिक फल कथन करा है ॥ १० ॥

हे भगवन् ! यज्ञादिरूप धर्मकूं मनवांछित फलोंके प्राप्तिकी हेतुता किस प्रकार है ऐसी शंकाके हुए सो प्रजापति ता प्रकारकूं निरूपण करैं हैं–

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) देवान् । भावयत । अनेन । ते । देवाः । भावयंतु । वः । परस्परम् । भावयंतः । श्रेयः । परम् । अवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे प्रजा ! तुम अधिकारी इस यज्ञादिरूप धर्मकरिकै इंद्रादिक देवतावोंकूं संतुष्ट करो तिसतैं अनंतर ते इंद्रादिक देवता तुम्हारेकूं संतुष्ट करैं इस प्रकार परस्पर संतुष्ट करते हुए तुम दोनों परम श्रेयकूं प्राप्त होवोगे ॥ ११ ॥

भा० टी०–हे प्रजा ! तुम सर्व यजमान इस यज्ञादिरूप धर्मकरिकै इंद्रादिक देवताओंकूं संतुष्ट करो। और ता यज्ञविषे हविर्भागोंकरिकै तुम्होनैं संतुष्ट करे हुए जो इन्द्रादिक देवता हैं ते इंद्रादिक देवता जलकी वृष्टि आदिकोंतैं अन्नकी उत्पत्तिद्वारा तुम यजमानोंकूं संतुष्ट करैं । इस प्रकार परस्पर संतुष्ट करते हुए तुम प्रजा तथा इंद्रादिक देवता दोनोंही मनवांछित अर्थरूप परम श्रेयकूं प्राप्त होवोगे तहां तुम्हारेकूं संतुष्ट करणेतैं इंद्रादिक देवता तौ तृप्तिरूप परमश्रेयकूं प्राप्त होवैंगे । और इन्द्रादिक देवतावोंकूं संतुष्ट करणेतैं तुम प्रजा स्वर्गरूप परमश्रेयकूं प्राप्त होवोगे॥ ११॥

किंवा ता यज्ञादिकरूप धर्म करिकै तुम्हारेकूं केवल परलोकविषे स्थित स्वर्गादिरूप फलकीही प्राप्ति नहीं होवैगी किंतु इस लोकविषे स्थित अन्न, सुवर्ण पशु आदिक फलकीभी प्राप्ति होवैगी या अर्थकूं प्रजापति कथन करैं हैं–

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) इष्टान् । भोगान् । हि । वः । देवाः । दास्यंते । यज्ञभाविताः । तैः । दत्तान् । अप्रदाय । एभ्यः । यः । भुंक्ते । स्तेनः । एव । सः ॥ १२ ॥

(पदार्थः) जिस कारणतैं यज्ञकारिकै संतुष्ट हुए यह देवता तुम्हारे ताईं मनवांछित भोगोंकूं देवैंगे तिस कारणतैं तिन देवतावोंनैं दिये हुए भोगोंकूं इन देवतावोंके ताईं न देकारिकै जो पुरुष भोगै है सो पुरुष चौर ही है ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे प्रजा ! इस प्रकार श्रौत स्मार्त यज्ञरूप धर्मकारिकै संतुष्ट हुए जो इंद्रादिक देवता हैं ते इंद्रादिक देवता तुम कर्मकर्त्ता यजमानोंके ताईं अन्न, पशु, सुवर्ण इत्यादिक मनवांछित भोगोंकूं देवैंगे। और जैसे कोई पुरुष किसी अन्य पुरुषके प्रति ऋण देवै है तैसे तिन इंद्रादिक देवतावोंनैं तुम्हारे ताईं दिये जो अन्नादिक भोग हैं तिन भोगोंकूं तिन इंद्रादिक देवतावोंके ताईं न देकारिकै अर्थात इन्द्रादिक देवतावोंके उद्देशकारिकै ब्रीहियवादिक पदार्थोंका त्यागरूप जो वैश्वदेव, अग्निहोत्र, जातेष्टि इत्यादि नित्यनैमित्तिक याग हैं तिन्होंकूं न करिकै जो पुरुष केवल अपणे देहइन्द्रियादिकोंकी पुष्टि करणेवासतै तिन अन्नादिक पदार्थोंकूं भोगै है सो पुरुष तिन देवतावोंका चौरही है तथा कृतघ्न है काहेतैं तिस पुरुषनैं देवतावोंके अन्नादिक पदार्थोंकूं तौ हरण करा है और यज्ञादिकोंकरिकै तिन देवतावोंके ऋणकी निवृत्ति करी नहीं ॥ १२ ॥

किंवा तिन यज्ञादिक कर्मोंके न करणेतैं या अधिकारी पुरुषकूं केवल चौरभावकी तथा कृतघ्नताकी प्राप्ति होवै नहीं किंतु तिन यज्ञादिक कर्मोंके नहीं करणेतैं या अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यवायकीभी प्राप्ति होवै है या अर्थकूं अन्वयव्यतिरेक करिकै निरूपण करै हैं–

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात्॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) यज्ञशिष्टाशिनः । संतः । मुच्यंते । सर्वकिल्बिषैः । भुंजते । ते । तु । अघम् । पापाः । ये । पचंति । आत्मकारणात्॥ १३॥

(पदार्थः) जे पुरुष यज्ञके शेष अन्नकूं भोजन करैं हैं ते शिष्ट पुरुष सर्व पापोंनैं परित्याग करते हैं तथा जे पापात्माँ पुरुष केवल अपणे वासतैही अन्नकूं पकावैं हैं ते पुरुष पापकूंही भोजन करैं हैं ॥ १३ ॥

भा॰ टी॰—जे अधिकारी पुरुष ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ या पंच यज्ञोंकूं करिकै परिशेषतैं रहे हुए अमृतरूप अन्नकूं भोजन करैं हैं ते पुरुषही शिष्ट कहे जावैं हैं काहेतैं श्रद्धाभक्तिपूर्वक वेदविहित कर्मोंके करणेहारे पुरुषकूंही शास्त्रविषे शिष्ट कह्या है ऐसे शिष्ट पुरुष सर्व पापोंनैं परित्याग करते हैं । तात्पर्य यह–प्रमादकरिकै करे हुए जो पाप हैं तथा पंचसूनारूप निमित्ततैं उत्पन्न हुए जो पाप हैं तथा विहित कर्मोंके न करणेकरिकै प्राप्त भये जो पाप हैं तिन सर्व पापोंतैं ते पुरुष रहित होवैं हैं इति । इतनैं कहणे करिकै तिन यज्ञादिकोंके करणेहारे पुरुषकूं पापकी प्राप्तिका अभाव कथन करा । अब तिन यज्ञादिक कर्मोंके नहीं करणेहारे पुरुषकूं प्रत्यवायकी प्राप्तिका कथन करैं हैं (भुंजते ते तु इति) तिन पंचमहायज्ञोंकूं नहीं करते हुए जे पापात्मा पुरुष केवल अपणे उदरके भरण करणे वासतैही अन्नकूं पकावैं हैं देवता अतिथि आदिकोंके वासतै अन्नकूं पकावते नहीं ते पुरुष केवल पापकूं ही भोजन करैं हैं अन्नकूं भोजन करते नहीं । यद्यपि तिन पापात्मा पुरुषोंकी दृष्टिकरिकै तौ सो अन्न है तथापि शास्त्रकी दृष्टिकरिकै तथा देवतावोंकी दृष्टिकरिकै सो अन्न पापरूपही है इति । इहां (पापाः अघं भुंजते) या वचनकरिकै यह अर्थ बोधनकरा जे पुरुष तिन पंचयज्ञोंकूं न करिकै केवल अपणे उदरके भरण करणेवासतैही अन्नकूं पकावैं हैं ते पुरुष पूर्वही पंचसूनाकृत पापवाले तथा प्रमादकृत हिंसाजन्य पापवाले हुएभी पुनः वैश्वदेवादिक नित्यकर्मोंके नहीं करणेजन्य दूसरे पापकूं प्राप्त होवैं हैं इति । तहां स्मृति । "कंडनी पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी । पंचसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विंदति । पंचसूनाकृतं पापं पंचयज्ञैर्व्यपोहति" । अर्थ यह–गृहस्थ पुरुषोंके गृहविषे जीवोंकी हिंसा होणेके पंचस्थान होवैं हैं एक तौ ऊखलविषे अन्नके कूटणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है और दूसरा पाषाणकी चक्कीविषे अन्नके पीसणेतैं जीवोंकी हिसा होवै है । और तीसरा अन्नके पकावणेवासतैं चुल्लेविषे अग्निके जगावणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है । और चौथा पात्रोंविषे जलके भरणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है । और पंचमाँ मृत्तिकाजलादिकोंसैं घरके

मार्जन करणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है, ता पंच प्रकारकी जीवहिंसाकरिकै यह गृहस्थ पुरुष स्वर्गकूं प्राप्त होता नहीं। और तिन पंच हिंसास्थानोंतैं उत्पन्न भये जो पाप हैं ते पाप पंचयज्ञोंकरिकै निवृत्त होवैं हैं इति। ते पंचयज्ञ यह हैं—तहां श्लोक। "ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा। नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्"। अर्थ यह—यह ब्राह्मणादिक गृहस्थ पुरुष दिनदिनविषे ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, यह पंच यज्ञ यथाशक्ति करैं इन पंच यज्ञोंका परित्याग कदाचित्भी नहीं करै इति। तहां वेदका पठन पाठन करणा तथा संध्योपासन करणा याका नाम ऋषियज्ञ है। और अग्निहोत्रादिकोंका करणा याका नाम देवयज्ञ है। और बलि, वैश्वदेवकूं करणा याका नाम भूतयज्ञ है। और गृहविषे प्राप्त हुए अतिथिका अन्नादिकों करिकै संतोष करणा याका नाम मनुष्ययज्ञ है। और श्राद्ध तर्पणकूं करणा याका नाम पितृयज्ञ है इति। तिन यज्ञोंके नहीं करणेहारे गृहस्थ पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्ति पाराशरस्मृति-विषेभी कथन करी है। तहां श्लोक। "वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन विवर्जिताः। सर्वे ते नरकं यांति काकयोनिं व्रजंति ते। काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च। अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः"। अर्थ यह—जे ब्राह्मणादिक गृहस्थ वैश्वदेव करणेतैं रहित हैं तथा अतिथिके प्रति भोजन देणेतैं रहित हैं ते पुरुष मरिकरिकै नरककूं प्राप्त होवैं हैं तिसतैं अनंतर काकयोनिकूं प्राप्त होवैं इति। किंवा जिस गृहस्थ पुरुषके गृहतैं अतिथि पुरुष अन्नादिकोंकी प्राप्तितैं विना निराश चल्या जावै है तिस गृहस्थ पुरुषने काष्ठोंके सहस्र भारोंकरिकै तथा घृतके शतकुंभोंकरिकै करा हुआ जो होम है सो होम ता पुरुषकूं किंचित्मात्रभी फलकी प्राप्ति करै नहीं इति। अतिथिका लक्षण पाराशरस्मृतिविषे यह कह्या है। तहां श्लोक। "दूराध्वोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपस्थितम्। अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः॥ चौरो वा यदि चांडालः शत्रुर्वा पितृघातकः वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः सर्वसंगमः॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणे स्वाध्यायं च व्रतानि च। हृदयं कल्पयेत्तस्मिन्सर्वदेवमयो हि सः॥" अर्थ यह—जो पुरुष दूर मार्गतैं चलिके आया होवै तथा थक्या होवै तथा वैश्वदेवके करणेके कालविषे प्राप्त होवै ताकूं अतिथि जानणा। और जो अपने पुरोहितादिक पूर्वही तहां प्राप्त हैं ते पुरोहितादिक अतिथि नहीं कहे जावैं हैं इति। और

वैश्वदेव करणेके कालविषे ब्राह्मणादिक गृहस्थ पुरुषोंके गृहविषे जो कोई अन्नार्थी चौर आवै अथवा चांडाल आवै अथवा शत्रु आवै अथवा पिताके हनन करणेहारा आवै सो अन्नार्थी पुरुष अतिथि जानणा तथा सर्व सत्संगादिकोंका कारण जानणा इति । किंवा यह गृहस्थ पुरुष गृहविषे प्राप्त हुए ता अन्नार्थी अतिथिका गोत्र नहीं पूछै तथा वेदकी शाखादिकभी नहीं पूछै तथा ऋग्वेदादिकोंका अध्ययनभी नहीं पूछै । तथा ब्रह्मचर्यादिक व्रतभी नहीं पूछै किंतु सो गृहस्थ पुरुष ता अतिथिविषे यह अतिथि सर्वदेवमय विष्णुरूप है या प्रकारकी भावना करिकै ता अतिथिके प्रति अन्नादिक देवै इति । यातैं जे ब्राह्मणादिक गृहस्थ पुरुष पूर्व उक्त पंचयज्ञोंकूं न करिकै केवल अपणे उदर भरणेवासतैही अन्नकूं पकावै हैं ते पुरुष अन्नरूपकरिकै स्थित पापकूंही भोजन करैं हैं ॥ १३ ॥

किंवा केवल पूर्व उक्त प्रजापतिके वचनमात्रतैंही ते यज्ञादिक कर्म करणेकूं योग्य नहीं हैं किंतु या जगतरूप चक्रकी प्रवृत्तिका हेतु होणेतैंभी ते यज्ञादिक कर्म करणेकूं योग्य हैं या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति तीन श्लोकों करिकै कथन करैं हैं–

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

(पदच्छेदः) अन्नात् । भवंति । भूतानि । पर्जन्यात् । अन्नसंभवः । यज्ञात् । भवति । पर्जन्यः । यज्ञः । कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अन्नतैं शरीर उत्पन्न होवै है और ता अन्नका जन्म जलकी वृष्टितैं होवै है और सा जलकी वृष्टि अपूर्वरूप धर्मतैं उत्पन्न होवै है और सो अपूर्वरूप धर्म कर्मतैं उत्पन्न होवै है ॥ १४ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! भोजनद्वारा पुरुष स्त्रियोंके शरीरविषे प्राप्त होइकै शुक्रशोणितरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त भया जो व्रीहियवादिक अन्न है तिस अन्नतैंही सर्व मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर उत्पन्न होवैं हैं । और ता व्रीहियवादिके अन्नकी उत्पत्ति जलकी वृष्टितैं होवै है । यह वार्त्ता सर्व प्राणियोंकूं प्रत्यक्ष सिद्ध है और कारीरी इष्टि अग्निहोत्र आदिकोंतै उत्पन्न भया जो धर्म है जिस धर्मकूं शास्त्रविषे अपूर्व अदृष्ट या नामकरिकै कथन करैंहैं ।

ता धर्मरूप यज्ञतैं सा जलकी वृष्टि उत्पन्न होवै है। तहां मनुस्मृति। " अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः " अर्थ यह—वैदिक अग्निविषे प्रातःसायंकालमैं श्रद्धाभक्ति पूर्वक पाई हुई जो घृतादिक पदार्थोंकी आहुति है सा आहुति सूक्ष्मरूपकरिकै आदित्यविषे स्थित होवै है ता आहुतिविशिष्ट आदित्यतैं मेघोंद्वारा जलकी वृष्टि उत्पन्न होवै है ता जलकी वृष्टितैं व्रीहियवादिक अन्न उत्पन्न होवैं हैं। और ता अन्नतैं यह मनुष्यादिक शरीर उत्पन्न होवैं हैं इति। और सो धर्मरूप यज्ञ अग्निहोत्र कारीरी इष्टि आदिक कर्मोंतैं उत्पन्न होवै है ॥ १४ ॥

किंच—

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) कर्म। ब्रह्मोद्भवम्। विद्धि। ब्रह्म। अक्षरसमुद्भवम्। तस्मात्। सर्वगतम्। ब्रह्म। नित्यम्। यज्ञे। प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ता अग्निहोत्रादिक कर्मकूं तूं वेदतैं उत्पन्न हुआ जान और ता वेदकूं परमात्मादेवतैं उत्पन्न हुआ जान तिस कारणतैंही सर्व अर्थका प्रकाशक तथा नाशतैं रहित सो वेद ता धर्मरूप यज्ञविषे स्थित है ॥ १५ ॥

भा॰ टी॰—ब्रह्म नाम वेदका है सो वेदरूप ब्रह्म है प्रमाण जिसविषे ताका नाम ब्रह्मोद्भव है तिस अग्निहोत्रादिक कर्मकूं तूं ब्रह्मोद्भव जान। तात्पर्य यह—वेदनैं विधान करा जो अग्निहोत्रादिक कर्म है ता कर्मकूंही तूं अपूर्वरूप धर्मका साधन जान दूसरे पाखंडशास्त्रोंनैं प्रतिपादन करे हुए कर्मोंकूं तुमनैं ता अपूर्वरूप धर्मका साधन जाणना नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! तिन पाखंडशास्त्रोंकी अपेक्षाकरिकै वेदविषे कौन विलक्षणता है जिस विलक्षणताकरिकै वेदप्रतिपादित अर्थही धर्मरूप होवै है। दूसरे पाखंडशास्त्रप्रतिपादित अर्थ धर्मरूप नहीं होवैं हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता वेदविषे दूसरे पाखंडशास्त्रोंतैं विलक्षणता कथन करैं हैं। (ब्रह्माक्षरसमुद्भवं इति) हे अर्जुन ! भ्रम, प्रमाद, करणाऽपाटव, विप्रलिप्सा इत्यादिक सर्व दोषोंतैं रहित जो परमात्मा देव है ता अक्षर परमात्मादेवतैंही पुरुषके निःश्वासोंकी न्याईं विनाही प्रयत्नतैं सो ऋग्,

यजुष्, साम, अथवर्णरूप वेद प्रादुर्भाव हुआ है या कारणतैं भ्रम प्रमाद आदिक दोषोंकी शंकातैं रहित हुए ते अपौरुषेय वेदोंके वचनही धर्मरूप अतींद्रिय अर्थ-विषयक प्रमाकी जनकताकरिकै प्रमाणरूप हैं। भ्रम प्रमाद आदिक दोषोंवाले पुरुषोंकरिकै रचित पाखंडवाक्य ता अतींद्रिय धर्मविषयक प्रमाकूं उत्पन्न करैं नहीं यातैं ते पाखंडशास्त्र ता धर्मविषे प्रमाणरूप हैं नहीं। इहां अन्य पदार्थविषे अन्य बुद्धिका नाम भ्रम है और अवश्य करणेयोग्य अर्थकूंभी नहीं करणा याका नाम प्रमाद है। और नेत्रादिक करणोंविषे वस्तुके यथार्थ ग्रहण करणेकी नहीं शक्ति होणी याका नाम करणाऽपाटव है। अन्य लोकोंके वंचन करणेकी इच्छाका नाम विप्रलिप्सा है इति। तहां अक्षरपरमात्मा देवतैंही वेदोंका प्रादुर्भाव होवै है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कही है। तहां श्रुति। " अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतयदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि इति "। अर्थ यह— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद यह चारि वेद इस महान् परमात्मा देवके निःश्वासरूप हैं ते चारों वेद इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक सूत्र अनुव्याख्यान, व्याख्यान या भेदकरिकै अष्ट प्रकारके हैं इति। इतिहास, पुराण आदिक अष्टोंका अर्थ आत्मपुराणके सप्तम अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। इस प्रकार साक्षात्परमात्मा देवतैंही उत्पन्न होणेतैं सर्व अर्थका प्रकाशक तथा अविनाशी जो वेद है सो वेद अतींद्रिय धर्मरूप यज्ञविषे अपणे तात्पर्यकरिकै स्थित होवै है यातैं पाखंडशास्त्रकरिकै प्रतिपादित निकृष्ट धर्मका परित्याग करिकै या अधिकारी पुरुषनैं वेदप्रतिपादित धर्मही अनुष्ठान करणा ॥ १५ ॥

हे भगवन्! इस प्रकार वेदादिकोंकी उत्पत्ति होवो ता कहणेकरिकै इहां प्रसंगविषे क्या फल सिद्ध होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) एवम्[1]। प्रवर्तितम्[2]। चक्रम्[3]। न[4]। अनुवर्तयति[5]। इह[6]। यः[7]। अघायुः[8]। इंद्रियारामः[9]। मोघम्[10]। पार्थ[11]। सः[12]। जीवति[13] ॥१६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन[१] ! इस[२] लोकविषे जो अधिकारी[३] पुरुष इस[४] प्रकार प्रवृत्त[५] हुए चक्रकूं[६] नहीं[७] अंगीकार[८] करैं हैं सो[९] पाप[१०] जीवन इंद्रियाराम[११] पुरुष व्यर्थही[१२] जीवता[१३] है ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! प्रथम सर्वज्ञ परमेश्वरतैं सर्व अर्थकूं प्रकाश करणेहारे नित्य निर्दोष वेदका प्रादुर्भाव होवै है तिसतैं अनंतर ता वेदोक्त कर्मोंका ज्ञान होवै है। ता कर्मोंके ज्ञानतैं अनंतर तिन कर्मोंके अनुष्ठानतैं अपूर्व रूप धर्मकी उत्पत्ति होवै है। तिस धर्मकी उत्पत्तितैं अनंतर जलकी वृष्टि होवै है तिस जलकी वृष्टितैं व्रीहियवादिक अन्न उत्पन्न होवै हैं ता अन्नतैं मनुष्यादिक भूत उत्पन्न होवैं हैं तिसतैं अनंतर तिन मनुष्यादिकोंकी पुनः कर्मोंविषे प्रवृत्ति होवै है । इस प्रकार सर्व जगत्के निर्वाह करणेवासतै परमेश्वरनैं प्रवृत्त करा जो यह चक्र है तिस चक्रकूं जो अधिकारी पुरुष नहीं अंगीकार करै है सो पुरुष पापरूप जीवनवाला होणेतैं व्यर्थही जीवता है अर्थात् तिस पुरुषके जीवनेतैं मरणही श्रेष्ठ है काहेतैं ता शरीरका परित्याग करिकै दूसरे जन्मविषे ता पुरुषकूंभी कदाचित् धर्मका अनुष्ठान संभव होइ सकै है। तथा इस जन्मविषे वेदविहित कर्मोंके न करणेतैं जो पापका संग्रह होवै है तिसतैंभी रहित होवै है यातैं ता पुरुषके जीवनेतैं मरणही श्रेष्ठ है। शंका—हे भगवन् ! ता पूर्व उक्त चक्रकूं नहीं अंगीकार करणेहारा जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष है तिसकाभी जीवन निष्फल होवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता अज्ञानी पुरुषका विशेषण कहैं हैं (इंद्रियाराम इति) श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंविषे जो पुरुष रमण करै है ताका नाम इंद्रियाराम है ऐसा विषयलंपट पुरुष केवल कर्मोंकाही अधिकारी होवै है तिन कर्मोंका अधिकारी हुआभी जो पुरुष तिन कर्मोंकूं नहीं करै है सो पुरुष तिन विहित कर्मोंके न करणेतैं केवल पापकाही संग्रह करता हुआ व्यर्थही जीवै है। और जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुष इंद्रियाराम है नहीं यातैं तिन कर्मोंके न करणेतैं सो विद्वान् पुरुष प्रत्यवायकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ १६ ॥

किंवा। जो पुरुष इंद्रियाराम नहीं है तथा परमार्थ वस्तुकूं सर्वदा देखणेहारा है सो विद्वान् पुरुष इस जगत्रूप चक्रके हेतुभूत कर्मोंका नहीं अनुष्ठान करता हुआभी प्रत्यवायकूं प्राप्त होवै नहीं जिस कारणतैं सो विद्वान् पुरुष कृतकृत्यभावकूं प्राप्त हुआ है या अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) यः । तु । आत्मरतिः । एव । स्यात् । आत्मतृप्तः । च । मानवः । आत्मनि । एव । च । संतुष्टः । तस्य । कार्यम् । न । विद्यते ॥१७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो मनुष्य आत्माविषे प्रीतिवाला ही होवै है तथा आत्माकारिकैही तृप्त होवै है तथा आत्माविषे ही संतुष्ट होवै है तिस पुरुषकूं किंचित्मात्रभी कार्य नहीं कर्तव्य होवै है ॥ १७ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियाराम होवै है सो विषयलंपट पुरुष स्रक्, चंदन, वनिता आदिक विषयोंकी प्राप्ति करिकैही रतिकूं अनुभव करैहै तथा सो पुरुष मनोहर अन्नपानादिक पदार्थोंकी प्राप्तिकारिकैही तृप्तिकूं अनुभव करै है तथा सो इंद्रियाराम पुरुष सुवर्ण, पुत्र, पशु आदिक पदार्थोंकी प्राप्तिकारिकै तथा रोगादिकोंकी अप्राप्तिकारिकैही तुष्टिकूं अनुभव करै है तिन पदार्थोंके अप्राप्त हुए तिन इंद्रियाराम रागी पुरुषोंविषे यथाक्रमतैं अरति, अतृप्ति, अतुष्टिही देखणेविषे आवै है। इहां रति, तृप्ति, तुष्टि यह तीनों मनकी वृत्तिविशेष हैं ते तीनों साक्षीरूप अनुभवकरिकै सिद्ध हैं। और जिस विद्वान् पुरुषकूं परमानंदस्वरूप परमात्मा देवकी प्राप्ति भई है सो विद्वान् पुरुष द्वैतदर्शनके अभावतैं तथा विषयसुखोंविषे तुच्छबुद्धिवाला होणेतैं तिन विषयसुखोंकी इच्छा करता नहीं । यह वार्त्ता (यावानर्थ उदपाने) इस श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं या कारणतैं सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष आनंदस्वरूप आत्माविषेही रति करै है स्त्री आदिक विषयोंविषे रति करै नहीं । शंका—हे भगवन् ! आनंदस्वरूप आत्माविषे तौ सर्व प्राणीमात्रकी निरुपाधिक प्रीति है ता अपणे आत्माके वास्तैही स्त्रीपुत्रादिकोंविषे प्रीति होवै है यातैं ता आत्मरति विद्वान् पुरुषविषे अज्ञानी पुरुषोंतैं विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मतृप्तः इति) हे अर्जुन ! सो विद्वान् पुरुष परमानंदस्वरूप आत्माकारिकैही तृप्त होवै है अज्ञानी पुरुषकी न्यांई सो विद्वान् पुरुष कोई मनोरम स्त्रियोंकारिकै तथा मिष्ट अन्नकारिकै तृप्त होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! जिस पुरुषका जठराग्नि रोगादिकोंकारिकै मंद हुआ है तथा धातुक्षय होइ गया है सो पुरुष मिष्ट अन्नकारिकै तृप्त होवै नहीं तथा मनोरम स्त्रियों-

विषेभी रमण करता नहीं यातैं तिस रोगी पुरुषतैं ता विद्वान् पुरुषविषे विलक्षणता सिद्ध नहीं होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मन्येव च संतुष्टः इति) हे अर्जुन ! सो विद्वान् पुरुष केवल आनंदस्वरूप आत्माविषेही संतोषकूं प्राप्त हुआ है दूसरे किसी अनात्म पदार्थोंविषे सो विद्वान् पुरुष संतोषकूं प्राप्त होवै नहीं । और रोगादिकोंकरिकै जिस पुरुषका जठराग्नि मंद हुआ है तथा धातुक्षय हुआ है सो पुरुष तौ ता जठराग्निके प्रज्वलित करणेवासतै तथा धातुकी वृद्धि करणेवासतै नाना प्रकारके औषधोंके अर्थ जहां तहां भ्रमण करै है आनंदस्वरूप आत्माविषे सो अज्ञानी पुरुष संतोषकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इसी विलक्षणताके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं(यस्त्वात्मरतिः) यावचनविषे तु यह शब्द कथन करा है। तहां श्रुति। " आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः " । अर्थ यह—ब्रह्मवेत्तावोंविषे श्रेष्ठ यह विद्वान् पुरुष आनंदस्वरूप आत्माविषे क्रीडा करै है तथा ता आत्माविषेही रति करै है तथा ता आत्माविषेही क्रियावान् होवै है इति । ऐसे ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंके अधिकारीपणेका कोई हेतु है नहीं या कारणतैं ता विद्वान् पुरुषकूं कोईभी लौकिक, वैदिक, कार्य कर्त्तव्य नहीं हैं किंतु सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष कृतकृत्यही है। इहां (मानवः) या पदकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन करा जो कोईभी मनुष्यमात्र इस प्रकार आत्मरति होवै है तथा आत्मतृप्त होवै है तथा आत्मसंतुष्ट होवै है सोईही मनुष्य कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होवै है ता कृतकृत्यभावकी प्राप्तिविषे ब्राह्मणत्व आदिक उत्तम जातिका किंचित्मात्रभी उपयोग नहीं है ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! आत्मसाक्षात्कारवान् पुरुषकूं भी स्वर्गादिक सुखोंकी प्राप्तिवासतै अथवा मोक्षकी प्राप्तिवासतैं अथवा प्रत्यवायकी निवृत्तिवासतै अवश्यकरिकै ते कर्म करणे योग्य हैं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) न । एव । तस्य । कृतेन । अर्थः । न । अकृतेन । इह । कश्चन । न । च । अस्य । सर्वभूतेषु । कश्चित् । अर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस विद्वान् पुरुषकूं कर्मकारिकै कोईभी प्रयोजन नहीं है तथा कर्मके न करणेकारिकै इस लोकविषे कोईभी अर्थ नहीं है जिस कारणतैं इस विद्वान् पुरुषकूं सर्व भूतोंविषे कोईभी प्रयोजनका संबंध नहीं है ॥ १८॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष आत्मरति है तथा आत्मतृप्त है तथा आत्मसंतुष्ट है तिस आत्मवेत्ता पुरुषकूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंकारिकै कोईभी अभ्युदयरूप प्रयोजन तथा निःश्रेयसरूप प्रयोजन है नहीं काहेतैं तिस विद्वान् पुरुषकूं स्वर्गादिरूप अभ्युदयके प्राप्तिकी तौ इच्छामात्रभी नहीं है । और मोक्षरूप निःश्रेयस तौ कर्मोंकारिकै साध्यही नहीं है । तहां श्रुति । "परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन इति "। अर्थ यह—यह अधिकारी ब्राह्मण पुण्यकर्मकारिकै रचित स्वर्गादिक लोकोंकूं अनित्यता सातिशयता आदिक दोषोंवाला जाणिकै तिन स्वर्गादिक लोकोंतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै । जिस कारणतैं आत्मरूप नित्यमोक्ष नित्यनैमित्तिक कर्मोंकारिकै प्राप्त होवै नहीं इति । इहां (नैव तस्य) या वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एव शब्द ता आत्मरूप नित्यमोक्षविषे ज्ञानसाध्यताकीभी निवृत्ति सूचन करै है अर्थात् सो आत्मरूप नित्यमोक्ष जैसे कर्मोंकारिकै साध्य नहीं है तैसे ज्ञानकारिकै भी साध्य नहीं है काहेतैं सो आत्मरूप मोक्ष वास्तवतैं तौ या जीवोंकूं नित्यही प्राप्त है तथापि ता आत्माका जो अज्ञान है सो अज्ञानही ता मोक्षकी अप्राप्ति है । सो अज्ञान तत्त्वज्ञानमात्रकारिकै निवृत्त होवै है ता तत्त्वज्ञानकारिकै अज्ञानके निवृत्त हुए ता विद्वान् पुरुषकूं कर्मोंकारिकै सिद्ध होणेहारा तथा तत्त्वज्ञानकारिकै सिद्ध होणेहारा कोई भी प्रयोजन बाकी रहै नहीं इति । शंका—हे भगवन् ! नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतैं शास्त्रविषे प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करी है यातैं ता विद्वान् पुरुषनैं भी प्रत्यवायकी निवृत्ति करणेवास्तै ते नित्यनैमित्तिक कर्म अवश्य करणे योग्य हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नाकृतेनेह कश्चन इति) हे अर्जुन ! तिस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंके न करणेकारिकै इस लोकविषे किंचित् मात्रभी निंदारूप अनर्थ तथा प्रत्यवायकी प्राप्तिरूप अनर्थ होवै नहीं इति । तहां इस श्लोकके पूर्वार्द्धकारिकै कथन करे हुए सर्व अर्थविषे (न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः) या उत्तरार्द्धकारिकै युक्तिका कथन करैं हैं । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं इस ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं ब्रह्मातैं

आदिलैके स्थावरपर्यंत सर्व भूतोंविषे कोईभी प्रयोजनका संबंध नहीं है। अर्थात् किसीभी भूतविशेषकूं आश्रयकरिकै कोई क्रियासाध्य अर्थ है नहीं । तिस कारणतैं इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंका करणा तथा तिन कर्मोंका नहीं करणा यह दोनों निष्प्रयोजन हैं। तहां श्रुति। "नैनं कृताऽकृते तपतः" इति । अर्थ यह–इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं कर्मोंका करणा तथा कर्मोंका नहीं करणा यह दोनों तपायमान करैं नहीं इति । शंका–हे भगवन् ! तिस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं भी मोक्षकी प्राप्तिविषे इंद्रादिक देवता नाना प्रकारके विघ्न करैंगे यातैं तिन विघ्नोंकी निवृत्ति करणेवासतै ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषनैं भी तिन देवतावोंका आराधनरूप कर्म अवश्य करना चाहिये। समाधान–हे अर्जुन ! आत्मज्ञानतैं पूर्वही ते देवता विघ्न करैं हैं। आत्मज्ञानकी प्राप्तितैं उत्तर मोक्षकी प्राप्तिविषे ते देवता विघ्न करणेविषे समर्थ होवै नहीं। तहां श्रुति। "तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति"। अर्थ यह–जिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष इन देवतावों-का आत्मारूप है तिस कारणतैं यह इंद्रादिक देवता तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके पराभव करणेविषे समर्थ होवैं नहीं इति। यातैं ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं विघ्नोंकी निवृत्ति करणे वासतै सो देवतावोंका आराधनरूप कर्मभी कर्त्तव्य नहीं है इति। ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष सप्त भूमिकावोंके भेदकरिकै वसिष्ठभगवान्‌नैंभी निरूपण करा है। तहां श्लोक। "ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा परिकीर्तिता । विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा । सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका। पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥" अर्थ यह–शुभइच्छा १, विचारणा २, तनुमानसा ३, सत्त्वापत्ति ४, असंसक्ति ५, पदार्थाभावनी ६ और तुरीया ७ यह भूमिका ज्ञानकी होवैं हैं। तहां नित्यअनित्यवस्तुका विचार तथा इस लोक परलोकके विषयसुखोंतैं वैराग्य तथा शमदमादि षट्कसंपत्ति या तीनों साधनपूर्वक जो फलपर्यंत मोक्षकी इच्छा है जिसकूं मुमुक्षुता कहैं हैं ताका नाम शुभइच्छा है ॥ १ ॥ तिसतैं अनंतर श्रोत्रिय ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवचनोंका श्रवण करणा तथा श्रवण करे हुए अर्थका मनन करणा याका नाम विचारणा है ॥ २ ॥ तिसतैं अनंतर निदिध्यासनरूप अभ्यासतैं मनकी एकाग्रता करिकै ता मनविषे जो सूक्ष्म वस्तुके ग्रहण करणेकी योग्यता

है याका नाम तनुमानसा है ॥ ३ ॥ यह तीनों भूमिका ज्ञानके प्राप्तिका साधनरूप हैं। और या तीनों भूमिकावोंविषे यह सर्व जगत् भेदकरिकै विशिष्ट हुआ प्रतीत होवै है। यातैं यह तीनों भूमिका जाग्रत् अवस्था या नामकरिकै कही जावैं हैं। यह वार्त्ताभी वसिष्ठभगवान्नैं कथन करी है। तहां श्लोक। "भूमिकात्रितयं त्वेतद्राम जाग्रदिति स्थितम् । यथावद्भेदबुद्ध्येदं जगज्जाग्रति दृश्यते" अर्थ यह—हे रामचंद्र ! जैसे जाग्रत अवस्थाविषे यह जगत् यथावत् भेदबुद्धिकरिकै देख्या जावै है तैसे या तीन भूमिकावोंविषेभी यह सर्व जगत् यथावत् भेदबुद्धिकरिकै देख्या जावै है। यातैं शुभइच्छा, विचारणा, तनुमानसा यह तीनों भूमिका जाग्रत अवस्था या नामकरिकै कही जावै हैं इति। तिसतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषकूं 'तत्त्वमसि' आदिक वेदांतवाक्योंतैं निर्विकल्पक ब्रह्मात्मैक्यविषयक साक्षात्कार होवै है याका नाम सत्त्वापत्ति है ॥ ४ ॥ और ता सत्त्वापत्ति नामा चतुर्थ भूमिकाविषे यह सर्व जगत् स्वप्नकी न्याईं मिथ्यारूपकरिकै प्रतीत होवै है। या कारणतैं सा फलरूप सत्त्वापत्ति स्वप्नअवस्था या नामकरिकै कही जावै है। यह वार्त्ताभी वसिष्ठ भगवान्नै कथन करी है। तहां श्लोक। "अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते प्रशममागते। पश्यति स्वप्नवल्लोकं चतुर्थी भूमिका मता"। अर्थ यह—जिस कालविषे अद्वैतकी स्थिरता प्राप्त होवै है तथा द्वैतकी निवृत्ति होवै है तथा यह विद्वान् पुरुष सर्व जगत्कूं स्वप्नकी न्याईं मिथ्या देखै है। तिस कालविषे चतुर्थी भूमिका कही जावै है इति। ता चतुर्थी भूमिकाकूं प्राप्त हुआ योगी पुरुष ब्रह्मवित् या नामकरिकै कह्या जावै है। और पंचमी, षष्ठी, सप्तमी यह तीन भूमिका तौ जीवन्मुक्तिकेही अवांतर भेद हैं। तहां सविकल्पक समाधिके अभ्यासकरिकै निरुद्ध हुआ जो मन है ता निरुद्ध मनविषे जो निर्विकल्पक समाधि अवस्था है ताका नाम असंसक्ति है ॥ ५ ॥ ता असंसक्ति नाम पंचमी भूमिकाकूं सुषुप्ति या नामकरिकै कथन करै हैं। और ता पंचमी भूमिकावाला योगी पुरुष आपही समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है यातैं सो पंचमी भूमिकावाला योगी पुरुष ब्रह्मविद्वर या नामकरिकै कह्या जावै है। तिसतैं अनंतर ता असंसक्ति नामा पंचमी भूमिकाके परिपक्वताकरिकै चिरकाल पर्यंत स्थिर हुई जो सा निर्विकल्पक समाधि अवस्था है ताका नाम पदार्थाभावनी

है ॥ ६ ॥ सा पदार्थाभावनी नाम षष्ठी भूमिका गाढसुषुप्ति या नामकरिकै कही जावै है। ता पदार्थाभावनी नामा षष्ठी भूमिकाकूं प्राप्त हुआ सो योगी पुरुष आपही समाधितैं उठै नहीं। किंतु दूसरे शिष्यादिकोंके प्रयत्नकरिकैही सो योगी पुरुष समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है। सो षष्ठी भूमिकावाला योगी पुरुष ब्रह्मविद्वरीयान् या नामकरिकै कह्या जावै है। यह वार्त्ताभी वसिष्ठभगवान्नें कथन करी है। तहां श्लोक। "पंचमीं भूमिकामेत्य सुषुप्तिपदनामिकाम्। षष्ठीं गाढसुषुप्त्याख्यां क्रमात्पतति भूमिकाम्"। अर्थ यह–यह योगी पुरुष सुषुप्ति नामा पंचमी भूमिकाकूं प्राप्त होइकै क्रमतैं गाढ सुषुप्तिनामा षष्ठी भूमिकाकूं प्राप्त होवै है इति। और जिस समाधि अवस्थातैं यह योगी पुरुष आपभी व्युत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं। तथा अन्य शिष्यादिकोंकरिकैभी व्युत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं किंतु सर्वथा भेददर्शनके अभावतैं तद्रूपही होवै है। तथा अपणे प्रयत्नतैं विनाही परमेश्वरकरिकै प्रेरणा करे हुए प्राणवायुके वशतैं तथा प्रारब्धकर्मके वशतैं जिस विद्वान् पुरुषके देहका व्यवहार अन्य लोकही सिद्ध करैहै। तथा जो विद्वान् पुरुष सर्वदा परिपूर्ण परमानंदघन हुआ स्थित होवै है, ऐसी अवस्था तुरीया नामा सप्तमी भूमिका कही जावै है ॥ ७ ॥ ता सप्तमी भूमिकाकूं प्राप्त हुआ सो योगी पुरुष ब्रह्मविद्वरिष्ठ या नामकरिकै कह्या जावै है। इन सप्त भूमिकावोंके संग्रहका यह श्लोक है। "चतुर्थी भूमिका ज्ञानं तिस्रः स्युः साधनं पुरा। जीवन्मुक्तेरवस्थास्तु परास्तिस्रः प्रकीर्तिताः"। अर्थ यह–शुभइच्छा, विचारणा, तनुमानसा यह पूर्वली तीन भूमिका तौ साधनरूप हैं। और सत्त्वापत्ति नामा चतुर्थी भूमिका ज्ञानरूप है। और असंसक्ति, पदार्थाभावनी, तुरीया यह तीन भूमिका जीवन्मुक्तिकी अवस्थाविशेष हैं इति। इन सप्त भूमिकावोंके कहणेका इहां प्रसंगविषे यह प्रयोजन है। जो पुरुष शुभइच्छा, विचारणा, तनुमानसा या साधनरूप प्रथम तीन भूमिकावोंकूंभी प्राप्त भया है। सो पुरुषभी जबी कर्मोंका अधिकारी नहीं है तबी चतुर्थी भूमिकावाला ज्ञानवान् पुरुष तथा उत्तर तीन भूमिकावाला जीवन्मुक्त पुरुष तिन कर्मोंका अधिकारी नहीं है याकेविषे क्या कहणा है ॥ १८ ॥

जिस कारणतैं तूं अर्जुन इस प्रकारका ज्ञानवान् है नहीं किंतु केवल कर्मोंकाही तूं अधिकारी है तिस कारणतैं फलकी इच्छातैं रहित होइकै तूं

नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही कर या प्रकारके अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं-

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । असक्तः । संततम् । कार्यम् । कर्म । समाचर । असक्तः । हि । आचरन् । कर्म । परम् । आप्नोति । पूरुषः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस कारणतैं तूं फलकामनातैं रहित होइकै सर्वदा अवश्य करणेयोग्य नित्यनैमित्तिक कर्मकूं भलीप्रकारतैं कर जिस कारणतैं यह पुरुष फलकी कामनातैं रहित होइकै तिस कर्मकूं करता हुआ मोक्षकूंही प्राप्त होवै है ॥ १९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जिस कारणतैं तूं ज्ञानवान् है नहीं किंतु केवल कर्मोंकाही अधिकारी है । तिस कारणतैं "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्" इत्यादिक श्रुतियोंनैं विधान करेहुए तथा (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन) इस श्रुतिनैं आत्मज्ञानविषे उपयोग कथनकरया है जिन्होंका ऐसे जे नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूं तूं फलकी इच्छातैं रहितहोइकै श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरंतर कर जिस कारणतैं यह पुरुष फलकी इच्छातैं रहित होइकै निरंतर तिन नित्यनैमित्तिककर्मोंकूं करताहुआ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानद्वारा मोक्षकूंही-प्राप्तहोवैहै ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! ज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुषकूंभी ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै श्रवणमननिदिध्यासनके अनुष्ठान अर्थः सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यास शास्त्रविषे विधान करया है यातैं केवल ज्ञानवान् पुरुषकूंही तिन कर्मोंका अनधिकार नहीं है किंतु ता ज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् विरक्तपुरुषकूंभी तिन कर्मोंका अनधिकारहीहै यातैं ज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् तथा विरक्त ऐसा जो मैं अर्जुनहूं तिस मैं अर्जुननेभी ते कर्म परित्यागकरणेकूंही योग्य हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं श्रीभगवान् क्षत्रियराजाकूं संन्यासका अनधिकार प्रतिपादन करिकै निवृत्त करै हैं-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) कर्मणा । एव । हि । संसिद्धिम् । आस्थिताः । जनकादयः । लोकसंग्रहम् । एव । अपि । संपश्यन् । कर्तुम् । अर्हसि ॥२०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं पूर्व जनकादिक क्षत्रियराजे कर्मकरिकै ही ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होतेभयेहैं तिस कारणतैं तूंभी कर्मही करणेकूं योग्यहै किंवा लोकसंग्रहकूं देखताहुआ भी तूं कर्मकरणेकूं ही योग्य है ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिविषे प्रसिद्ध जे जनकराजा अजातशत्रुराजा अश्वपतिराजा भगीरथराजा इत्यादिक क्षत्रियराजे हैं ते जनकादिक विद्वान् राजेभी नित्यनैत्तिककर्मोंकरिकैही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा श्रवणमननादिकोंकरिकै साध्य ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होतेभये हैं । कोई कर्मोंकेत्यागकरिकै ता ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं। यह वार्त्ता जिसकारणतैं यथार्थहै तिस कारणतैं तूं क्षत्रिय अर्जुनभी ज्ञानकी इच्छावाला हुआ अथवा विद्वान् हुआ सर्वप्रकारतैं कर्महीकरणेकूं योग्यहै । कर्मोंके त्याग करणेकूं तूं योग्य नहीं हैं काहेतैं (ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति) यह जो संन्यासआश्रमका विधायक श्रुतिवचन है ता वचनविषे ब्राह्मणकाही संन्यासविषे अधिकार कथनकऱ्याहै क्षत्रियवैश्यका अधिकार कथन कऱ्या नहीं । जैसे (स्वाराज्यकामो राजा राजसूयेन यजेत) इस वचनविषे राजसूययज्ञविषे क्षत्रियराजाकाही अधिकार कथनकऱ्याहै ब्राह्मणादिकोंका अधिकार कथनकऱ्या नहीं । और (चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य त्रयो राजन्यस्य द्वौ वैश्यस्य) अर्थ यह– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह च्यारि आश्रम ब्राह्मणकेही होवैं हैं । और संन्यासकूं छोडिकै तीन आश्रम क्षत्रियराजाके होवैं हैं । और ब्रह्मचर्य गृहस्थ यह दो आश्रम वैश्यके होवैं हैं इति । इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचनोंविषे क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासके अभावका कथन कऱ्याहै । तिन श्रुतिवचनोंके तात्पर्यकूं जानणेहारे ते जनकादिकक्षत्रियराजे नित्यनैमित्तिककर्मोंकारिकैही ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होतेभये हैं । तिन कर्मोंके त्यागरूपसंन्यासकरिकै ते जनकादिक ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं इति । किंवा (सर्वे राजाश्रिता धर्मा राजा धर्मस्य धारकः)। अर्थ यह–श्रुतिस्मृतिकरिकै प्रतिपादित सर्वधर्म राजाकेआश्रित रहैं हैं । तथा यह राजाही सर्वधर्मका धारणकरणेहारा होवैहै । या स्मृतिवचनतैं

सर्व वर्णआश्रमके धर्मोंका प्रवर्त्तकपणा क्षत्रियराजाविषे सिद्धहोवैहै या कारणतैंभी यह क्षत्रियराजा अवश्यकारिकै कर्मोंकूं करै। या अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (लोकसंग्रहमेवापीति) लोकोंकूं आपणेआपणेधर्मविषे प्रवृत्त करणा तथा अधर्मतैं निवृत्त करणा याका नाम लोकसंग्रहहै। ता लोकसंग्रहकूं देखताहुआभी तथा पूर्वजनकादिक क्षत्रिय राजावोंके शिष्टाचारकूं देखता हुआभी तूं अर्जुन नित्यनैमित्तिककर्मोंके करणेकूंही योग्यहै। तात्पर्य यह—क्षत्रियजन्मकी प्राप्तिकरणेहारेकर्मोंनैं आरंभ कर्याहै शरीर जिसका ऐसा जो तूं अर्जुनहै सो तूं अर्जुन विद्वान्हुआभी जनकादिकोंकी न्याईं प्रारब्धकर्मके बलकारिकै ता लोकसंग्रहके वासतै कर्मकरणेकूंही योग्यहै। कोई कर्मोंके त्यागकरणेके योग्य तूं नहींहै। जिसकारणतैं कर्मोंके संन्यासकरणे योग्य ब्राह्मणशरीर तुम्हारेकूं प्राप्तभया नहीं इति। इसी प्रकारके श्रीभगवान्के अभिप्रायकूं जानणेहारे भगवान् भाष्यकारोंने ब्राह्मणकूंही संन्यासविषे अधिकारहै अन्यक्षत्रियादिकोंकूं संन्यासविषे अधिकार नहीं है याप्रकारका निर्णय कर्याहै। और (सर्वाधिकारविच्छेदि ज्ञानं चेदभ्युपेयते। कुतोऽधिकारनियमोऽव्युत्थाने क्रियते बलात्) अर्थ यह—सर्व अधिकारका विच्छेद करणेहारा ज्ञान जबी क्षत्रियवैश्यकूं अंगीकार करतेहो तबी संन्यासविषे ब्राह्मणकाही अधिकारहै क्षत्रियवैश्यका नहींहै। याप्रकारका संन्यासके अधिकारका नियम बलात्कारसैं किसवासतै अंगीकार करते हो किंतु यह नियमभी नहीं मान्या चाहिये इति। इत्यादिकवचनोंकारिकै जो वार्तिककारनैं क्षत्रियवैश्यकूंभी संन्यासका अधिकार सिद्धकर्या है सो प्रौढिवादतैं सिद्धकर्याहै। सर्वथा अनुपपन्नअर्थकूंभी आपणीप्रज्ञाके बलतैं सिद्धकरदेणा याका नाम प्रौढिवाद है। अथवा क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका प्रतिपादनकरणेहारे वचनोंका भरतऋषभादिकोंकी न्याईं अलिंगविद्वत्संन्यासविषे तात्पर्यहै इति। सर्वप्रकारतैं दंडादिकचिह्नपूर्वक विविदिषासंन्यासविषे एक ब्राह्मणकाही अधिकार है क्षत्रियादिकोंका है नहीं ॥ २० ॥

हे भगवन्! जो कदाचित् मैं अर्जुन तिन कर्मोंकूं करौंभी तौभी दूसरेलोक तिन कर्मोंकूं किसप्रकार करैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् दूसरे लोक श्रेष्ठपुरुषोंके आचारके अनुसारही प्रवृत्त होवैं हैं याप्रकारका उत्तर कहैं हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) यत् । यत् । आचरति । श्रेष्ठः । तत् । तत् । एव । इतरः । जनः । सः । यत् । प्रमाणम् । कुरुते । लोकः । तत् । अनुवर्त्तते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रेष्ठपुरुष जिसे जिसे कर्मकूं करै है तिसी तिसी कर्मकूं ही दूसरे जनभी करैहैं और सो श्रेष्ठपुरुष जिसकूं प्रमाण करै है तिसकूंही दूसरे-लोग भी प्रमाण करैं हैं ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्वलोकोंविषे प्रधानभूत जे राजादिक श्रेष्ठपुरुष हैं ते राजादिकश्रेष्ठपुरुष जिसजिस शुभकर्मकूं अथवा अशुभकर्मकूं करैं हैं तिसी तिसी शुभ कर्मकूं अथवा अशुभकर्मकूं तिन राजादिकोंके आज्ञाविषे चलणेहारे दूसरे जनभी करैं हैं। तिन राजादिकोंतैं स्वतंत्र होइकै ते दूसरे जन किंचित्मात्रभी कार्यकूं करैंनहीं। शंका—हे भगवन् ! ते दूसरेलोक शास्त्रकूं भलीप्रकारतैं विचार-करिकै शास्त्रतैं विरुद्ध राजादिकश्रेष्ठपुरुषोंके आचारकूं परित्यागकरिकै केवलशास्त्र-विहितआचारकूं किसवासतै नहींकरते ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए। तिन दूसरे-लोगोंकूं श्रेष्ठाचारकी न्याईं प्रमाणताका निश्चयभी तिनश्रेष्ठपुरुषोंके अनुसारही होवैहै याप्रकारका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं (स यत्प्रमाणं कुरुते, इति) हे अर्जुन! ते राजादिकश्रेष्ठपुरुष जिसलौकिकपदार्थकूं अथवा वैदिकपदार्थकूं प्रमाणरूपकरिकै अंगी-कारकरैं हैं तिसीही लौकिकपदार्थकूं तथा वैदिकपदार्थकूं दूसरेलोकभी प्रमाणरू-पकरिकै अंगीकार करैं हैं। ते दूसरेलोक तिन राजादिकश्रेष्ठपुरुषोंतैं स्वतंत्रहोइकै किसीभी पदार्थकूं प्रमाणरूपकरिकै अंगीकार करतेनहीं। यातैं हे अर्जुन ! सर्वलो-कोंविषे प्रधानभूत जो तूं राजाहै तिसतुमनैं लोकोंके संरक्षणवासतै अवश्यकरिकै कर्म करणेकूं योग्य हैं। तुम्हारी शुभकर्मविषे प्रवृत्तिकूं देखिकरिकै दूसरेलोकभी अवश्य-करिकै तिन शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोवैंगे। जिसकारणतैं राजादिक प्रधानपुरुषोंके अनुसारही दूसरे सर्वलोकोंके व्यवहार होवैं हैं ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! दूसरे लोकोंकूं शुभकर्मविषे प्रवृत्तकरणेवासतै राजादिकश्रेष्ठपुरुषोंनैं अवश्यकरिकै शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोणा या अर्थविषे मैं कृष्णभगवान्ही दृष्टांत हूं इस अर्थकूं तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् कहैं हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) न । मे । पार्थ । अस्ति । कर्त्तव्यम् । त्रिषु । लोकेषु । किंचन । न । अनवाप्तम् । अवाप्तव्यम् । वर्ते । एव । च । कर्मणि ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमारेकूं तीन लोकोंविषे किंचित् मात्रभी करणेयोग्य नहीं है जिसकारणतैं हमारेकूं पूर्व अप्राप्तफल किंचित्मात्रभी प्राप्तहोणेयोग्य नहीं हैं तौभी मैं कर्मविषे प्रसिद्ध वर्त्तता ही हूं ॥ २२ ॥

भा० टी०–जैसे गृहके स्वामीकूं ता गृहविषे स्थित सर्व पदार्थ प्राप्तही हैं तैसे सर्वब्रह्मांडका स्वामी जो मैं कृष्णभगवान् हूं तिस हमारेकूं ता ब्रह्मांडविषे स्थित सर्व पदार्थ प्राप्तही हैं । कोईभी पदार्थ हमारेकूं अप्राप्त नहीं है । और लोकविषे पूर्व-अप्राप्तवस्तुकी प्राप्तिवासतैही प्रयत्नकरैं हैं । पूर्वप्राप्तवस्तुकी प्राप्तिवासतै कोईभी प्रयत्न करतानहीं । यातैं तीन लोकोंविषे किसी पदार्थके प्राप्तिका उद्देशकरिकै हमारेकूं किंचित्मात्रभी कर्तव्य नहीं है । तौभी मैं कृष्णभगवान् वेदविहित शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोवाही हूं । तिन शुभकर्मोंका मैं कदाचित्भी परित्याग करता-नहीं । तिन शुभकर्मोंविषे हमारी प्रवृत्ति तुम्हारेकूंभी प्रत्यक्षही सिद्धहै । इसीप्रसि-द्धिकेबोधनकरणेवासतै श्रीभगवान्नैं (वर्त्त एव च) या वचनविषे स्थित च यह शब्द कथनकरयाहै । और (हे पार्थ) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूच-नकरया । शुद्ध क्षत्रियवंशविषे उत्पन्न होणेतै तूं अर्जुन ! हमारेसमानही शूरवीर है । यातैं हमारेन्याईं तुम्हारेकूं भी शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोणाही उचित है ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! आप शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोइकै दूसरे लोकोंकूंभी तिनशुभकर्मोंविषे प्रवृत्तकरणा या प्रकारके लोकसंग्रह करणेका कोई फल है नहीं । यातैं सो लोकोंका संग्रहभी तुम्हारेकूं करणे योग्यनहीं है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः ॥
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यदि । हि । अहम् । न । वर्त्तेय जातु । कर्मणि । अतं-द्रितः । मम । वर्त्म । अनुवर्त्तंते । मनुष्याः । पार्थ । सर्वशः ॥२३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कदाचित् मैं कृष्ण भगवान् आलसतैंरहित होइकै शुभकर्मविषे नहीं प्रवर्त्तहोवौं तौ कर्मके अधिकारी मनुष्य हमारे मार्गकूंही सर्वप्रकार करिकै अंगीकार करैंगे ॥ २३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं अभी कृतार्थ हुआहूं कर्मोंकेकरणेकरिकै अभी हमारेकूं किंचित्मात्रभी अर्थ सिद्धकरणेयोग्य नहींरह्या या प्रकारकी कृतकृत्यबुद्धिकरिकै जो कदाचित मैं कृष्णभगवान आलसतैंरहित होइकै शुभकर्मोंविषे नहीं प्रवृत्तहोवौंगा तौ जितनेककर्मोंके अधिकारी मनुष्य हैं ते सर्वमनुष्य हमारेकूं शुभकर्मोंतैं रहित हुआ देखिकै आपभी शुभकर्मोंतैं रहित होवैंगे । काहेतैं यह कृष्ण भगवान् सर्वज्ञ हैं या प्रकारकी हमारेविषे सर्वज्ञत्वबुद्धि करिकै यह सर्व अधिकारीमनुष्य सर्वप्रकारतैं हमारेही मार्गकूं अंगीकार करैं ॥ २३ ॥

हे भगवन् ! सर्वमनुष्योंविषे श्रेष्ठ जो आपहो तिस आपके शुभकर्मोंके त्यागरूप मार्गकूं अंगीकार करणा इन अधिकारी मनुष्योंकूं उचितहीहै । वाकरिकै तिन अधिकारीमनुष्योंकूं कौन दोषहै । ऐसी अर्जुनकीशंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैंहैं–

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) उत्सीदेयुः । इमे । लोकाः । न । कुर्याम् । कर्म । चेत् । अहम् । संकरस्य । च । कर्त्ता । स्याम् । उपहन्याम् । इमाः । प्रजाः ॥२४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कदाचित् मैं ईश्वर शुभकर्मकूं नहीं करौंगा तौ यह सर्वलोक नाशकूं प्राप्तहोवैंगे तथा मैंहीं वर्णसंकरका कर्त्ता होवौंगा तथा इस सर्वप्रजाकूं मैंही हनन करौंगा ॥ २४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्वका ईश्वर मैं कृष्ण भगवान् जो कदाचित् शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूं नहीं करौंगा तौ हमारे अनुसार वर्त्तणेहारे मनु आदिक श्रेष्ठ पुरुषभी तिन शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त नहीं होवैंगे यातैं जलकी वृष्टिद्वारा सर्वलोकोंके स्थितिका कारणरूप जे यज्ञादिक कर्म हैं तिन सर्व कर्मोंका लोप होवैगा । तिन सर्वकर्मोंके लोपहुए यह सर्वलोक नाशकूं प्राप्त होवैंगे । तिन सर्वलोकोंके नाशतैं अनंतर जो वर्णसंकर होना है तिस वर्णसंकरकाभी मैंही करणेहारा होवौंगा

तिस करके मैंही इस सर्वप्रजाकूं हनन करणेहारा होवैंगा। सो यह वार्त्ता हमारेकूं अत्यंत अनुचित है। काहेतैं सर्वप्रजाके अनुग्रह करणेवासतै प्रवृत्त हुआ जो मैं कृष्णभगवानूहूं तिस हमारेकूं धर्मका लोपकरिकै सर्वप्रजाका हनन करणा उचित नहीं है इति। अथवा (यद्यदाचरति श्रेष्ठः) इत्यादिकच्यारिश्लोकोंका यह दूसरा अर्थ करना। हे अर्जुन ! केवललोकसंग्रहकूं देखताहुआही तूं कर्मकरणेकूंयोग्यनहीं है किंतु श्रेष्ठाचारतैंभी तूं कर्मकरणेकूंयोग्यहै। इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (यद्यदाचरति श्रेष्ठः इति) यातैं सर्वप्राणियोंतैं श्रेष्ठ जो मैंकृष्णभगवानूहूं तिसहमारा जिसप्रकारका आचारहै तिसी प्रकारका आचार हमारे अनुसार वर्त्तणेहारेतैं अर्जुननैंभी करणेयोग्यहै। हमारेतैं स्वतंत्र होइकै किंचित्मात्रभी आचार तुम्हारेकूं करणेयोग्य नहीं है। शंका-हे भगवन् ! सो आपका आचार किस प्रकारकाहै जो आचार हमारेकूं अवश्यकरिकै अंगीकारकरणेकूंयोग्यहै। ऐसीअर्जुनकीशंकाकेहुए श्रीभगवान् (न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यम्) इत्यादिक तीनश्लोकोंकरिकै ता आपणे आचारका कथन करताभया ॥ २४ ॥

हे भगवन् ! आप ईश्वरहो यातैंलोकसंग्रहवासतैं शुभकर्मोंकूंकरतेहुएभी मैं सर्वदा अकर्त्ताहूं याप्रकारके कर्तृत्वअभिमानके अभावतैं आपकी किंचित्मात्रभीहानि होवै नहीं। और मैं अर्जुनतौ जीवहूं यातैं लोकसंग्रहवासतैं तिन शुभकर्मोंके करणेतैं मैं कर्मोंका कर्त्ताहूं या प्रकारके कर्तृत्व अभिमानकरिकै हमारे ज्ञानका अभिभव अवश्य करिकै होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) सक्ताः। कर्मणि। अविद्वांसः। यथा। कुर्वंति भारत। कुर्यात्। विद्वान्। तथा। असक्तः। चिकीर्षुः। लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! जैसे अज्ञानीपुरुष कर्मविषे अभिनिवेशवालेहुए तिसकर्मकूं करैं हैं तैसे लोकसंग्रहके करणेकी इच्छावाला विद्वान्पुरुष अभिनिवेशतैं रहित हुआ ता कर्मकूं करै ॥ २५ ॥

भा० टी०-हे भारत ! आत्मज्ञानतैं रहित अज्ञानी पुरुष मैं कर्मोंका कर्त्ताहूं याप्रकारके कर्तृत्व अभिमान करिकै तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छा करिकै

यज्ञादिक कर्मोंविषे अभिनिवेशवाले हुए जिसप्रकार श्रद्धा भक्तिपूर्वक तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं करैं हैं तिसी प्रकार लोकसंग्रह करणेकी इच्छावाला विद्वान् पुरुषभी श्रद्धाभक्तिपूर्वक तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं करै। परंतु सो विद्वान् पुरुष कर्तृत्व अभिमानतैं रहित हुआ तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं रहित हुआ तिन शुभकर्मोंकूं करै । इहां (हे भारत !) यासंबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या, भरतवंशविषे जाकी उत्पत्ति होवै ताका नाम भारत है। अथवा भा नाम ज्ञानकाहै ता ज्ञानविषे जो प्रीतिवाला होवै ताका नाम भारत है। ऐसे भारतनामवाला तूं अर्जुनहै यातैं अज्ञानीपुरुषकीन्याई विद्वानपुरुषभी लोकसंग्रहवास्तै शुभकर्मोंकूं करै याप्रकारका जो शास्त्रका अर्थ है तिस अर्थके धारणकरणेकूं तूं योग्यहै। ता अर्थके धारणकरणेतैंही तुम्हारेविषे सो भारतनाम सार्थक होवैगा॥ २५॥

हे भगवन् ! विद्वान् पुरुषने शुभकर्मोंका अनुष्ठान करिकैही लोकसंग्रह करणा। तत्त्वज्ञानके उपदेश करिकै सो लोकसंग्रह नहीं करणा याकेविषे कौन हेतु है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

(पदच्छेदः) न । बुद्धिभेदम् । जनयेत् । अज्ञानाम् । कर्मसंगिनाम् । जोषयेत् । सर्वकर्माणि । विद्वान् । युक्तः । समाचरन् ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह विद्वान् पुरुष कर्मकेसंगी अविवेकीपुरुषोंके बुद्धिभेदकूं नहीं उत्पन्नकरै किंतु सो विद्वान् पुरुष आदरपूर्वक सर्वकर्मोंकूं करताहुआ तिन अविवेकी पुरुषोंकूंभी तिनकर्मोंविषेंही जोडै ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! कर्तृत्वअभिमानकरिकै तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छा करिकै यज्ञादिककर्मोंविषे अभिनिवेशवाले जे अज्ञानीपुरुषहैं तिनअज्ञानीपुरुषोंकी मैं इस कर्मकूं करौंगा तथा मैं इसफलकूंभोगौंगा याप्रकारकी जाबुद्धिहै ताबुद्धिके भेदकूं यह विद्वान् पुरुष नहीं उत्पन्नकरै। अर्थात् तूं आत्मा अकर्ता है तथा अभोक्ताहै याप्रकारका उपदेशकरिकै तिनअज्ञानी पुरुषोंके बुद्धिकूं तिनशुभकर्मोंतैं चलायमान नहींकरै किंतु लोकसंग्रहकरणेकी इच्छावाला सो विद्वानपुरुष आप श्रद्धाभक्तिपूर्वक

तिनशुभकर्मोंकूं करताहुआ तिनअज्ञानीपुरुषोंकीभी तिन शुभकर्मोंविषे श्रद्धाउत्पन्न करिकै तिनअज्ञानीपुरुषोंकूं तिन शुभकर्मोंविषेही निरंतरजोडै काहेतैं शास्त्रविहित शुभकर्मोंके अनुष्ठानतैं जिसपुरुषका अंतःकरण शुद्धहुआहै सो पुरुषही अकर्त्ता आत्माके उपदेशका अधिकारी होवैहै। अशुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष अकर्त्ताआत्माके उपदेशका अधिकारी होवै नहीं । ऐसे अनधिकारी पुरुषोंके प्रति अकर्त्ताआत्माके उपदेश-करिकै तिन्होंकी बुद्धिकूं शुभकर्मोंतैं चलायमान कियेहुए तिनपुरुषोंकी शुभकर्मोंविषे श्रद्धानिवृत्त होइजावै है, यातैं तिन अज्ञानीपुरुषोंकूं स्वर्गादिक उत्तमलोकोंकीभी प्राप्ति होवै नहीं। तथा अशुद्ध अंतःकरणविषे आत्माका ज्ञानभी उत्पन्न होवै नहीं यातैं ते अज्ञानीपुरुष भोग मोक्ष दोनोंतैं भ्रष्ट होवैं हैं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कहीहै । तहाँ श्लोक ॥ "अज्ञस्यार्द्धप्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेतियो वदेत् ॥ महानिरयजालेषु स तेन विनियोजितः ॥ " अर्थ यह—अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित तथा विषयोंविषे आसक्त ऐसा जो केवल कर्मोंका अधिकारी अर्धप्रबुद्ध अज्ञानी पुरुषहै तिस अज्ञानी-पुरुषके प्रति जो विद्वान् पुरुष तूं मैं यह सर्वजगत् ब्रह्मरूपही है या प्रकारका उपदेश करैहै तिस विद्वानपुरुषनैं सो अज्ञानीपुरुष महारौरवनरकादिकोंविषे प्राप्त करया इति । यातैं यह विद्वान्पुरुष आप शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त होइकै तिन अज्ञानीपुरुषोंकूं भी शुभकर्मविषेही प्रवृत्त करै । तिन शुभकर्मोंके करणेतैं जभी तिन अज्ञानीपुरुषोंके अंतःकरणकी शुद्धि होवै तभी यह विद्वान् पुरुष तिन अज्ञानीपुरुषोंके प्रति अकर्त्ता अभोक्ता आत्माका उपदेश करै ॥ २६ ॥

तहां अज्ञानी पुरुष तथा ज्ञानीपुरुष दोनोंविषे शुभकर्मोंके अनुष्ठानकी समानता हुएभी कर्तृत्व अभिमान तथा ता कर्तृत्वअभिमानका अभाव या दोनों हेतुवोंकरिकै अज्ञानी तथा ज्ञानी दोनोंकी विलक्षणताकूं दिखावता हुआ श्री भगवान् (सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो) या पूर्वउक्तश्लोकके अर्थकूं दो श्लोकोंकरिकै स्पष्ट करैं हैं—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

(पदच्छेदः) प्रकृतेः । क्रियमाणानि । गुणैः । कर्माणि । सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा । कर्त्ता । अहम् । इति । मन्यते ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मायाके गुणोनैं सर्वप्रकारतैं सर्वकर्म करीते हैं अहंकार करिकै विमूढ हुआहै अंतःकरण जिसका ऐसा अज्ञानी पुरुष मैं कर्मोंका कर्त्ता हूं याप्रकार माँनैं हैं ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जा माया सत्त्व रज तम या तीनगुणरूप है तथा मिथ्या ज्ञानरूप है तथा (देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्) इस श्वेताश्वतरउपनिषद्की श्रुतिविषे जिस मायाकूं परमेश्वरकी शक्तिरूपकरिकै कथन कऱ्याहै ता मायाका नाम प्रकृतिहै । तहांश्रुति । (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्) अर्थ यह—मायाकूं जगत्का प्रकृति जानणा तथा मायाउपाधिवालेकूं महेश्वर जानणा इति। ऐसी मायारूप प्रकृतिके विकाररूप जितनैंकी देह इंद्रिय अंतःकरणादिक कार्यकारणरूप गुणहैं तिन गुणोंनैंही सर्वप्रकारतैं लौकिक वैदिककर्म करितेहैं । यह असंगआत्मा तिनकर्मोंकूं करता नहीं तथापि कार्यकारणरूप संघातविषे आत्मत्वबुद्धिरूप जो अहंकार है ता अहंकारकरिकै विमूढहुआहै क्या विवेक करणेविषे असमर्थहुआहै आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम अहंकारविमूढात्माहै ऐसा अनात्मपदार्थोंविषे आत्मत्व अभिमान करणेहारा अज्ञानीपुरुष तिन देहादिकोंके अध्यास करिकै तिन सर्वकर्मोंका मैंही कर्त्ताहूं या प्रकार आपणे आत्माकूंही कर्त्ता मानैहै । तिन प्रकृतिके गुणोंकूं कर्मोंका कर्त्ता मानता नहीं ॥ २७ ॥

अब जैसे अज्ञानीपुरुष तिन कर्मोंका कर्त्ता आपणे आत्माकूंही मानै है । तैसे विद्वान् ज्ञानीपुरुष तिन कर्मोंका कर्त्ता आपणे आत्माकूं मानता नहीं या अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्त्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) तत्त्ववित । तु । महाबाहो । गुणकर्मविभागयोः । गुणाः । गुणेषु । वर्त्तंते । इति । मत्वा । न । सज्जते ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे महान्बाहुवाले अर्जुन ! गुणकर्मविभागके यथार्थस्वरूपकूं जाननेहारा विद्वान् पुरुष तौ इंद्रियादिककरणही रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्तहोवै है न असंगआत्मा इसप्रकार मांनिकारिकै नहीं कर्तृत्व अभिमान करैहै ॥ २८ ॥

भा०टी०—तत्त्वनाम यथार्थस्वरूपकाहै तिसकूं जो जानैहै वाका नाम तत्त्ववितहै इहां (तत्त्ववित्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्दहै सो तु शब्द पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए अज्ञानीपुरुषतैं ता तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे विलक्षणताकूं कथन करैहै ॥ शंका—हे भगवन् ! सो विद्वान् पुरुष किस वस्तुके तत्त्वकूं जानै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (गुणकर्मविभागयोः, इति) अहं अभिमानके विषयरूप जे देह इंद्रिय अंतःकरण हैं तिन्होंका नाम गुणहै। और मम अभिमानके विषयरूप जे तिन देह इंद्रिय अंतःकरणके व्यापार हैं तिन व्यापारोंका नाम कर्म है। और जो वस्तु सर्व जड विकारोंका प्रकाश होणेतैं तिन सर्व जड विकारोंतैं पृथक् होवै ताका नाम विभाग है। ऐसा स्वप्रकाशक ज्ञानरूप असंग आत्माहै। तहां ते गुणकर्म तो भास्य जड विकारीरूपहैं। और यह विभागरूप आत्मदेव तौ भासक चेतन निर्विकाररूप है। इसप्रकार गुणकर्म तथा विभाग या दोनोंके यथार्थ स्वरूपकूं जानणेहारा जो विद्वान्पुरुषहै सो विद्वान् पुरुष तौ यह इंद्रियादिक करणही विकारी होणेतैं आपणे आपणे रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्तहोवैं हैं निर्विकार आत्मा तिन रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्त होता नहीं या प्रकारका निश्चय करिकै अज्ञानी पुरुष-कीन्याईं आपणे आत्माविषे कर्तृत्वअभिमान करैं नहीं इति। और किसी टीकाविषे तो (तत्त्ववित्तु महाबाहो) या श्लोकका याप्रकारका अर्थ करया है। चक्षु आदिक पंचज्ञान इंद्रिय तथा वागादि पंच कर्म इंद्रिय बुद्धि मन इन सर्वका नाम गुण है। और तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंके जे व्यापार हैं तिन्होंका नाम कर्म है। विभाग यापदका गुणपदकेसाथि तथा कर्मपदकेसाथि दोनोंके साथि संबंध करणा। ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंकीही दर्शन श्रवणादिक क्रिया हैं। और वाक्पाणि आदिक इंद्रियोंकीही वचन आदानादिक क्रियाहैं। और बुद्धिकीही अहंकरणरूप क्रियाहै। और मनकीही संकल्परूप क्रियाहै। आत्माकी कोईभी क्रिया नहींहै। किंतु यह आत्मादेव सर्वदा कूटस्थ असंगचिद्रूप करिकै स्थित है इस प्रकारका जो गुणविभागहै तथा कर्मविभागहै तिन दोनों विभागोंके तथा आत्माके यथार्थ स्वरूपकूं जो भलीप्रकारतैं जानैहै ताकानाम तत्ववितहै ऐसा तत्ववेत्ता विद्वान् पुरुषतौ सर्वकर्मोंविषे यह चक्षुआदिक इंद्रियही रूपादिकविषयोंविषै प्रवृत्त होवैंहैं तथा वाक्आदिक इंद्रियही वचनादिकोंविषे प्रवृत्तहोवैंहैं तथा बुद्धिही तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके कर्मोंविषे मैं कर्त्ताहूं याप्रकारका अभिमानकरैहै मैं आत्मा तौ न श्रवण

करताहूं न देखताहूं न बोलताहूं न करवाहूं न चालताहूं किंतु कूटस्थ असंगचेतनरूप करिकै सर्वदा तूष्णींही स्थितहूं या प्रकारका निश्चय करिकै तिन इंद्रियादिकोंके कर्मविषे अहं मम अभिमान करता नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ (तत्त्ववित्तु) या श्लोकके पदोंकी इसप्रकारतें योजना करिकै या प्रकारका अर्थ कथन करयाहै (यस्तत्त्ववित् स गुणागुणेषु वर्त्तते इति मत्वा गुणविभागे कर्मविभागे च न सज्जते) इति योजना । अर्थ यह—आत्मा अनात्मा या दोनोंके यथार्थस्वरूपकूं जानणेहारा जो विद्वान् पुरुष है सो विद्वान् पुरुष तौ बुद्धिचक्षुआदिक गुणही सुखरूपादिकविषयोंविषे प्रवृत्तहोवैंहै आत्मा तौ किसीभी विषयविषे प्रवृत्त होतानहीं याप्रकारका निश्चय करिकै गुणविभागविषे तथा कर्मविभागविषे अहं मम अभिमान करै नहीं । इहां सत्व रज तम या तीनोंगुणोंका जो बुद्धि अहंकार ज्ञानइंद्रिय कर्मइंद्रिय विषयरूपकारिकै भिन्न अभिन्न अवस्थान है ताका नाम गुणविभाग है ता गुणविषे मैं बुद्धि अहंकारादि रूपहूं याप्रकारका अहं अभिमान सो तत्त्ववेत्तापुरुष करै नहीं । और तिन बुद्धि अहंकारादिकोंके जे भिन्नभिन्न कर्म हैं तिनोंका नाम कर्मविभाग है । ता कर्मविभागविषे यह कर्म मेरा है याप्रकारका मम अभिमान सो तत्त्ववेत्ता पुरुष करै नहीं इति । इहां (हे महाबाहो) या संबोधनकारिकै श्रीभगवाननैं यह अर्थ सूचन करया । जानुपर्यंत जिसका दीर्घबाहु होवैहै ताका नाम महाबाहुहै । और सामुद्रिकशास्त्रविषे महाबाहुपणा श्रेष्ठपुरुषका लक्षण कह्या यातैं ऐसे श्रेष्ठपुरुषोंके लक्षणवाला होइकै तूं अन्यपुरुषोंकी न्याईं अविवेकी होणेकूं योग्य नहीं है ॥ २८ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे विद्वान् तथा अविद्वान् या दोनोंविषे कर्मोंके अनुष्ठानकी समानता कथन करिकै सो विद्वान् पुरुष अविद्वान् पुरुषके बुद्धिभेदकूं नहीं उत्पन्न करै यह अर्थ कथन करया ता अर्थका अब उपसंहार करैं हैं—

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मंदान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९॥

(पदच्छेदः) प्रकृतेः । गुणसंमूढाः । सज्जंते । गुणकर्मसु । तान् । अकृत्स्नविदः । मंदान् । कृत्स्नवित् । न । विचालयेत् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रकृतिके गुणोंकरिकै संमूढहुए जे अज्ञानीजीव तिन गुणोंकेकर्मोंविषे आसक्ति करैंहैं तिन अनात्मवेत्ता अनधिकारी पुरुषोंकूं आत्मवेत्ता विद्वान् शुभकर्मकीश्रद्धातैं नहीं चलायमानकरै ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वकथनकरी जा मायारूप प्रकृतिहै ता प्रकृतिका कार्यरूप होणेतैं धर्मरूप जे देहइन्द्रिय अंतःकरणादिक विकार हैं तिन विकाररूप गुणों करिकै सम्मूढ हुए अर्थात् स्वरूप के अस्फुरण करिकै तिन देहादिकौंकूंही आत्मरूप करिकै मानते हुए जे अज्ञानी पुरुष तिन देह इन्द्रिय अंतःकरणादिकोंके व्यापारोंविषेही हम स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति वासतै कर्मोंकूं करैं हैं या प्रकारकी अत्यंत दृढ आत्मीयत्वबुद्धि करैं हैं । तिन कर्मोंके अधिकारी तथा अनात्मपदार्थोंके अभिमानवाले तथा अशुद्धचित्तवाले होणेतैं ज्ञानके अधिकारकूं नहीं प्राप्तहुए अज्ञानीपुरुषोंकूं यह परिपूर्ण आत्माके जाणनेहारा विद्वान् पुरुष आप फलकी कामना करिकै कर्म नहीं करणे अथवा इन कर्मोंका फल असत् है । अथवा कर्मोंके कर्तादिक मिथ्याहीहैं अथवा तूं ब्रह्मरूपहै तेरेकूं किंचित् मात्रभी कर्त्तव्य नहींहै इत्यादिक उपदेशकरिकै तिन शुभकर्मोंकी श्रद्धातैं चलायमान नहींकरै । किंतु उलटा तिन शुभकर्मोंकी स्तुति करिकै सो विद्वान् पुरुष तिन अज्ञानी पुरुषोंकूं तिन शुभकर्मोंविषे ही प्रवृत्त करै । और जे पुरुष शुद्धअंतःकरणवाले होणेतैं अधिकारी हैं ते पुरुष तौ उपदेशतैं विना आपही विवेककी उत्पत्ति करिकै चलायमानतातैं रहित ज्ञानके अधिकारकूं प्राप्त होवैंहैं इति । इहां जिसवस्तुके ज्ञानहुएभी तिसतैं अन्य वस्तुका ज्ञान होवै नहीं तथा जिसवस्तुके नहीं ज्ञानहुएभी तिसतैं अन्यवस्तुका ज्ञान होइजावै ता वस्तुका नाम अकृत्स्नहै । जैसे एक घटके ज्ञानहुएभी ता घटतैं भिन्न पटादिकोंका ज्ञान होवै नहीं । और ता घटके नहीं ज्ञानहुएभी ता घटतैं भिन्न पटादिकपदार्थोंका ज्ञान होइजावैहै । यातैं ते घटादिकसर्व अनात्म पदार्थ अकृत्स्न यानामकरिकै कहे जावैहैं । और जिस एक वस्तुके ज्ञान हुए सर्ववस्तुका ज्ञान होजावै तथा जिस एकवस्तुके नहीं ज्ञानहुए सर्ववस्तुका ज्ञान होवै नहीं ता वस्तुका नाम कृत्स्न है । जैसे एक अद्वितीय आत्माके ज्ञानहुए सर्व अनात्मपदार्थोंका ज्ञान होइजावैहै और ता अद्वितीय आत्माके नहीं ज्ञानहुए तिन सर्व अनात्मपदार्थोंका ज्ञान होवै नहीं यातैं सो अद्वितीय आत्मा कृत्स्न यानाम करिकै कह्या

जावै है । तहां श्रुति । (आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्) अर्थ यह—हे मैत्रेयी ! अधिष्ठानरूप आत्माके दर्शनकरिकै तथा श्रवणकरिकै तथा मनन करिकै तथा विज्ञान करिकै यह सर्व अनात्मजगत् जान्याजावै है इति । याप्रकारका अकृत्स्न कृत्स्न या दोनों शब्दोंका अर्थ वार्तिकग्रंथविषे सुरेश्वराचार्यने कथन कर्याहै इति । और किसी टीकाविषे तौ (प्रकृतेः)या पदका (गुणकर्मसु) यापदके साथि अन्वयकरिकै यह अर्थ कर्या है अहंकारादिक गुणों करिकै संमूढहुए अज्ञानी पुरुष प्रकृतिके देहादिक गुणोंविषे तथा गमनादिक कर्मोंविषे मैं ब्राह्मण हूं मेरा यह यज्ञादिक कर्म है याप्रकारका अहंमम अभिमान करैहैं ॥ २९ ॥

पूर्वप्रसंगविषे अज्ञानीपुरुष तथा ज्ञानवान् पुरुष दोनोंविषे शुभकर्मोंके अनुष्ठानकी समानताके हुएभी अज्ञानी पुरुषविषे तौ कर्तृत्वका अभिमान रहै है और ज्ञानी पुरुषविषे ताकर्तृत्व अभिमानका अभाव रहै है । याप्रकारतैं दोनोंकी विलक्षणता कथन करी । अब अज्ञानी पुरुषभी दोप्रकारका होवै है । एक तौ मोक्षकी इच्छावाला मुमुक्षु अज्ञानी होवै है । और दूसरा मोक्षकी इच्छातैं रहित अमुमुक्षु अज्ञानी होवै है । तहां अमुमुक्षु अज्ञानीकी अपेक्षाकरिकै मुमुक्षु अज्ञानीविषे सर्वकर्मोंका श्रीभगवत् अर्पण तथा फलकी इच्छाका अभाव याप्रकारकी विलक्षणताकूं कथन करता हुआ श्रीभगवान् अर्जुनविषेभी मुमुक्षु अज्ञानीपणे करिकै कर्मोंके अधिकारकूं दृढ करैं हैं—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) मयि । सर्वाणि । कर्माणि । संन्यस्य । अध्यात्मचेतसा । निराशीः । निर्ममः । भूत्वा । युध्यस्व । विगतज्वरः ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं मैं परमेश्वरविषे अध्यात्मचित्तकरिकै सर्व कर्मोंकूं समर्पणकरिकै कामनातैं रहित तथा ममतातैं रहित तथा शोकतैं रहित होइकै इस युद्धकूं कर ॥ ३० ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! सर्वज्ञ तथा सर्वजगत्का नियन्ता तथा सर्वका आत्मारूप ऐसा जो मैं परमेश्वरवासुदेवहूं ऐसे मैं परमेश्वरविषे तूं सर्वलौकिकवैदिक

कर्मोंकूं अध्यात्मचित्तकरिकै समर्पण कर। इहां आत्माके प्रतिपादनकरणेवास्तै जो शास्त्र प्रवृत्त होवै ता शास्त्रका नाम अध्यात्म है ऐसा उपनिषद्रूप वेदांतशास्त्र है तो अध्यात्मशास्त्रके विचारविषे जो चित्त तत्त होवै ता चित्तका नाम अध्यात्मचेतस् है। अर्थात् आत्मा अनात्माके विवेकवाले चित्तका नाम अध्यात्मचेतम् है। ऐसे अध्यात्मचित्तकरिकै तूं सर्वकर्मोंकूं मैं परमेश्वरविषे समर्पणकर। तात्पर्य यह। मैं अर्जुन कर्त्तारूप अंतर्यामीईश्वरके अधीन हूं। और जैसे भृत्य महाराजके वास्तैंही सर्वकर्मोंकूं करैं हैं तैसे मैंभी तिस ईश्वरके वास्तैही सर्वकर्मोंकूं करताहूं याप्रकारकी बुद्धिकरिकै तिन सर्वकर्मोंका मैं ईश्वरविषे अर्पणकरिकै तथा सर्वकामनावोंतैं रहित होइकै तथा देहपुत्रभ्रातादिकोंविषे ममता अभिमानतैं रहितहोइकै तथा इस लोकविषे अपकीर्तिका हेतुरूप तथा परलोकविषे नरकके प्राप्तिका हेतुरूप जो शोकरूपज्वर है ता शोकरूपज्वरतैं रहितहोइकै तूं मुमुक्षुअज्ञानी अर्जुन इसयुद्धकूं कर अर्थात् शास्त्र-विहितशुभकर्मोंकूंकर। इहां श्रीभगवत्अर्पण तथा निष्कामपणा यह दोनोंयुद्धविषेही कथन करैंहैं काहेतैं ता युद्धतैंभिन्न किसीकर्मविषे ता अर्जुनका ममता यथाशोक प्राप्तहै नहीं किंतु ता युद्धविषेही प्राप्तहै ॥ ३० ॥

तहां स्वर्गादिकफलकी इच्छातैं रहित होइकै तथा श्रीभगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै वेदविहित शुभकर्मोंका जो अनुष्ठान है सो शुभकर्मोंका अनुष्ठानही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मुक्तिरूपफलकी प्राप्तिकरणेहारा है या अर्थकूं अभी श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ॥
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) ये। मे। मतम्। इदम्। नित्यम्। अनुतिष्ठंति। मानवाः। श्रद्धावंतः। अनसूयंतः। मुच्यन्ते। ते। अपि। कर्मभिः ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जे कोई मनुष्य श्रद्धावान् हुए तथा असूयातैं रहित हुए हमारे इस नित्य मतकूं अंगीकार करैं हैं ते पुरुष भी पुण्यपापकर्मोंनैं परित्याग करीतेहैं ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! फलकी इच्छातैं रहित होइकै तथा श्रीभगवत् अर्पणबुद्धि करिकै या अधिकारी पुरुषनैं शास्त्रविहित शुभकर्मोंका अनुष्ठानकरणा यह जो हमारा मतहै सो हमारा मत नित्यवेदकरिकै बोधितहोणेतैं अनादिपरंपराकरिकै प्राप्तहै

यातैं नित्य है अथवा सो हमारा मत अधिकारी पुरुषोंकूं अवश्यकरिकै करणेयोग्य है यातैं नित्य है ऐसे हमारे नित्यमतकूं जे कोई मनुष्य श्रद्धावाले हुए तथा असूयातैं रहितहुए अंगीकार करैं हैं। इहां शास्त्रनैं तथा गुरुनैं उपदेश कऱ्या जो अर्थ है सो अर्थ जो कदाचित आपणे अनुभवविषे नहींभी आवताहोवै तौ भी ताअर्थविषे यह अर्थ इसीप्रकार है याप्रकारका जो विश्वास है ता विश्वासका नाम श्रद्धाहै। और किसी पुरुषकेगुणोंविषे जो दोषोंका प्रगटकरणा है याका नाम असूयाहै सा असूया इहां प्रसंगविषे याप्रकारकी प्राप्त है। इस दुःखरूप युद्धधर्मविषे मैं अर्जुनकूं प्रवृत्तकरताहुआ यह भगवान् करुणातैं रहितहै इति। ऐसी असूयाकूं सर्वप्राणियोंके सुहृद्रूप तथा गुरुरूप मैं भगवान् वासुदेवविषे नहीं करते हुए जे मनुष्य हमारे इस मतकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अँगीकार करैं हैं। ते मनुष्यभी अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा यथार्थज्ञानीकी न्याईं पुण्यपापकर्मोंनैं परित्याग करते हैं अर्थात् पुण्यपापकर्मोंतैं रहितहोवैंहैं। तात्पर्य यह ताज्ञानवान्पुरुषके भावीशरीरोंकी प्राप्तिकरणेहारे जितनेक पुण्यपापरूप संचित कर्म हैं ते संचितकर्म तौ ज्ञानरूप अग्निकरिकै दग्ध होइजावैं हैं। और जिन प्रारब्धकर्मोंनैं यह शरीर दियाहै ते प्रारब्धकर्म भोगकरिकै क्षय होवैं हैं। और सो ज्ञानवान् इस वर्त्तमानशरीरविषे जे पुण्यपापकर्म करै है ते पुण्यपाप कर्म ता ज्ञानवान् पुरुषकी सेवाकरणेहारे भक्तजन तथा निंदाकरणेहारे दुष्टजन लेजावैं हैं। तहांश्रुति। (तस्य पुत्रा दायमुपयांति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषंतः पापकृत्याम्)। अर्थ यह—तिस ज्ञानवान् पुरुषके धनादिकपदार्थोंकूं तौ पुत्रशिष्यादिक लेजावैंहैं। और तिसज्ञानवान् पुरुषके पुण्यकर्मोंकूं तौ सेवाकरणेहारे भक्तजन लेजावैं हैं। और तिस ज्ञानवान्के पापकर्मोंकूं तौ निंदाकरणेहारे दुष्टजन लेजावैं हैं इति। इसप्रकार सो विद्वान् पुरुष सर्वपुण्यपापकर्मोंतैं रहितहोवैहै। इहां शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्मोंका मनुष्यकूंही अधिकार है अन्य किसीकूं अधिकार हैनहीं यातैं श्रीभगवान्नैं (मानवाः) यह वचन कथन कऱ्याहै ॥ ३१ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे भगवत्अर्पणबुद्धिकरिकै निष्कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो भगवत्का मत है ता मतके अंगीकाररूप अन्वयविषे अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा सर्वकर्मोंतैं रहिततारूप गुणका कथनकऱ्या। अब इसश्लोकविषे ता भगवतमतके नहीं अंगीकाररूप व्यतिरेकविषे दोषके प्राप्तिका कथन करैंहैं—

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) ये । तु । एतत् । अभ्यसूयंतः । न । अनुतिष्ठंति । मे । मतम् । सर्वज्ञानविमूढान् । तान् । विद्धि । नष्टान् । अचेतसः ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जे पुरुष दोषकूं आरोपणकरेहुए हमारे इस पूर्वउक्त मतकूं नहीं अंगीकार करैं हैं तिन पुरुषोंकूं तूं दुष्टचित्तवाला जान तथा सर्वज्ञानविषे मूढ जान तथा सर्वपुरुषार्थतै भ्रष्ट जान ॥ ३२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जे कोई पुरुष नास्तिकपणेतैं गुरुशास्त्रके वचनोंविषे श्रद्धाकूं नहीं करतेहुए तथा गुणोंविषे दोषोंका कथनरूप असूयाकूं करतेहुए या पूर्वउक्त हमारे मतकूं नहीं अंगीकार करै हैं तिन पुरुषोंकूं तूं अत्यंत दुष्टचित्तवाला जान याकारणतैंही कर्मविषयक जे ज्ञान हैं तथा सगुण निर्गुण ब्रह्मविषयक जे ज्ञान हैं तिन सर्वज्ञानोंविषे प्रमाणतैं तथा प्रमेयतैं तथा प्रयोजनतैं ते पुरुष विशेषकरिकै मूढ हुए जान। तात्पर्य यह । ते कर्मविषयक ज्ञान तथा सगुण निर्गुण ब्रह्मविषयक ज्ञान किस प्रमाणकरिके जन्य हैं तथा तिन ज्ञानोंका प्रमेय कौन है तथा तिन ज्ञानोंका प्रयोजन कौन है या अर्थकूं ते पुरुष जानिसकते नहीं । याकारणतैंही तिन पुरुषोंकूं तूं सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट हुआ जान ॥ ३२ ॥

हे भगवन् ! जैसे इस लोकविषे जे पुरुष महाराजाके आज्ञाका उल्लंघन करैंहैं तिन पुरुषोंकूं महान् भयकी प्राप्ति होवैहै तैसे आप ईश्वरकी आज्ञाके उल्लंघन करणेविषे महान् भयकी प्राप्तिकूं देखतेहुएभी ते पुरुष किसकारणतैं असूया करते हुए ता आपके मतकूं नहीं अंगीकार करैंहैं । तथा किसकारणतैं तिन सर्वपुरुषार्थोंके साधनोंविषे प्रतिकूलताबुद्धि करैं है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैंहैं–

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) सदृशम् । चेष्टते । स्वस्याः । प्रकृतेः । ज्ञानवान् । अपि । प्रकृतिम् । यांति । भूतानि । निग्रहः । किम् । करिष्यति ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानवान् पुरुष भी आपणी प्रकृतिके अनुसारही चेष्टा करैं हैं यातैं सर्वप्राणी ता प्रकृतिकूंही अनुसरण करैं हैं तिसविषे हमारा निग्रह क्या करैगा ॥ ३३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वजन्मोंविषे करेहुए धर्म अधर्मके तथा ज्ञान इच्छादिकोंके जे संस्कार हैं ते संस्कार इस वर्त्तमान जन्मविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त भयेहैं । तिन अभिव्यक्तसंस्कारोंका नाम प्रकृति है। सा प्रकृति सर्वप्रकारतैं बलवान् है । ऐसी बलवान् प्रकृतिके अनुसारही ब्रह्मवेत्ता पुरुषभी चेष्टा करैहै । अथवा (ज्ञानवान्) यापदकरिकै केवल गुणदोषके जानणेहारे पुरुषका ग्रहण करणा। तहां आचार्यवचनम् । (पश्वादिभिश्चाविशेषात्) । अर्थ यह-खानपानादिक व्यवहारकालविषे विद्वान् पुरुषकी पश्वादिकोंके साथि तुल्यताहीहै इति । ऐसा ब्रह्मवेत्ता ज्ञानवान् अथवा गुणदोषके जानणेहारा ज्ञानवान्भी जबी आपणे संस्काररूप प्रकृतिके अनुसारही चेष्टा करै हैं तबी दूसरे अज्ञानी मूर्ख पुरुष आपणे प्रकृतिके अनुसारही चेष्टा करैं हैं याकेविषे क्या कहणाहै । यातैं सा प्रकृति यद्यपि अविवेकी प्राणियोंकूं पुरुषार्थतैं भ्रष्ट करणेहारी है तथापि ते सर्वप्राणी ता प्रकृतिकूंही अनुसरण करैं हैं। तिसविषे मैं परमेश्वरकृतनिग्रह तथा राजकृत निग्रह क्या करैगा । अर्थात् उत्कटरागकरिकै पापकर्मोंविषे प्रवृत्तहुए पुरुषोंकूं सो निग्रह ता पापकर्मतैं निवृत्त करणेविषे समर्थ नहीं है। तात्पर्य यह । जे पुरुष पापकर्मोंविषे महान् नरककी साधनाकूं जानिकरिकैभी दुर्वासनाकी प्रबलतातैं पुनः तिन पापकर्मोंविषेही प्रवृत्त होवैहैं ते पुरुष मेरी आज्ञाके उल्लंघनजन्यदोषतैं कदाचित् भय नहीं करैंगे ॥ ३३॥

हे भगवन् ! जो कदाचित् सर्वप्राणी आपणी आपणी प्रकृतिकेही वशवर्ती होवैं तौ लौकिक पुरुषार्थका तथा वैदिक पुरुषार्थका कोईभी विषय होवैगा नहीं । यातैं (स्वर्गकामो यजेत) इत्यादिक विधिवाक्योंविषे तथा (परदारान्न गच्छेत) इत्यादिक निषेधवाक्योंविषे अनर्थकता प्राप्त होवैगी । काहेतैं इस लोकविषे पूर्वसंस्काररूप प्रकृतितैं रहित कोईभी प्राणी है नहीं । जिसके प्रति तिन विधिनिषेधवाक्योंकूं अर्थवेत्ता होवै ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियस्य । इंद्रियस्य । अर्थे । रागद्वेषौ । व्यवस्थितौ । तयोः । न । वशम् । आगच्छेत् । तौ । हि । अस्य । परिपंथिनौ ॥३४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इंद्रिय इंद्रियके शब्दादिकविषयविषे रागद्वेष दोनों नियमपूर्वक स्थित हैं तिन रागद्वेष दोनोंके वशकूं यह प्राणी नहीं प्राप्तहोवै जिस-कारणतैं ते रागद्वेष दोनों इसं प्राणीके शत्रुहीहैं ॥ ३४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रोत्र त्वक् चक्षु रसन घ्राण यह जे पंच ज्ञानइंद्रिय हैं । तथा वाक् पाणि पाद उपस्थ पायु यह जे पंच कर्मइंद्रिय हैं तिन ज्ञानइंद्रियोंके तथा कर्मइंद्रियोंके जे यथाक्रमतैं शब्द स्पर्श रूप रस गंध वचन आदान गमन आनंद मलविसर्जन यह दश विषय हैं तिन शब्दस्पर्शादिक विषयोंविषे तथा वचन आदानादिक विषयोंविषे जोजो विषय इस पुरुषके अनुकूल होवैहैं सोसो विषय जो कदाचित् शास्त्रकरिकै निषिद्धभी होवै हैं तौभी तिसतिस विषयविषे इस पुरुषका रागही होवै है । और तिन विषयोंविषे जोजो विषय इस पुरुषके प्रतिकूल होवैहैं सोसो विषय जो कदाचित् शास्त्रकरिकै विहितभी होवैहै तौभी तिसतिस विषय विषे इस पुरुषका द्वेषही होवैहै । इस प्रकार श्रोत्रादिक सर्वइंद्रियोंके शब्दादिक सर्व विषयोंविषे अनुकूलता करिकै तथा प्रतिकूलता करिकै ते रागद्वेष दोनों नियमपूर्वकही स्थितहैं । कोई तिन सर्व विषयोंविषे नियमतैं विनाही ते रागद्वेष स्थित हैं नहीं । तहां इस पुरुषनैं ता रागद्वेषके वशकूं नहीं प्राप्त होणा यहही आपणे पुरुषार्थका तथा शास्त्रका विषय है । इहाँ तात्पर्य यह है । यह परस्त्रीगमनादिक कर्म महान् नरककी प्राप्ति करणेहारे हैं या प्रकारका जो बलवत् अनिष्ट साधनता ज्ञान है । ता ज्ञानके अभावसहकृत जो यह परस्त्रीगमनादिक कर्म हमारे विषय सुखरूप इष्टके साधन हैं या प्रकारका इष्टसाधनता ज्ञान है ता इष्टसा-धनता ज्ञानकरिकै जन्य जो तिन परस्त्रीगमनादिक कर्मोंविषे राग है । ता रागकूं अंगीकार करिकैही सा प्रकृति इस पुरुषकूं तिन परस्त्रीगमनादिक निषिद्धकर्मोंविषे प्रवृत्त करै है । इसी प्रकार यह संध्यावंदनादिक कर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति कर-णेहारे हैं या प्रकारका जो इष्टसाधनताज्ञान है ता ज्ञानके अभावसहकृत जो यह संध्यावंदनादिक कर्म हमारे दुःखरूप अनिष्टके साधन हैं याप्रकारका अनिष्टसाधनता ज्ञान है । ता अनिष्टसाधनता ज्ञानकरिकै जन्य जो तिन संध्यावंदनादिक कर्मोंविषे द्वेष है ता द्वेषकूं अंगीकार करिकै ही सा प्रकृति ता पुरुषकूं तिन संध्यावंदनादिक

विहित कर्मोंतैं निवृत्त करैहै । तहां जिस कालविषे धर्मशास्त्र तिन परस्त्रीगमनादिक कर्मोंविषे यह परस्त्रीगमनादिक कर्म नरककी प्राप्ति करणेहारे हैं या प्रकार बलवत् अनिष्टसाधनताकूं बोधन करैं हैं तिस कालविषे बलवत् अनिष्टसाधनताज्ञानका अभाव रहै नहीं जैसे घटरूप प्रतियोगी विद्यमानहुए घटाभाव रहै नहीं । और तिनपरस्त्रीगमनादिक निषिद्ध कर्मोंविषे रागकी उत्पत्ति करणेमें ता इष्टसाधनताज्ञानका सो बलवत् अनिष्टसाधनताज्ञानका अभावही सहकारी कारण था । ता सहकारी कारणके अभावहुए सो केवल इष्टसाधनताज्ञान तिन परस्त्रीगमनादिक निषिद्धकर्मोंविषे रागकूं उत्पन्न करिसकै नहीं । जैसे मधु विष या दोनों करिकै युक्त जो अन्न है ता अन्नविषे यह अन्न हमारे क्षुधाके निवृत्तिका साधन है या प्रकारके इष्टसाधनताज्ञानके हुएभी जिस पुरुषकूं ता अन्नविषे यह अन्न हमारे मरणका साधन है या प्रकारका अनिष्टसाधनताज्ञान हुआहै तिस पुरुषके सो केवल इष्टसाधनताज्ञान ता अन्नविषे रागकूं उत्पन्न करिसकै नहीं । इसी प्रकार जिस कालविषे धर्मशास्त्र संध्यावंदनादिक विहितकर्मोंविषे यह संध्यावंदनादिक कर्म स्वर्गादिक सुखके प्राप्तिका साधन हैं या प्रकार बलवत् इष्टसाधनताकूं बोधन करै है। तिसकालविषे तिन संध्यावंदनादिक विहित कर्मोंविषे बलवत् इष्टसाधनताज्ञानका अभाव रहै नहीं । जैसे घटरूप प्रतियोगीके विद्यमानहुए घटाभाव रहै नहीं । और तिन संध्यावंदनादिक विहितकर्मों विषे द्वेषकी उत्पत्ति करणेमैं ता अनिष्टसाधनताज्ञानका सो बलवत् इष्टसाधनताज्ञानका अभावही सहकारी कारण था । ता सहकारी कारणके अभाव हुए सो केवल अनिष्टसाधनताज्ञानका तिन संध्यावंदनादिक विहितकर्मोंविषे द्वेषकूं उत्पन्न करिसकै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । प्रतिबंधतैं रहित हुआ सो शास्त्र इस पुरुषकूं संध्यावंदनादिक विहित कर्मोंविषे तौ प्रवृत्त करै है और परस्त्रीगमनादिकनिषिद्धकर्मोंतैं निवृत्त करै है । इस प्रकार शास्त्रके विचारजन्य ज्ञानकी प्रबलताकरिकै जबी ता स्वाभाविक रागद्वेषके कारणकी निवृत्ति होवै है तबी ता कारणकी निवृत्तिकरिकै सो स्वाभाविक रागद्वेषरूप कार्यभी निवृत्त होइ जावैहै । यातैं सा प्रकृति विपरीतमार्गविषे शास्त्रदृष्टिवाले पुरुषकूं प्रवृत्त करिसकै नहीं । यातैं शास्त्रकूं तथा पुरुषार्थकूं व्यर्थताकी प्राप्ति होवै नहीं इति । इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं (तयोर्न वशमागच्छेत्) यह वचन कह्याहै । अर्थात् यह पुरुष ता रागद्वेषके अधीन होइकै नहीं तौ किसी कर्मविषे प्रवृत्त होवै तथा नहीं किसी कर्मतैं निवृत्त होवै । किंतु

शास्त्रजन्य ज्ञानकरिकै रागद्वेषता ता रागद्वेषके नाशद्वारा ता रागद्वेषकूं नाशही करै । जिस कारणतैं स्वाभाविक दोषजन्य ते रागद्वेष दोनों इस मोक्षरूप श्रेयकी इच्छावान् पुरुषके शत्रुही हैं । तात्पर्य यह । जैसे मार्गविषे चलणेहारे पुरुषोंकूं दुष्ट चोर अनेक प्रकारके विघ्न करैंहैं तैसे मोक्षरूप श्रेयके आत्मज्ञानरूप मार्गविषे प्रवृत्त हुए इस अधिकारी पुरुषकूं ते रागद्वेष दोनों अनेकप्रकारके विघ्न करणेहारे हैं । यातैं यह अधिकारी पुरुष ता रागद्वेषकूं अवश्यकरिकै नाश करै ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! स्वाभाविक रागद्वेषकरिकै जन्य जा पशु मनुष्यादिक सर्वप्राणियोंकी साधारण प्रवृत्ति है ता साधारण प्रवृत्तिकी निवृत्ति करिकै जबी इस पुरुषकूं शास्त्रविहित कर्मही करणेयोग्य हुआ तबी जैसे इस युद्धविषे शास्त्रविहित कर्मरूपता है तैसे संन्यासपूर्वक भिक्षाअन्नके भोजनविषेभी शास्त्रविहित कर्मरूपता है यातैं अत्यंत सुगम तथा हिंसादिकोंतैं रहित जो भिक्षाअन्नका भोजन है सोईही हमारेकूं करणेयोग्य है । अत्यंत दुःखरूप तथा हिंसादिकोंका कारणरूप इस युद्धके करणेविषे हमारा क्या प्रयोजन है?ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान उत्तर कहै हैं—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) श्रेयान् । स्वधर्मः । विगुणः । परधर्मात् । स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे । निधनम् । श्रेयः । परधर्मः । भयावहः ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वअंगोंकी संपूर्णता पूर्णतापूर्वककरेहुए परकेधर्मतैं किंचित् अंगोंकी न्यूनतापूर्वक करयाहुआ आपणाधर्म अत्यंत श्रेष्ठहै इसकारणतैं ता आपणे धर्मविषे मरणँभी श्रेष्ठहै और परका धर्मतौ भयकीही प्राप्तिकरणेहारा है ॥ ३५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह जे च्यारि वर्ण हैं । तथा ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास यह जे च्यारि आश्रम हैं तिन च्यारि वर्णोंविषे तथा च्यारि आश्रमोंविषे जिसजिस वर्णके प्रति तथा जिसजिस आश्रमके प्रति धर्मशास्त्रनैं जोजो धर्म विधान करया सोसो धर्म तिसतिस वर्णका तथा तिसतिस आश्रमका तथा स्वधर्म कह्या जावैहै । दूसरे वर्णका तथा दूसरे आश्रमका सोसो धर्म परधर्म कह्या जावै है । जैसे बृहस्पतिसवनामायज्ञ शास्त्रने एकब्राह्मणके प्रतिही विधान कर याहै । क्षत्रियादिकोंके प्रति विधान करया नहीं यातैं सो बृहस्पतिसवनामायज्ञ

ब्राह्मणका तो स्वधर्म है क्षत्रियादिकोंका परधर्म है । इस प्रकार राजसूयनामायज्ञ शास्त्रनैं एक क्षत्रियके प्रतिही विधान करया है ब्राह्मणादिकोंके प्रति विधान करया नहीं । यातैं सो राजसूयनामायज्ञ क्षत्रियका तौ स्वधर्म है ब्राह्मणादिकोंका परधर्म है । इस प्रकार सर्वअसाधारण धर्मविषे स्वधर्मता तथा परधर्मता जानिलेणी । ईश्वर-नामस्मरणादिक साधारण धर्मोंविषे तौ सर्वप्राणीमात्रकी स्वधर्मताही रहैहै किसीभी प्राणीकी परधर्मता रहैनहीं या कारणतैं असाधारण धर्म कह्याहै। तहां द्रव्य मंत्रदेवता इत्यादिक जे कर्मके अंगहैं तिन सर्व अंगोंकी संपूर्णतातैं विनाही जो धर्म करया जावैहै सो धर्म विगुण कह्या जावैहै । इसप्रकारका विगुण जो स्वधर्म है सो स्वधर्म तिन सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक करेहुए परधर्मतैं अत्यंत श्रेष्ठहै काहेतैं एक वेद प्रमा-णकूं छोडिकै दूसरा कोई प्रमाण धर्मविषे है नहीं । किंतु ता धर्मविषे एक वेदही प्रमाण है । यह वार्त्ता (चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः) इस पूर्वमीमांसाके सूत्रविषे विस्तारतैं कथन करी है यातैं परधर्म जो है सो भी अनुष्ठान करणेकूं योग्य है धर्म होणेतैं स्वधर्मकी न्यांई याप्रकारका अनुमान ता धर्मविषे प्रमाण होइसकै नहीं यातैं यत्किंचित् अंगोंकी न्यूनताकरिकै विगुणभावकूं प्राप्त भया जो स्वधर्म है ता विगुण स्वधर्मविषे भी स्थित जो पुरुष है ता स्वधर्मनिष्ठ पुरुषका परधर्मविषे स्थित पुरुषके जीवनतैं मरण भी अत्यंत श्रेष्ठ है काहेतैं स्वधर्मविषे स्थित पुरुषका जो मरण है सो मरण इसलोकविषे तौ ता पुरुषकूं कीर्तिकी प्राप्ति करणेहारा है । और परलोकविषे स्वर्गादिकोंकी प्राप्ति करणे-हारा है यातैं सो मरण भी अत्यंत श्रेष्ठ है । और परधर्म तौ इस पुरुषकूं इसलो-कविषे तौ अकीर्तिकी प्राप्ति करैहै और परलोकविषे नरकादिकोंकी प्राप्ति करैहै यातैं जैसे राग द्वेष करिकै जन्य स्वाभाविक प्रवृत्ति इस पुरुषकूं परित्याग करणे योग्य है । तैसे यह परधर्म भी परित्याग करणेकूं योग्य है इति । तहां पूर्वप्रसं-गविषे श्रीभगवान्‌के मतकूं अंगीकार करणेहारे पुरुषोंकूं श्रेयकी प्राप्ति कथन करी । और ता भगवान्‌के मतकूं नहीं अंगीकारकरणेहारे पुरुषोंकूं ता श्रेयके मार्गतैं भ्रष्टपणा कथन करया और ता श्रेयके मार्गतैं भ्रष्ट होणेविषे तथा फलकी इच्छा पूर्वक काम्यकर्मोंके करणेविषे तथा केवल पापकर्मोंके करणेविषे (ये त्वेतदभ्यस-यंतः) इत्यादिक वचनोंकरिकै बहुत कारण कथन करे । तिन सर्व कारणोंकूं संक्षेपतैं कथनकरणेहारा यह श्लोक है। (श्रद्धाहानिस्तथासूया दुष्टचित्तत्वमूढते ।

प्रकृतेर्वशवर्त्तित्वं रागद्वेषौ च पुष्कलौ । परधर्मरुचित्वं चेत्युक्ता दुर्मार्गवाहकाः) ॥ अर्थ यह-श्रद्धातैं रहित होणा तथा असूया करणी तथा चित्तकी दुष्टता तथा मूढता तथा प्रकृतिके वशवार्ति होणा तथा पुष्कल रागद्वेष तथा परधर्मविषे प्रीति करणी यह सर्व दुर्मार्गकी प्राप्ति करणेहारेहैं ॥ ३५ ॥

तहां इसपुरुषकी काम्यकर्मोंविषे प्रीतिकरावणेहारा तथा निषिद्ध कर्मोंविषे प्राप्ति करावणेहारा जो कोई कारण है ता कारणकूं निवृत्ति करिकै श्रीभगवान्‌के ता पूर्वउक्त मतकूं आश्रयण करणेवासतै अर्जुन प्रथम ता कारणका स्वरूप पूछै हैं-

अर्जुन उवाच ।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) अथ । केन । प्रयुक्तः । अयम् । पापम् । चरति । पूरुषः । अनिच्छन् । अपि । वार्ष्णेय । बलात् । इव । नियोजितः ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे वार्ष्णेय ! यह पुरुष पापकरणेकी नहीं इच्छाकरताहुआ भी बलात्कारतैं प्रवृत्तकरेहुए पुरुषकी न्याईं किसकरिकै प्रवृत्त कऱ्या हुआ पापकर्मकूं करैहै ॥ ३६ ॥

भा० टी०-हे भगवन् ! (ध्यायतो विषयान्पुंसः) इत्यादिक वचनों करिकै पूर्व भी आपनैं अनर्थका मूल कथन कऱ्याथा । और अबीभी आपनैं (प्रकृतेर्गुणसंमूढाः) इत्यादिक वचनों करिकै बहुतप्रकारका सो अनर्थका मूल कथन कऱ्याहै । तहां ते सर्व ही समान प्रधानता करिकै अनर्थके कारण हैं । अथवा तिन सर्वोंविषे एकही मुख्यकारण है दूसरे सर्व गौण हैं तहां प्रथम पक्षविषे तौ तिन सर्वकारणोंकूं भिन्नभिन्न निवृत्त करणेविषे महान् पारिश्रम होवैगा । और दूसरे पक्षविषे तौ ता एक ही प्रधान कारणके निवृत्त कियेहुए इस पुरुषकूं कृतकृत्यभावकी प्राप्ति होवैगी यातैं हे भगवन् ! आप यह वार्त्ता कहो । तुम्हारे मतकूं नहीं अंगीकार करणेहारा तथा सर्व ज्ञानोंविषे मूढ यह पुरुष किस बलवान् कारण करिकै प्रवृत्त कऱ्याहुआ अनर्थकी प्राप्तिकरणेहारे अनेक प्रकारके निषिद्ध कर्मोंकूं तथा काम्य कर्मोंकूं करै है । इहां परस्त्रीगमनादिक निषिद्ध कर्म हैं और शत्रुके नाशकरणेहारे श्येन यज्ञादिक काम्यकर्म हैं ते दोनोंप्रकारके कर्म इस पुरुषकूं अनर्थकी ही प्राप्ति करणेहारेहैं । यातैं तिन दोनोंप्रकारके

कर्मोंका पाप शब्दकरिकै ग्रहण कऱ्याहै इति। हे भगवन् ! यह पुरुष आप तिन पापकर्मोंके करणेकी नहीं इच्छा करताहुआ भी बलात्कारतैं तिन पाकर्मोंकूं ही करै है। और परमपुरुषार्थका साधनरूप करिकै आपनैं उपदेश कऱ्या जो कर्म है ता कर्मके करणेकी इच्छा करताहुआभी यह पुरुष ता कर्मकूं करता नहीं यातैं यह जान्याजावैहै यह पुरुष परतंत्र है स्वतंत्रता नहीं है। परतंत्रतातैं विना यह वार्त्ता संभवती नहीं। यातैं हे भगवन् ! जैसे महाराजानैं किसीकार्यविषे बलात्कारसैं प्रवृत्तकऱ्या जो कोई भृत्य है सो भृत्य ता कार्यके करणेकी नहीं इच्छा करताहुआ भी ता कार्यकूं अवश्य करिकै करै है तैसे जिस बलवान् कारण करिकै प्रवृत्त कऱ्याहुआ यह पुरुष तुम्हारे मतके विरोधी पापकर्मोंकूं सर्व अनर्थोंका मूलभूत जानताहुआ भी तिन पापकर्मोंकूं ही करै है। तिस अनर्थविषे प्रवृत्त करणेहारे कारणका स्वरूप आप हमारेप्रति कथन करो। जिस कारणके स्वरूपकूं जानिकरिकै मैं अर्जुन तिस कारणके नाश करणे वासतै प्रयत्न करौं इति। इहां (अनिच्छन्नपि) या वचन करिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या। पूर्व कथन करेहुए राग द्वेषविषे भी प्रवृत्तिकी कारणता संभवै नहीं काहेतैं रागके विद्यमानहुए इच्छा अवश्यकरिकै होवैहै यातैं या पुरुषविषे इच्छाके अभावहुए ता रागका भी अभाव हीहै। जबी ता रागविषे अप्रवर्त्तकता सिद्ध भई तबी ता रागजन्य संस्कारोंकरिकै जन्य जो धर्म अधर्म हैं ता धर्म अधर्म विषेभी सा प्रवर्त्तकता संभवै नहीं। और ता धर्म अधर्मविषे अप्रवर्त्तकता हुए ता धर्म अधर्मकी अपेक्षा करणेहारे ईश्वरविषेभी सा प्रवर्त्तकता संभवै नहीं इति। और (हे वार्ष्णेय) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या है। हमारे मातामहका कुल जो वृष्णिवंश है ता वृष्णिवंशविषे आपणे भक्तजनोंके उद्धार करणे वासतै आपनैं अवतार धारण कऱ्याहै। और मैं अर्जुनभी ता वृष्णिवंशविषे उत्पन्नहुई कुंती माताका पुत्रहूं। यातैं हमारेकूं आपणा जानिकरिकै आपनैं हमारी उपेक्षा नहीं करणी। किंतु इस हमारे प्रश्नका आपनैं यथार्थ उत्तर कहणा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार अर्जुनकरिकै पूछाहुआ श्रीभगवान्। (काममय एवायं पुरुषः इति आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोकामयत जाया मे स्यात् अथ प्रजा मे स्यात अथ वित्तं मे स्यात् अथ कर्म कुर्वीय) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै सिद्ध तथा (अका-

मस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित। यद्यद्धि कुरते जंतुस्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्) इत्यादिक स्मृतियोंकरिकै सिद्ध उत्तरकूं कहताभया। तिन श्रुतियोंका तथा स्मृतिवचनका यह अर्थ है—यह पुरुष काममय ही है इति इस जगत्की उत्पत्तितैं पूर्व एक आत्मा ही होताभया सो आत्मा देव या प्रकारकी कामना करताभया हमारेकूं जाया प्राप्त होवै तथा हमारेकूं प्रजा प्राप्त होवै तथा हमारेकूं धन प्राप्त होवै तथा मैं कर्मोंकूं करौं इति । और या लोकविषे कामनातैं रहित पुरुषकी कोई भी क्रिया देखणेविषे आवती नहीं यातैं यह जीव जिसजिस कर्मकूं करैहै सो सर्व इस कामकी ही चेष्टा है इति । इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंकरिकै सिद्ध उत्तरकूं श्रीभगवान् कहैहैं—

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) कामः । एषः । क्रोधः । एषः । रजोगुणसमुद्भवः । महाशनः । महापाप्मा । विद्धि । एनम् । इह । वैरिणम् ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो अनर्थमार्गविषे प्रवर्त्त करणेहारा यह काम ही है यह कामही क्रोधरूप है तथा रजोगुणतैं उत्पन्नभया है तथा महान् आहारवाला है तथा अत्यंत उग्र है यातैं इस संसारविषे इसकामकूंही तूं वैरीरूप जान ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस पुरुषकूं बलात्कारसे अनर्थमार्गविषे प्रवृत्ति करणेका कारण जो तुमनैं पूछा था सो कारण यह कामरूप महान् शत्रु ही है। इस कामकरिकै ही इन प्राणियोंकूं सर्व अनर्थोंकी प्राप्ति होवैहै । शंका—हे भगवन् ! जैसे यह काम प्राणियोंकूं अनर्थविषे प्रवृत्त करै है तैसे क्रोध भी इन प्राणियोंकूं सर्व अनर्थविषे प्रवृत्त करैहै यातैं केवल कामविषेही प्रवर्त्तकता संभवै नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (क्रोध एष इति) हे अर्जुन ! यह विषयोंकी अभिलाषारूप जो काम है ता कामतैं सो क्रोध भिन्न नहीं है किंतु यह कामही क्रोधरूप होवैहै । तात्पर्य यह—जो कोई पुरुष किसी धनादिक पदार्थोंकी इच्छा करिकै जबी किसी धनी पुरुषके समीप जावैहै आगेतैं कोई दुष्ट पुरुष ता पुरुषकी इच्छा पूर्ण होणे देवै नहीं तबी ता पुरुषका सो इच्छारूप कामही ता दुष्टपुरुष ऊपरि क्रोधरूप होइकै परिणामकूं प्राप्ति होवैहै । यह वार्ता सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है

यातैं सो काम ही क्रोधरूप है इति। ता कामरूप महाशत्रुके निवृत्ति कियेहुए इस पुरुषकूं सर्व पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होवै है। अब ता कामरूप शत्रुके निवृत्त करणेहारे उपायके जनावणेवास्तै ता कामरूप शत्रुके कारणकूं कथन करैंहैं (रजोगुणसमुद्भवः इति) हे अर्जुन! दुःखप्रवृत्तिबलरूप जो रजोगुण है सो रजोगुण है समुद्भव नाम कारण जिसका ऐसा यह काम है। और लोकविषे कारणके समान स्वभाववाला ही कार्य होवैहै यातैं जैसे सो रजोगुणरूप कारण दुःखप्रवृत्ति आदिरूप है। तैसे यह कामरूप कार्यभी दुःखप्रवृत्ति आदिरूपही है। यद्यपि रजोगुणकी न्यांई तमोगुण भी ता कामका कारण है यातैं (रजोगुणसमुद्भवः) या वचनकी न्याईं (तमोगुणसमुद्भवः)यह भी वचन कहणा उचितथा तथापि दुःखविषे तथा प्रवृत्तिविषे रजोगुणकूंही प्रधानता है तमोगुणकूं प्रधानताहै नहीं। यातैं इहां रजोगुणकाही कथन कऱ्या है। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या सात्विकवृत्ति करिकै जभी ता रजोगुणरूप कारणकी निवृत्ति होवैहै तभी कारणके निवृत्तहुए सो कामरूप कार्य आप ही निवृत्त होइ जावैहै यातैं सा सात्विक वृत्तिही रजोगुणकी निवृत्तिद्वारा ता कामके निवृत्तिका उपाय है इति। अथवा हे भगवन्! ता कामकूं किसप्रकारतैं अनर्थविषे प्रवर्त्तकताहै ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (रजोगुणसमुद्भवः इति) हे अर्जुन! दुःखप्रवृत्ति आदिरूप जो रजोगुण है ता रजोगुणका है समुद्भवनाम उत्पत्ति जिसतैं ताका नाम रजोगुण समुद्भव है। ऐसा रजोगुणका कारणरूप यह काम है। तात्पर्य यह विषयोंकी अभिलाषारूप जो यह काम है, सो यह काम आप प्रगट होइकै ता रजोगुणकूं प्रवृत्त करता हुआ इस पुरुषकूं दुःखरूप कर्मोंविषे प्रवृत्त करै है इति। यातैं अधिकारी पुरुषोंनैं यह कामरूपशत्रु अवश्य करिकै जय करणे योग्य है। शंका—हे भगवन्! इस लोकविषे शत्रुके जयकरणेवास्तै साम दान भेद दंड यह च्यारि उपाय होवै हैं। तहां साम दान भेद या तीन उपायोंकरिकै जो शत्रु वश नहीं होता होवे तौ ता शत्रुके जय करणेवासतै चौथा दंडरूप उपाय करणा। परंतु तिन तीन उपायोंके कियेतैं विनाही प्रथम ही सो दंडरूप उपाय करणा उचित नहीं है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कामरूप शत्रुके जीतणेविषे प्रथम तीन उपायोंके असंभव कहणेवास्तै ता कामरूपशत्रुके दो विशेषण कहैं हैं (महाशनो महापाप्मा इति) महान् है अशन क्या आहार जिसका ताका नाम महाशन है ऐसा यह काम है

तात्पर्य यह—अनेकप्रकारके महान् भोगोंकी प्राप्ति करिकै भी यह काम कदाचित भी तृप्त होवै नहीं । यह वार्त्ता स्मृतिविषे भी कथन करी है तहां श्लोक (न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ॥ १ ॥ यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ २ ॥) अर्थ यह—यह काम पदार्थोंके भोग करिके कदाचित भी शांतिकूं प्राप्त होता नहीं किंतु जैसे अग्नि घृत काष्ठादिकोंके पावणे करिकै वृद्धिकूं प्राप्त होता जावै है तैसे यह काम भी बहुत पदार्थोंके भोगकरिकै दिन दिनविषे वृद्धिकूं प्राप्त होता जावै है और इस पृथिवीविषे जितनेक व्रीहि यवादिक अन्न हैं तथा जितनेक सुवर्णादिक धन हैं तथा जितनेक गो अश्वादिक पशु हैं तथा जितनीक सुंदर स्त्रियां हैं । ते सर्व पदार्थ जो कदाचित् कामनावाले किसी एक पुरुषकूं भी प्राप्त होवैं तौ भी ते सर्व पदार्थ ता पुरुषके कामकूं तृप्त करणे-विषे समर्थ होवैं नहीं तौ अल्प भोगोंकरिकै ता कामकी शांति कैसे होवैगी किंतु नहीं होवैगी । या प्रकारका विचार करिकै यह पुरुष शांतिकूं प्राप्त होवै ॥ १ ॥ २ ॥ यातैं ता दानरूप उपाय करिकै यह कामरूप शत्रु वश होवै नहीं इसप्रकार साम भेद या दोनों उपायों करिकै भी यह कामरूप शत्रु वश होवै नहीं । जिसकारणतैं यह कामरूप शत्रु महापाप्मा है क्या अत्यंत उग्र है । या कारणतैंही इस कामकरिकै प्रेरणा कऱ्याहुआ यह पुरुष पापकर्मोंतैं दुःखरूप फलकी प्राप्तिकूं जानताहुआ भी पुनः तिन पापकर्मोंकूंही करैहै । ऐसा अत्यंत उग्र यह कामरूप शत्रु साम भेद या दोनों उपायोंकरिकै वश होइ सकै नहीं । जिस कारणतैं लोकविषे ऋजुस्वभाववाले शत्रुही ता साम भेदरूप उपायकरिकै वश होवैंहैं । यातैं हे अर्जुन ! इस संसारविषे तूं इसकामकूंही शत्रुरूप जान ॥ ३७ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे अत्यंत उग्ररूपकरिकै ता कामविषे कथन कऱ्या जो शत्रु-पणा ता शत्रुपणेकूं अब तीन दृष्टांतोंकरिकै स्पष्ट करैहैं—

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथा दर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) धूमेन । आव्रियते । वह्निः । यथा । आदर्शः । मलेन । च । यथा । उल्बेन । आवृतः । गर्भः । तथा । तेन । इदम् । आवृतम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसें धूमनैं अग्नि आवृतकरीताहै तथा जैसे रजरूप मलनैं दर्पण आवृत करीताहै तथा जैसें जेरायुचर्मनैं गर्भ आवृत करीताहै तैसे तिसकामनैं यहँ ज्ञान आवृत करीताहै ॥ ३८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस स्थूलशरीरके आरंभतैं पूर्व अंतःकरण कामादिकवृत्तियोंकूं प्राप्त होवै नहीं । यातैं या स्थूलशरीरकी उत्पत्तितैं पूर्व सो अंतःकरण सूक्ष्म कहाजावै है और शरीरके आरंभकरणेहारे पुण्यपापकर्मोंकरिकै रचित जो यह स्थूलशरीर है ता स्थूलशरीरविषे स्थित होइकै सो अंतःकरण कामादिक वृत्तियोंकूं प्राप्त होवैहै यातैं ता स्थूलशरीरावच्छिन्न अंतःकरणविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुआ सो काम स्थूल कह्याजावै है । और सोईही काम विषयोंके चिंतनअवस्थाविषे पुनः पुनः वृद्धिकूं प्राप्त हुआ स्थूलतर कह्याजावैहै । और सोईही काम तिन विषयोंके भोग अवस्थाविषे अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त हुआ स्थूलतम कह्याजावै है । यहां स्थूलतैंभी अधिक स्थूलका नाम स्थूलतर । और स्थूलतरतैंभी अधिक स्थूलका नाम स्थूलतम है । इसप्रकार सो एकही काम स्थूल, स्थूलतर, स्थूलतम या तीन अवस्थावोंवाला होवै है । तहां ता कामके प्रथम स्थूल अवस्थाविषे दृष्टांत कथन करेहैं (धूमेनाव्रियते वह्निः इति) हे अर्जुन ! जैसे अग्निके साथि उत्पन्नभया जो अप्रकाशरूप धूम है ता अप्रकाशरूप धूमनैं प्रकाशरूप अग्नि आवृत्त करीता है । तैसे इस स्थूलकामनैं यह ज्ञान आवृत्त करीताहै । अब ता कामकी दूसरी स्थूलतर अवस्थाविषे दृष्टांत कथन करैंहैं (यथादर्शो मलेन च इति) हे अर्जुन ! जैसे दर्पणतैं पश्चात् उत्पन्नभया जो रजरूप मल है तिस रजरूपमलनैं सो दर्पण आवृत्त करीताहै । तैसे इस स्थूलतर कामनैंभी यह ज्ञान आवृत करीताहै । अब ता कामकी तीसरी स्थूलतम अवस्थाविषे दृष्टांत कथन करैं हैं (यथोल्बेनावृतो गर्भः इति) हे अर्जुन ! जैसे माताके उदरविषे स्थित गर्भकूं सर्वओरतैं वलेट रह्याहुआ जो जरायुनामा चर्म है ता जरायुनामाचर्मनैं सो गर्भ आवृत करीताहै । तैसे इस स्थूलतमकामनैं यह ज्ञान आवृत करीताहै । इहां इन तीन दृष्टांतोंविषे परस्पर इतनी विशेषता है ता धूम करिकै आवृतहुआ भी अग्नि दाहादिरूप आपणेकार्यकूं करता नहीं है । और रजरूप मलकरिकै आवृतहुआ जो दर्पण है सो दर्पण तो प्रतिबिंबका ग्रहणरूप आपणे कार्यकूं करता नहीं । जिस कारणतैं ता दर्पणके स्वच्छतामात्रका ता रजरूप

मलकरिकै तिरोधान होइ रह्याहै। परंतु सो दर्पण स्वरूपतैं तौ प्रतीत होतारहै है और जरायुनामचर्मकरिकै आवृत जो गर्भ है सो गर्भ तौ हस्तपादादिकोंका प्रसारणरूप आपणे कार्यकूंभी करता नहीं तथा आपणे स्वरूपतैं भी प्रतीत होता नहीं। या प्रकारकी तिन दृष्टांतोंकी विलक्षणताकूं अंगीकार करिकैही ता कामकी स्थूल स्थूलतर स्थूलतम या तीन अवस्थावोंविषे यथाक्रमतैं ते तीन दृष्टांत कथन करैं हैं ॥ ३८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे (तथा तेनेदमावृतम्) यह जो संग्रहवचन कह्याथा ता संग्रहवचनके अर्थकूं अब विस्तारकरिकै कथन करैं हैं–

आवृतं ज्ञानमेतन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) आवृतम् । ज्ञानम् । एतेन । ज्ञानिनः । नित्यवैरिणा । कामरूपेण । कौंतेय । दुष्पूरेण । अनलेन । च ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! इस कामनैंही यहज्ञान आवृत करयाहै कैसाहै यह काम ज्ञानीपुरुषका नित्यही वैरी है तथा इच्छा तृष्णारूप है, तथा अग्निकी न्याई पूरिततैं रहितहै ॥ ३९ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जिसकरिकै वस्तुकूं जानिये ताका नाम ज्ञान है ऐसा अंतःकरण करिकैही वस्तु जान्याजावैहै । अथवा अंतःकरणकी वृत्तिरूप जो विवेकविज्ञान है ताका नाम ज्ञानहै । ऐसा ज्ञान इस कामनैंही आवृत करया है । शंका–हे भगवन् ! यद्यपि इस कामनैं सो ज्ञान आवृत करयाहै तथापि अविचारसिद्ध सुखका हेतु होणेतैं यह काम ग्रहणकरणेकूं योग्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुये श्रीभगवान् कहैं हैं (ज्ञानिनो नित्यवैरिणा इति) हे अर्जुन ! यह काम ज्ञानीपुरुषोंका तौ नित्यही वैरी है काहेतैं अज्ञानीपुरुष तौ विषयभोगकालविषे ता कामकूं मित्रकी न्याईंही जानते हैं। और ता अज्ञानी पुरुषकूं जबी ता कामका कार्यरूप दुःख आइके प्राप्त होवैहै तबी सो अज्ञानीपुरुष इस कामनैंही हमारेकूं इस दुःखकी प्राप्ति करीहै इसप्रकार ता कामकूं शत्रुरूप करिकै जानैहै यातैं ता अज्ञानीपुरुषका सो काम नित्यही वैरी नहींहै किंतु दुःखरूप परिणामकालविषे वैरी है । और ज्ञानवान् पुरुष तौ ता विषयभोगकालविषे भी इस कामनैंही

हमारेकूं इस अनर्थविषे प्रवृत्त कर्याहै या प्रकार ता कामकूं वैरीही जानै है। यातें सो ज्ञानवान् पुरुष विषयभोगकालविषे तथा ताके दुःखरूप परिणाम-कालविषे इस कामकरिकै दुःखीही होवैहै। या कारणतें यह काम ता ज्ञान-वान् पुरुषका नित्यही वैरीहै। ऐसे नित्यवैरीरूप कामकूं ता ज्ञानवान् पुरुषनैं अव-श्यकरिकै हननकरणा। शंका—हे भगवन्! ता कामके स्वरूप जानेतैं विना ताका हनन संभवै नहीं यातें ता कामका स्वरूप कह्याचाहिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (कामरूपेण इति) हे अर्जुन! इच्छातृष्णारूप कामहीहै रूप जिसका ऐसा यह कामहै। शंका—हे भगवन्! यद्यपि सो काम विवेकीपुरुषका नित्यही वैरीही है यातें विवेकीपुरुषोंनैं तौ ता कामका अवश्यकरिकै हनन करणा। तथापि अविवेकी पुरुषोंका सो काम नित्यवैरी है नहीं। यातैं तिन अविवेकी पुरुषोंनैं तौ ता कामका अवश्यकरिकै ग्रहण करणा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (दुष्पूरेणानलेन च इति) हे अर्जुन! जैसे यह अग्नि घृतकाष्ठादिकों करिकै तृप्त होवै नहीं, तैसे यह कामभी अनेक प्रकारके भोगोंकरिकै भी तृप्त होवै नहीं। याकारणतैं यह काम निरंतर संतापकाही हेतुहै। यातें विवेकीपुरुषकी न्याईं अविवेकीपुरुषनैं भी ता कामका परि-त्यागही करणा इति। अथवा। शंका—हे भगवन्! इसलोकविषे जोजो इच्छा होवैहै सोसो इच्छा आपणेआपणे विषयकी प्राप्तितैं निवृत्ति होइजावै है। और यह कामभी इच्छारूपही है यातें यह कामभी तिसतिस विषयोंके भोगकरिकै आपही निवृत्ति होइ जावैगा। ता कामकी निवृत्ति करणेवासतैं दूसरे उपायका कछ प्रयोजन नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (दुष्पूरेणानलेन च इति) हे अर्जुन! विषयकी प्राप्तिकालविषे यद्यपि ता विषयकी इच्छाका तिरोधान होवै है तथापि कालांतरविषे पुनः ता इच्छाका प्रादुर्भाव होवै है। यातें विषयकी प्राप्ति ता इच्छाका निवर्त्तक नहींहै किंतु विषयोंविषे वारंवार दोषदृष्टिही ता इच्छाका निवर्त्तक है ॥ ३९ ॥

शंका —हे भगवन्! इस लोकविषे जिस शत्रुके स्थानका ज्ञान होवै है सोईही शत्रु जीत्या जावै है। ता शत्रुके स्थानके ज्ञानतैं विना सो शत्रु जीत्या जावै नहीं। यातैं इस कामशत्रुके जीतणेवासतै प्रथम इस कामका अधिष्ठान जान्या चाहिये। जिस अधिष्ठानके आश्रित हुआ यह काम लोकोंकूं अनर्थकी प्राप्ति करै है। सो

कामका अधिष्ठान कौन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कामके अधिष्ठानका कथन करैं हैं-

इंद्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियाणि । मनः । बुद्धिः । अस्य । अधिष्ठानम् । उच्यते । एतैः । विमोहयति । एषः । ज्ञानम् । आवृत्य । देहिनम् ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इंद्रियें मन बुद्धि यह तीनोंही इस कामके अधिष्ठान कहेजावै हैं इन तीनों करिकैही यह काम ता ज्ञानकूं आवृतकरिकै देहाभिमानी जीवकूं मोहकी प्राप्ति करैहै ॥ ४० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध या पांचोंकूं यथाक्रमतैं विषय करणेहारे जे श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, यह पंच ज्ञानइंद्रिय हैं। तथा वचन, आदान, गमन, आनंद, विसर्ग, या पंच क्रियावोंके यथाक्रमतैं जनक जे वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, यह पंचकर्म इंद्रिय जो हैं। यह दशइंद्रिय जो हैं तथा संकल्परूप जो मन है तथा निश्चयरूप जो बुद्धि है ये तीनोंही इस कामके अधिष्ठान कहे जावैं हैं। इन तीनोंकरिकैही यह काम ता विवेक (ज्ञानकूं) आवृत करिकै देहाभिमानी पुरुषकूं नानाप्रकारके मोहकी प्राप्ति करै है ॥ ४० ॥

जिसकारणतैं तिन इंद्रियादिकोंके आश्रितहुआही यह काम देहाभिमानीजीवोंकूं अनेक प्रकारके मोहकी प्राप्ति करैहै । तिसकारणतैं तूं प्रथम तिन इंद्रियादिकों-कूंही जय कर। तिन इंद्रियादिकोंके जयहुए ता कामकाभी सुखेनही जय होवैगा। या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं-

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । त्वम् । इंद्रियाणि । आदौ । नियम्य । भरतर्षभ । पाप्मानम् । प्रजहि । हि । एनम् । ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! तिसकारणतैं तूं अर्जुन प्रथम तिन इंद्रियोंकूं वशकरिकै सर्व पापके मूलभूत तथा ज्ञानविज्ञानके नाशकरणेहारे इस कामकूं ही नाश कर ॥ ४१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! जिसकारणतैं इस कामके ते श्रोत्रादिक इंद्रियही अधिष्ठानरूप हैं। जैसे किसी राजाके पर्वत दुर्गआदिक अधिष्ठान होवै हैं तैसे इस कामके ते श्रोत्रादिक इंद्रियही अधिष्ठानरूप हैं तिसकारणतैं तूं अर्जुन ता कामकृत मोहतैं पूर्व अथवा ता कामके निरोधतैं पूर्व तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं वशकरिकै इस कामकूं नाश कर। तिन इन्द्रियोंके वशकियेतैं विना ता कामका नाश करयाजावै नहीं जैसे किसी पर्वतविषे तथा किसी दुर्गादिकोंविषे स्थित जो कोई राजा है ता राजाके तिन पर्वत दुर्गादिकोंकूं आपणे वश करिकैही दूसरे राजे ता राजाकूं नाश करैं हैं। तिन पर्वतदुर्गादिकोंके वशकियेतैं विना ता राजाकूं दूसरेराजे नाश करिसकैं नहीं। तैसे तिन इंद्रियोंके वशकियेतैं विना ता कामका नाश होवै नहीं। और तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके वशकियेतैं अनंतर मन बुद्धि या दोनोंकाभी वशकरणा सिद्ध होवैहै काहेतैं संकल्परूप जो मन है तथा निश्चयरूप जो बुद्धि है यह दोनों बाह्यइंद्रियजन्य वृत्तिद्वाराही अनर्थके कारण होवैं हैं। ता बाह्यइंद्रियजन्य वृत्तितैं विना तिन दोनोंविषे अनर्थकी कारणता संभवै नहीं। यातैं तिन श्रोत्रादिकइंद्रियोंके वश हुएतैं अनंतर सो मन बुद्धिभी अवश्यकरिकै वश होवै हैं। या कारणतैंही पूर्वश्लोकविषे (इंद्रियाणि मनो बुद्धिः) या वचन करिकै इंद्रिय मन बुद्धि या तीनोंका भिन्नभिन्न कथनकरिकैभी इस लोकविषे (इंद्रियाणि) या वचन करिकै केवल श्रोत्रादिक इंद्रियोंकाही कथन करया है। अथवा जैसे बाह्यशब्दादिकोंके ज्ञानविषे श्रोत्रादिकोंकूं इंद्रियरूपता है तैसे अंतर सुखदुःखादिकोंके ज्ञानविषे मनबुद्धिकूंभी इंद्रियरूपता है। यातैं (इंद्रियाणि) या पद करिकै ता मनबुद्धिकाभी ग्रहण होइसकैहै इति। तहां (हे भरतर्षभ) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्‌नैं यह अर्थ सूचन करया महान् भरतवंशविषे तूं उत्पन्न भयाहै। यातैं तिन इंद्रियोंके वशकरणेविषे तूं समर्थ है इति। शंका–हे भगवन्! इस लोकविषे जो कोई पुरुष किसी महान् अपराधकूं करै है तिस पुरुषकाही राजादिक नाश कर हैं अपराधतैं विना किसीकाभी कोई नाश करता नहीं। सो ऐसा अपराध इस कामनैं कौन करयाहै जिस अपराधकरिकै मैं इसका नाश करौं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कामकृत अपराधका वर्णन करैं हैं (पाप्मानं ज्ञानविज्ञाननाशनमिति) हे अर्जुन! यह जीव ता कामके वशहुएही सर्वपापोंकूं करैं हैं। कामरहित पुरुष

किसी भी पापकूं करते नहीं । यातैं अन्वयव्यतिरेक करिकै यह कामही सर्व-पापकर्मोंका मूलरूप है । पुनः कैसा है सो काम गुरु शास्त्रके उपदेशतैं उत्पन्नभया जो आत्माका परोक्षज्ञान है तथा ता परोक्षज्ञानका फलरूप जो आत्माका अपरो-क्षज्ञानरूप विज्ञान है ये ज्ञानविज्ञान दोनों इसपुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति करणेहारे हैं । तिन ज्ञानविज्ञान दोनोंका यह काम नाशकरणेहाराहै । ऐसे महान् अपराधवाले कामका अवश्य करिकै नाश कर्याचाहिये ॥ ४१ ॥

हे भगवन् ! ता कामके नाशकरणे वास्ते पूर्व आपनै इंद्रियोंका वशकरणा कथन कर्या । सो यद्यपि जिसीकिसीप्रकारतैं बाह्य श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका वशकरणा तौ संभव होइसकै है तथापि अंतरकी तृष्णाका त्यागकरणा बहुत दुर्घट है । समाधान—हे अर्जुन ! (रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते) इसवचनविषे पूर्व हम परवस्तुके दर्शनकूंही ता रसरूप तृष्णाकी निवृत्तिविषे कारणरूप कथन करिआये हैं । शंका—हे भगवन् ! जिस परवस्तुके दर्शनतैं तिस तृष्णाकी निवृत्ति होवैहै । सो परवस्तु कौन है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस परशब्दका अर्थरूप शुद्धआत्माकूं देहादिकोंतैं भिन्न करिकै निरूपण करैंहैं—

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियाणि[1] । पराणि[2] । आहुः[3] । इंद्रियेभ्यः[4] । परम्[5] । मनः[6] । मनसः[7] । तु[8] । परा[9] । बुद्धिः[10] । यः[11] । बुद्धेः[12] । परतः[13] । तु[14] । सः[15] ॥४२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदकी श्रुतियां इस स्थूलशरीरतैं श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं[1] परे[2] कहेंहैं[3] तथा तिन[4] इंद्रियोंतैं मन[6] परहै[5] तथा[8] ता मनतैं[7] बुद्धि[10] परहै[9] और[11] जो[12] बुद्धितैं[13] भी परेस्थित[14] है सोई[15] ही परआत्मा है ॥ ४२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! स्थूल तथा जड तथा परिच्छिन्न तथा बाह्य ऐसे जे यह देहादिक अर्थ हैं तिन देहादिक अर्थोंकी अपेक्षाकरिकै श्रोत्रादिक पंचज्ञानइन्द्रिय सूक्ष्म हैं तथा प्रकाशक हैं तथा व्यापक हैं तथा अंतरस्थितहैं। यातैं वेदवेत्तापुरुष अथवा वेदकी श्रुतियां तिन देहादिक अर्थोंतैं तिन श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकूं पर कहै हैं अर्थात् उत्कृष्ट कहैहैं । इसप्रकार आगेभी जानिलेणा । और संकल्पविकल्परूप मनही

तिन श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका प्रवर्त्तक है। मनतैं विना तिन इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं याकारणतैंही मनकी सावधानतातैं विना समीपवस्तुकाभी नेत्रादिक इन्द्रियोंकरिकै ग्रहण होतानहीं। यातैं तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं सो संकल्पविकल्परूप मन परहै। और निश्चयरूप बुद्धिपूर्वकही सो मनका संकल्परूप धर्म उत्पन्न होवैहै। ता निश्चयतैं विना सो संकल्प होवैनहीं। यातैं सा संकल्परूप मनतैं सा निश्चयरूप बुद्धि पर है। और जो आत्मादेव ता बुद्धिका प्रकाशक होणेतैं ता बुद्धितैंभी परै स्थितहै। और जिस देहीरूप आत्माकूं इंद्रियादिक आश्रयोंकरिकै युक्तहुआ यह काम ज्ञानके आवरणद्वारा मोहकी प्राप्ति करैहै सो बुद्धिद्रष्टासाक्षी आत्माही ता परशब्दका अर्थ है। इहां (बुद्धेः परतस्तु सः) या वचनविषे स्थित जो सः यह पद है ता सः पदकरिकै यद्यपि व्यवधानतैं रहित वस्तुकाही परामर्श होवैहै व्यवधानयुक्त वस्तुका परामर्श होवै नहीं तथापि जैसे श्रुतिविषे (आत्मैवेदमग्र आसीत्) या वचनकरिकै आत्माका प्रतिपादन करिकै तिसतैं अनंतर अनेकपदार्थोंका प्रतिपादन करिकै तिसतैं अनंतर (स एष इह प्रविष्टः) या प्रकारका वचन कथन कर्‍याहै। या वचनविषे स्थित जो सः यह पद है। ता सःपदकरिकै। पूर्व (आत्मैवेदमग्र आसीत्) या वचनविषे कथनकरे हुए व्यवहित आत्माकाभी परामर्श कर्‍याहै। तैसे इहांभी चालीसवें श्लोकविषे (देहिनं) या पदकरिकै कथन कर्‍या जो आत्माहै ता व्यवहित आत्माका ता सःपदकरिकै परामर्श संभव होइसकै है इति। वहां श्रुति (इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥) अर्थ यह—श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं शब्दादिक अर्थ पर हैं। और तिन अर्थोंतैं मन परहै। और ता मनतैं व्यष्टिबुद्धि पर है और ता व्यष्टिबुद्धितैं हिरण्यगर्भकी समष्टिबुद्धि परहै। और ता समष्टिबुद्धितैं मायारूप अव्याकृत परहै। और ता मायारूप अव्याकृततैं सर्वजडपदार्थोंका प्रकाशकरणेहारा पूर्ण आत्मा परहै। शंका—ऐसे परिपूर्ण आत्मातैंभी कोई पर होवैगा। ऐसी शंकाके हुए साक्षात् श्रुति भगवती उत्तर कहैहै। (पुरुषान्न परं किंचित्) इति ता परमात्मादेवतैं परै कोई भी वस्तु नहीं है। जिसकारणतैं सो परमात्मादेवही काष्ठारूप है अर्थात् सर्वका अधिष्ठान होणेतैं समाप्तिरूप है। तथा (सोऽध्वनः पारमाप्नोति

तद्विष्णोः परमं पदम्) इत्यादिक श्रुतियोंकारिकै सिद्ध जो परागति है ता परागतिरूपभी सो परमात्मादेवही है इति। यह सर्व अर्थ (यो बुद्धेः परतस्तु सः) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं कथनकऱ्या है । इहां श्रुतिका तथा भगवतवचनका आत्माके परत्वविषेही तात्पर्य है, कोई इंद्रियादिकोंके परत्वविषे तात्पर्य नहीं है। और श्रुतिविषे (इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः) यह जो वचन स्थित है ता वचनके स्थानविषे श्रीभगवाननैं "अर्थेभ्यः पराणींद्रियाणि" यह वचन कथन कऱ्याहै। तहां जैसे शब्दादिक अर्थोंविषे इन्द्रियोंतैं परत्व संभवैहै तैसे पूर्वउक्त हेतुवोंतैं तिन इंद्रियोंविषेभी देहादिक अर्थोंतैं परत्व संभवैहै । यातैं ता श्रुतिवचनके साथि भगवान्के वचनका विरोध होवै नहीं । इन दोनों श्रुतियोंका अर्थ आत्मपुराणके नवमें अध्यायविषे हम विस्तारसै कथन करिआये हैं ॥ ४२ ॥

अब पूर्ववचनोंके कहण करिकै सिद्धभया जो अर्थ है ता फलितार्थकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं-

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । बुद्धेः । परम् । बुद्ध्वा । संस्तभ्य । आत्मानम् । आत्मना । जहि । शत्रुम् । महाबाहो । कामरूपम् । दुरासदम् ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे महान्बाहुवाला अर्जुन ! इस प्रकार आत्मादेवकूं बुद्धितैं पर जानिकरिकै तथा मनकूं निश्चयरूपबुद्धिकरिकै स्थिरकरिकै इसतृष्णारूप तथा दुःखंकरिकै वशहोणेहारे कामरूप शत्रुकूं तूं नाशकर ॥ ४३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! (रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते) इस श्लोकविषे जो आत्मादेव परशब्दकरिकै कथन करया है तिस परिपूर्ण आत्मादेवकूं बुद्धितैं पर साक्षात्कारकरिकै तथा यह साक्षी आत्मा बुद्धितैंभी पर है या प्रकारकी निश्चयरूप बुद्धिकरिकै मनकूं स्थिरकरिकै तूं सर्वपुरुषार्थके नाशकरणेहारे इस कामरूप शत्रुकूं नाश कर । कैसा है यह कामरूप शत्रु इच्छातृष्णा है स्वरूप जिसका । तथा ता

